Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तर भारत के लोक पर्व

(एक वैज्ञानिक विश्लेषण)

लेखक
डॉ. नवरत्न कपूर

२
उ

उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, पटियाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

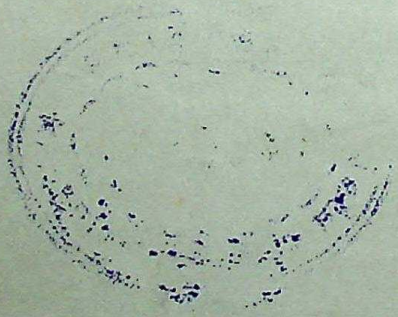

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तर भारत के लोक पर्व

प्रो० स्वतंत्र कुमार, कुलपति
द्वारा प्रदत्त संग्रह

## (एक वैज्ञानिक विश्लेषण)

लेखक
डॉ. नवरत्न कपूर

पुस्तकालय
127798
41.5,KAP-U
127798

उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, पटियाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तर भारत के लोक पर्व

(एक वैज्ञानिक विश्लेषण)

लेखक

डॉ. नवरत्न कपूर

RA
४१.५
कपूर-३

# UTTAR BHARAT KE LOK PARVA

**(Ek Vaigyanik Vishleshan)**

*Author*

Dr. Nav Rattan Kapur

1999

मूल्य 250/- रुपये

मुद्रक :- फुलकियाँ प्रेस प्राइवेट लि. पटियाला

फोन नं० :- 212400, 212500

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विषय-सूची

निवेदन पृष्ठ 4-7

## उत्तर भारत के नव वर्ष एवं ऋतु-परक लोकोत्सव

चान्द्र वर्ष की व्यापक मान्यता; नया साल : (क) नवरेह; (ख) ज़ंग त्रेयी; (ग) नवरोज़; (घ) लोसर। ऋतु-परक लोकोत्सव: (क) तीज : पंजाब की "तीआँ", सौग़ात तथा झूला-उत्सव, शहरों में "तीआँ" के लोकाचार; हरियाणा की "सिंधारा तीज" : उपहारों का आदान-प्रदान, मनोविनोद और खान-पान; राजस्थान की तीज : (क) छोटी तीज, (ख) बड़ी तीज; वसंतोत्सव: हिमाचली वसंतोत्सव- 'चैत्रोल खोन' एवं 'होरिंगफो'; बसंत पंचमी; फागुनी; सोंत; उख्याड; पाद-टिप्पणियाँ।

पृष्ठ 8-42

## उत्तर भारत के कृषि-पर्व

वैशाखी : प्रागैतिहासिक रूप; पौराणिक प्रसंगों का वैज्ञानिक विश्लेषण; वीरता पर्व एवं नव वर्षोत्सव, अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की नृशंसता, सामुदायिक लोकोत्सव; हिमाचली छवि: हिमाचल प्रदेश के विभिन्न मेले, गद्दी क्षेत्र का सामाजिक त्योहार, पहाड़ी नृत्य-गान का पर्व; जम्मू-काश्मीर की वैशाखी। मिंजर मेला। सेरी-पूजा : अखरोटों का त्योहार। लोहड़ी : शब्द-व्युत्पत्ति एवं नामकरण, लोहड़ी के अन्य लोक-प्रचलित नाम (i) लोई (ii) व्हे माता और मोह-माई; लोहड़ी का आरंभ एवं विकास; सामग्री-संचय और पूजा विधि; लोहड़ी से संबद्ध कतिपय स्थानीय परंपराएँ; लोहड़ी के खाद्य-पदार्थ; लोहड़ी के हास्य विनोद; पंजाब में "लोहड़ी" का एकमात्र मेला; भावात्मक समन्वय का लोकपर्व। मकर-संक्रांति : राजस्थानी परंपराएँ -- दान एवं सम्मान का लोकपर्व; अवाड़ा लुटाना एवं पतंगबाज़ी; पंजाब और हरियाणा की मकर संक्रांति; माघी के मेले; काश्मीरी लोकाचार। पाद-टिप्पणियाँ।

पृष्ठ 43-98

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तर भारत के देवी तथा देवोत्सव

देवी माहात्म्य और नवरात्र : (क) रली; (ख) गणगौर : राजस्थानी आयोजन; हरियाणवी परंपराएँ; (ग) चैत्र-नवरात्र के हरियाणवी मेले; राजस्थान के नवरात्र मेले (i) कैला देवी मेला; (ii) करणी माता का मेला; (iii) जीण माता का मेला; जम्मू काश्मीर के देवी मेले (i) खीर भवानी का मेला (ii) ख्रीव की ज्वाला देवी का मेला; (iii) वैष्णो देवी का मेला। **दूबड़ी** : नामकरण, पुजापा, पंजाबी पूजा-विधि की भिन्नता, लोकाचारों का वैज्ञानिक विश्लेषण; पुणछी-भाषी क्षेत्र की "दरूबड़ी"। **साँझी** : नामकरण; साँझी के दरबार की सामग्री; पूजा-आराधना की विधि; लोकाचारों में कतिपय भिन्नताएँ एवं भाव-साम्य। अहोई: नामकरण एवं तिथियाँ; अहोई के भित्ति-चित्र; पूजा-सामग्री और पूजन-विधि; अहोई की लोक कथाएँ - (क) हिमाचली लोक कथा; (ख) पंजाबी लोक कथा। शीतला के मेले; राजस्थान की "शीतला सप्तमी" एवं "शीतला अष्टमी"। देव पर्व : देवोठान एकादशी : नामकरण; लोक चित्रों की परिकल्पना; पूजा-सामग्री और पूजा-विधि; पंजाबी लोकाचार; राजस्थान की देऊ-ऊठणी ग्यारस; तुलसी का मांडना एवं तुलसी-विवाह; रेणुका मेला। राजस्थान का "पौष बड़ा" लोकोत्सव। महा शिवरात्रि : विचित्र लोकाचार (क) काश्मीरी 'हेरथ'; (ख) हिमाचली लोक मान्यताएँ और मेले; (ग) मंडी का शिवरात्रि मेला; (घ) "छिब्बर" परिवारों एवं पंजाब की शिवरात्रि (ङ) शिवरात्रि के अन्य प्रसिद्ध मेले। पाद-टिप्पणियाँ।

पृष्ठ 99-169

# उत्तर भारत के पूर्णिमा-पर्व और पीर-उत्सव

पूर्णिमा-पर्व; आश्विन-पूर्णिमा : प्राचीन रूप; बिद्ध; बिद्ध-पूजन में कतिपय भिन्नताएँ कार्तिक-पूर्णिमा : प्रागैतिहासिक रूप; (क) पथवारी; (ख) कपालमोचन मेला . हरियाणा एवं काश्मीर; राजस्थान के प्रसिद्ध मेले : (क) पुष्कर का मेला; (ख) कोलायत का मेला; गुरु नानक प्रकाशोत्सव; गिरू पूनो; कोठरियों वाला व्रत; माड़। माघ-पूर्णमा : गुरु रविदास प्रकाशोत्सव। पीर-उत्सव : काश्मीर के प्रसिद्ध पीरोत्सव; राजस्थान के पंच पीर और गोगा जी (गूगा) : (क) पाबूजी,


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) रामदेव जी, (ग) तेजाजी (च) गोगा जी की जीवन गाथा : विभिन्न रूपांतर; वस्तु स्थिति; गोगा मैड़ी (मेड़ी) एवं गोगा नवमी; गोगा मैड़ी का प्रसिद्ध मेला; जगराते एवं केसरिया कंवर; पंजाब तथा हरियाणा के पूजास्थल एवं चढ़ावा; गूगा पीर के भक्त और उनके लोक नृत्य; गूगा (गोगा) जी के पारिवारिक सदस्य: नामांतर। अजमेर शरीफ़ का सालाना उर्स। पाद-टिप्पणियाँ

पृष्ठ 170-213

## देश-व्यापी पर्वोत्सव और उत्तर भारतीय लोकाचार

भूमिका; रक्षा बंधन : लोकपर्वीय रूप; मांगलिक भित्ति चित्र - निर्माण एवं पूजन; जम्मू-काश्मीर में रक्षा बंधन : अमरनाथ यात्रा; राजस्थान की "राखी" एवं "ऋषि-पंचमी"। विजयादशमी : लोकपर्वीय अंश; हिमाचली रूप : नामावलि एवं कुल्लू का दशहरा; काश्मीरी रूप; चण्डीगढ़ का दशहरा। दीवाली : इतिहास; महान ज्योति पर्व; दीवाली की हटरियाँ; राजस्थान की दीवाली : लोकगीत एवं लोक क्रीड़ाएँ; अमृतसर की दीवाली; कुछ स्थानीय लोकाचार और राग-रंग। होली: पौराणिक गाथाएँ और विधि-विधान; ढुंढा राक्षसी का प्रसंग; विधि-विधान का हरियाणवी रूप; पंजाब की होली और "मोरंडे"; आनंदपुर साहिब का "होला महोत्सव"; हिमाचल प्रदेश की होली; राजस्थान की होली। पाद-टिप्पणियाँ।

पृष्ठ 214-269

संदर्भ ग्रन्थ (Reference Books)
हिन्दी, पंजाबी, अंग्रेज़ी, पत्र-पत्रिकाएँ।

पृष्ठ 270-274

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# निवेदन

ऋग्वेद में मूलत: तीन ही देवता माने गए थे। "पृथ्वी स्थानीय देवता", जिनमें अग्नि देव को प्रमुख माना गया था। "अंतरिक्ष स्थानीय या मध्य स्थानीय देवता", जिनके अधिष्ठाता वायु अथवा इंद्र देव स्वीकार किए गए थे। "द्युस्थानीय देवता" अर्थात स्वर्ग या आकाश के देवताओं में शिरोमणिं पद सूर्य देव को प्रदान किया गया था। किन्तु ऋग्वेद के एक अन्य संदर्भ में इस त्रिदेव-गणना को निम्नलिखित मंत्र-पद के अनुसार तैंतीस मान लिया गया :

"पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रीश्चं देवाननुष्वधमा वह मादयस्व।"

कालांतर में ऋग्वैदिक मंत्रों के निवर्चनकर्ताओं ने इस संख्या को 99 तक पहुँचा दिया और कुछेक ने तो इसे 3339 तक मानने के तर्क भी प्रस्तुत किए हैं।

देव-कल्पना का दूसरा चरण भारतीय पुराणों में लक्षित होता है। वहाँ त्रिदेव के रूप में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश को क्रमश: सृष्टि के उत्पादक, पालनकर्ता एवं संहारक के रूप में उपस्थित किया गया। जगत् के प्रतिपालक भगवान विष्णु के मत्स्य, कच्छप, हंस आदि चौबीस अवतारों की परिकल्पना में मानो सृष्टि के प्रत्येक जीव में ईवरीय रूप की संभावना पर बल दिया गया था। फलत: ऋग्वेद के तैंतीस देवता इसी मूल चेतना के कारण पौराणिक ग्रंथों में बढ़ कर तैंतीस करोड़ की संख्या तक पहुँच गए। आश्चर्य नहीं कि जन-गणना विशेषज्ञ किसी तत्कालीन महापुरुष ने "कण कण में भगवान" की अवधारणा को दृढ़मूल करने के लिए सृष्टि के समस्त मानवों को ही देवत्व का गौरव प्रदान करने का साहस दिखाया हो।

पेड़-पौधों के प्राणवान होने तथा पत्थरों तक के आकार-प्रकार में वृद्धि होने का सिद्धान्त आज हमें आधुनिक वैज्ञानिकों की देन प्रतीत होता है। किन्तु भारतीय जन मानस तो अनंतकाल से किसी शिला-खंड को देव स्वरूप मानकर उसके पूजन-आराधन में रुचि दिखाता आ रहा है। इसके चिह्न आज भी उत्तर भारत के अनेक क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होते हैं। हिमाचल प्रदेश के "सेरी-पूजन" और हरियाणा के "पथवारी पूजन" इसका स्पष्ट प्रमाण हैं। इस प्रकार की परंपरा का उल्लेख प्राकृत में रचित जैन ग्रंथों (भगवती सूत्र, 9/33; अन्तगड और अचारांग सूत्र,


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2/1/2/3) में भी "देहाती क्षेत्रों के उत्सवों" के अंतर्गत हुआ है, यथा:

1. इंद्रमह = इंद्र देवता के सम्मान में मनाए जाने वाले उत्सव।
2. स्कंद मह = स्कंद देवता के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
3. रुद्र मह = भगवान शिव के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
4. मुकुंद मह = भगवान कृष्ण के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
5. भूत मह = प्रेतों के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
6. यक्ष मह = यक्षों के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
7. नाग मह = नागों के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
8. स्तूप मह = ढूह (टीले) के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
9. चैत्य मह = मंदिर या मठ के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
10. रुक्ख मह = पेड़ के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
11. गिरि मह = पर्वत के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
12. दरि मह = कंदरा के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
13. अगड़ मह = कुएँ के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
14. तड़ाग मह = पोखरे के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
15. दइ मह = तलैया के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
16. नदि मह = नदी के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
17. सर मह = तालाब के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
18. सागर मह = तालाब के सम्मान में आयोजित होने वाले उत्सव।
19. आगर मह = खान-खदान के सम्मान में मनाए जाने वाले उत्सव।

अनेक स्थानीय जनश्रुतियों और लोक विश्वासों की चासनी में पगे इस प्रकार के लोकोत्सव अलग-अलग नामों में आज भी प्रचलित हैं। निराकार भक्ति और नास्तिकों की चिंतन-धारा भी इन पर कुठाराघात नहीं कर पाई है।

यातायात के साधनों के बाहुल्य के कारण जन-संपर्क के अवसर बढ़ जाना एक स्वाभाविक बात है। किन्तु दुर्गम स्थानों तथा प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त मानव नई सभ्यता की हवा के झकझोरों से बचा रह कर अपनी रूढ़ियों से अधिक जुड़ा रहता है। यही कारण है कि एक विद्वान् ने हिमाचली देवताओं के वैविध्य का दिग्दर्शन इस प्रकार करवाया है : (1) घर अथवा गरिहा; (2) घर का देवता अथवा गृह-देवता;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) ग्राम देवता; (4) खूँद व अल्ल देवता; (5) क्षेत्र देवता; (6) पौराणिक देवी-देवता; तथा (7) महादेउ या देऊ नाग। (डॉ० पद्म चंद्र काश्यप: हिमाचली संस्कृति का इतिहास, पृष्ठ 101)। इसी प्रकार के देवगण मैदानी क्षेत्र के जन-मानस में भी सम्मानीय स्थान प्राप्त किए हुए हैं और उनकी लोक-आस्थाओं की गहराई तक पहुँचना भी कई बार बड़ा दुष्कर प्रतीत होता है।

इस वस्तु-स्थिति के बावजूद यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य सामंजस्यवादी जीव है। कलह-क्लेश की अपेक्षा शांति-प्रिय होने के कारण ही वह "वन-मानुष" से "मानव" का गौरव प्राप्त करने में समर्थ हुआ है। एक "सामाजिक प्राणी" की उपाधि उपलब्ध करने के लिए ही विकट परिस्थितियों ने उसे सुख-शांति से "जीने की कला" सिखाई है। यही कारण है कि शक, हूण, इस्लामी तथा आंग्ल संस्कृति के अनेकश: तत्त्व मूल भारतीय आचार-विचारों और आस्था-विश्वासों में इस प्रकार समाहित हो गए हैं कि उन्हें अलग-अलग छाँटना असंभव नहीं तो दुष्कर कार्य अवश्य है। जन-जातीय आस्थाओं को अपनाने में भी शिष्ट समाज पीछे नहीं रहा है, इसकी तह में भी हमारी धर्मभीरुता एवं उदार दृष्टि लुकी-छिपी दिखाई पड़ती है। इन्हीं सब बातों ने भारतीय संस्कृति की अनेकता में भी एकता का संचार किया है। उत्तर भारत के जन-मानस में भी इस उदात्त भावना का दृढ़मूल होना एक स्वाभाविक बात है। इसी का परिणाम है कि विभिन्न भौगोलिक, भाषायी एवं परिवेशगत प्रभावों को अंकित करने वाले पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-काश्मीर, राजस्थान एवं केन्द्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के अनगिनत लोकपर्व उत्तर-पश्चिमांचल के वे रंग-बिरंगे मनके हैं, जो कि देवी-स्वरूपा "भारतीय संस्कृति माता" की मनोहारी माला पिरोने में अपना योगदान करते हैं। इसी समन्वयवादी चेतना की ओर हमने "उत्तर भारत के लोकपर्व : एक वैज्ञानिक विश्लेषण" शीर्षक कृति में संकेत करने का लघु प्रयास किया है।

उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, पटियाला के संरक्षक महामहिम राज्यपाल (पंजाब) लेफटिनेंट जनरल (से.नि.) बख़्शी कृष्णनाथ जी छिब्बर की सद्प्रेरणा के साथ-साथ केन्द्र-निदेशक महोदय श्री सुरेन्द्र कृष्ण जी आहलूवालिया आई. ए. एस. के व्यक्तिगत स्नेह के फलस्वरूप ही यह कार्य संपन्न हो पाया है। पुणे में कार्यरत "आयकर पुनर्विचार ट्रिब्यूनल" के सदस्य, मेरे परम स्नेही श्री बिहारी लाल जी


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिब्बर आई. आर. एस. तथा मेरे मित्रवर प्रोफ़ेसर नारायण चन्द जी पराशर और मण्डी ज़िले (हिमाचल प्रदेश) के गुरकोठा गाँव के श्री मदन लाल जी घई ने भी मेरे लिए बड़ी उपयोगी सामग्री जुटाई है। मैं इन सभी महानुभावों का हृदय से आभारी हूँ।

जीवन संत कुटीर,
1697, मुहल्ला दीवान मूलचन्द,
(समीप आर्य समाज)
पटियाला (पंजाब) - 147001

विनीत:
नवरत्न कपूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तर भारत के नव वर्ष एवं ऋतु-परक लोकोत्सव

## चान्द्र वर्ष की व्यापक मान्यता

समूचे भारत की भाँति हमारे देश के उत्तरी भाग में भी अधिकांश लोकपर्व चान्द्र वर्ष की तिथियों के अनुसार मनाए जाते हैं। भले ही मुसलमानों के हिजरी सन् के महीनों के नाम हिन्दुओं एवं सिक्खों के वर्ष के महीनों के नामों से भिन्न हों, फिर भी हमारी मातृभूमि के इन तीनों महान् धर्मावलंबियों की चांद्र-वर्ष-गणना में अटूट आस्था अत्यन्त भव्य भावात्मक एकता की सूचक है। कृषि-प्रधान भारत का जन-मानस बसंत ऋतु में प्रकृति की अनुपम सुषुमा एवं वर्षा काल में उसकी हरीतिमा से आकृष्ट होकर मांगलिक उत्सव मनाने लगता है।

## नया साल

(क) **नवरेह** – काश्मीरी भाषा का 'नवरेह' शब्द 'नव वर्ष' का ही अपभ्रंश है। पंजाबी भाषा में इस शब्द का उच्चारण 'नव वर्हा' हो जाता है। 'नवरेह' लोकपर्व संपूर्ण काश्मीर घाटी में चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के दिन आयोजित होता है। इस शुभ अवसर पर प्रत्येक काश्मीरी परिवार की वयोवृद्धा घर के सभी सदस्यों को उषा काल से पहले जगाकर अपनी तश्तरी में धरे चावल के कच्चे दानों, पके हुए नान, दही, अखरोट, भात, नमक तथा फूलों का दर्शन करवाती है। अन्न, मेवों और वनस्पति की प्रतीक इस सामग्री में कलमदान तथा चाँदी का एक रुपया भी रखा जाता है।[1] 'नमक' समुद्र की देन होता है। रुपया एक ओर धातु को तथा दूसरी और लक्ष्मी को चिह्नित करता है और कलमदान विद्या की देवी सरस्वती को। जो भी व्यक्ति इस सामग्री का दर्शन करता है, वह तश्तरी से एक-एक अखरोट उठा लेता है। स्नान के समय अखरोट को नदी में बहा दिया जाता है, मानो काश्मीर के प्रसिद्ध मेवे अखरोट को वरुण देवता को समर्पण करके उससे पूरे वर्ष में पर्याप्त वर्षा के लिए मौन रूप में प्रार्थना की जा रही हो।

जंत्री (पंचांग) रखने की परंपरा भी बहुत-से काश्मीरी परिवारों में है और उसका दर्शन शुभ माना जाता है। प्रकारांतर से लोगों को व्रत-उपवास एवं मंगलमय आयोजनों की निश्चित तिथि का विवेक करवाने के उद्देश्य से ही पंचांग को दर्शनार्थ सामग्री के साथ रखने की प्रथा का सूत्रपात हुआ होगा। कुछ लोग इन वस्तुओं


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के साथ शीशा भी रखते हैं और लक्ष्मी की स्तुति करके पूरे परिवार की वर्ष भर सुख-समृद्धि की याचना भी करते हैं।[2]

श्रीनगर में डल झील का ऊपरी भाग फलों तथा मेवों के बाग़ीचों से घिरा हुआ है, उसी में स्थित 'हरि पर्बत' पर सभी धर्मों के लोग अपराह्न में एकत्र हो जाते हैं। वे अपने साथ काश्मीर में प्रचलित चाय की केतली 'समोवर' तथा स्वादिष्ट आमिष-निरामिष भोज्य पदार्थ लेकर गोठ (Picnic) के लिए पहुँच जाते हैं। लंबी सर्दी के बाद वे नए सूर्य की धूप का आनंद लेते हैं और हरे, पीले तथा सफ़ेद रंग वाली बादाम की कोंपलों को देख कर प्रफुल्लित हो उठते हैं।[3]

'नवरेह' के अवसर पर नए वस्त्र पहनने की परंपरा भी कई परिवारों में है। दामादों को इस दिन विशेष रूप से घर बुलाकर स्वादिष्ट भोजन करवाने तथा विदायगी के समय उन्हें पर्याप्त धन-राशि एवं उपहार भी भेंट किए जाते हैं।[4] 'नवरेह' संबंधी एक प्रसिद्ध काश्मीरी लोकगीत भी वहाँ की स्त्रियाँ गाती हुई सुनी गई हैं, जो इस प्रकार है :

नुोव नवरेह सोंत हय आवय,
यि कुसुय द्येदिये बोय म्योन आवय,
हस्थ्यन खसिथ्य आंगन च़ावय,
आंगस पेमय छत्रय छ़ाये,
तथ तल लभिमय मोक्तअफ अल्य ड़ाये
तिनमय कअरमय मालाये।

इस रचना का भावार्थ करते हुए एक विद्वान ने लिखा है : "नवरेह से संबंधित गीत में इस उत्सव का विशद चित्रण किया गया है। उत्सव को भाई के रूप में संबोधित कर, नए वर्ष का प्रतीक कहा गया है। अत: 'नवरेह' रूपी भाई किसी बहिन के आंगन में हाथी पर चढ़कर आया है और राजाओं की भाँति छत्र छाया में बैठकर मोती छितराने लगता है। बहिन उन मोतियों को उठाकर माला में पिरो देती है। सारा गीत नए वर्ष के लिए इच्छ़ित शुभ कामनाओं एवं सुखद संदेशों क़ा प्रतीक बना है।[5]"

जम्मू प्रांत के भद्रवाह तथा किश्तवार ज़िलों में चैत्रारंभ का विशेष महत्त्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उस समय आबशारों (Springs) तथा बाउलियों (बावड़ियों) में नया जल आता है। लोग इनमें स्नान करके नागों की पूजा करते हैं और उन्हें चावल तथा अनेक रंगों के पुष्प अर्पित किए जाते हैं।

(ख) **ज़ंग त्रेयी** – यह काश्मीरी 'नवरेह' से तीसरे दिन मनाए जाने के कारण 'ज़ंग त्रेयी' के नाम से प्रसिद्ध है। संभवत: जो लड़कियाँ अपने ससुराल में दामाद तथा ननद की 'नवरेह' के समय आवभगत करने में व्यस्तता के कारण उस दिन अपने मायके नहीं जा पातीं वे 'ज़ंग त्रयी' के अवसर पर ससुराल से पीहर पहुँचती रही होंगी। पहाड़ी रास्ते, स्थानों की दूरी और समुचित यातायात के साधनों के अभाव के कारण दूरदर्शी काश्मीरियों ने अपनी बेटी और दामाद की सुविधा को ध्यान में रखकर ही चैत्र का यह तीसरा दिन नियत किया होगा। ये बेटियाँ मायके पहुँच कर और माता-पिता अथवा उनके दिवंगत होने पर भाई-भाभी से सुंदर उपहार प्राप्त कर 'ज़ंग त्रेयी' की संध्या को ही अपने ससुराल लौट आती हैं।

(ग) **नवरोज़** – काश्मीर के शिया मुसलमान यह पर्व हिन्दुओं के 'नववर्षारंभ' से एक सप्ताह बाद मनाते हैं। नौ दिन चलने वाले इस 'नवरोज़' के उत्सवों को "जश्ने नौरोज़ी" भी कहा जाता है। सन् हिजरी के पहले दिन से आरंभ होने वाले इस पर्व पर मुस्लिम घरों में अनेक प्रकार के व्यंजन तैयार किए जाते हैं। किन्तु दूसरी ओर धार्मिक मरशिए (Religious Dirges) भी पढ़े जाते हैं।[7]

पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू प्रांत में चैत्र से आरंभ होने वाले "नव वर्ष" का स्वागत "देवी के नवरात्रों" से किया जाता है। इन नौ दिनों में लोग अपने सुविधानुसार जम्मू में 'वैष्णो देवी' की अथवा हिमाचल प्रदेश के नैना देवी, ज्वालामुखी आदि देवी धामों की यात्रा करते हैं। नवरात्रों में चंडीगढ़ के समीप और हरियाणा प्रांत में स्थित "मनसा देवी मंदिर" भी देवी-भक्तों का आकर्षण-स्थल बन जाता है।

(घ) **लोसर** – सन् 1959 में तिब्बत में चीन देश की आक्रामक कार्यवाही के कारण अधिकांश तिब्बती अपने धर्म गुरु श्री दलाई लामा के साथ हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला नगर में आ बसे हैं। ये तिब्बती भाई हर वर्ष मार्च के आरंभ में अपना नव वर्ष मनाते हैं, जिसे 'लोसर' कहा जाता है। दो मार्च, 1995 ईस्वी से तिब्बतियों


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का 2122 वाँ वर्ष आरंभ हुआ था। इस शुभ पर्व की तैयारी 10-15 दिन पहले शुरू हो जाती है। मकानों की लिपाई-पुताई और सजावट के अतिरिक्त नए कपड़े भी सिलवाए जाते हैं। भाई बंधुओं को भेंट करने के लिए उपहारों की ख़रीद के कारण पहाड़ी बाज़ारों में खूब रौनक़ हो जाती है।

मुख्य बौद्ध विहार की छत पर नव वर्ष के उषा काल में धर्मासन पर विराजमान होकर दलाई लामा जी अपने अनुयायियों को आशीर्वाद देते हैं। इसमें तिब्बती धर्म संघ 'कशाग' के लामा तथा अन्य मुख्य अधिकारी ही सम्मिलित होते हैं। इसके उपरांत बौद्ध विहार के भीतर विशेष प्रार्थना सभा आयोजित होती है, जिसमें सामान्य जन भाग लेते हैं। सर्दी की अतिशयता के कारण जो तिब्बती परिवार मैदानी इलाक़ों में ऊनी वस्त्र बेचने के लिए चले आते हैं, वे भी 'लोसर' के अवसर पर दलाई लामा जी से आशीर्वाद प्राप्त करने तथा अगले आठ-दस महीने फिर से पहाड़ों की खुली हवा में बिताने के लिए अपने घर लौट आते हैं।

वस्तुत: 'लोसर' पर्व तीन दिन चलता है। पहले दिन सभी तिब्बती परिवार पौ फटने से बहुत पहले अपनी शैया छोड़कर किसी निकटस्थ जलस्रोत पर पहुँच कर नए साल के जल का पहला पात्र भरते हैं। जल दाता नदी, सरोवर अथवा झरने को धूप-बत्ती भेंट करने के उपरांत रूमालनुमा एक सफ़ेद कपड़ा किसी समीपस्थ पेड़ की शाखा या झाड़ी से बाँध दिया जाता है। उसके पास ही नागों तथा भूत-प्रेतों को प्रसन्न करने के निमित्त 'फाई मार' (चासनी में पगे जौ) तथा घर में ही निकाली हुई शराब 'चंग' भेंट की जाती है। इसके बाद लोग घर पहुँचकर नित्य-नियमानुसार पूजा-पाठ करते हैं और परिवार समेत तिब्बत के परंपरागत भोजन 'चंगकोल' का रसास्वादन करते हैं। यह स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ, भुने और कुटे हुए जौ का दलिया होता है; जिसमें ढेर-सा पनीर तथा मीठा मिलाया जाता है। यह अनिवार्यत: पारिवारिक आयोजन होता है।

दूसरे दिन ये लोग नव वर्ष की बधाई देने के लिए बंधु-बांधवों के घरों पर जाते हैं। वहाँ पधारने वाले महानुभावों का स्वागत जलपान भेंट करके किया जाता है। किसी सामूहिक स्थल पर चोपड़ और शतरंज की प्रतियोगिताएँ भी होती हैं। वहीं पर तिब्बती नृत्यों एवं गीतों द्वारा जन समूह का मनोरंजन भी किया जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अमीर-ग़रीब, उच्च पदाधिकारी और सामान्य जन का भेदभाव मिटता तथा परस्पर भाईचारे का सद्भाव उमड़ता हुआ लक्षित होता है।

तीसरे दिन इन सामूहिक आयोजनों का समापन होता है, जबकि लोग बौद्ध विहारों में पहुँचकर धर्म गुरुओं, विशेषत: दलाई लामा जी का आशीर्वाद ग्रहण करते हैं। उस दिन प्रार्थना-ध्वज लहराना अत्यंत पुनीत कार्य माना जाता है। ये झंडे सफ़ेद, पीले, नीले, हरे और लाल रंग के होते हैं, जो कि पाँच तत्त्वों को चिह्नित करते हैं। तिब्बतियों का विश्वास है कि संसार की प्रत्येक वस्तु सजीव है और वह सांसारिक प्राणियों पर अपना मांगलिक अथवा अमांगलिक प्रभाव अवश्य छोड़ती है। इसीलिए भूत-प्रेतों को 'फाई मार' एवं 'चंग' भेंट करके उनसे जन-कल्याण की याचना की जाती है। पंचरंगे ध्वजों द्वारा आध्यात्मिक शक्तियों से सामंजस्य स्थापित करना ही उद्दिष्ट होता है। ध्वजोत्तोलन के साथ-साथ पहाड़ी शिखरों की शुद्धि एवं भूत-प्रेत के भय दूर करने के लिए वहाँ पर सुगंधित धूप-बत्तियाँ भी सजाई जाती हैं।

तिब्बती वर्ष-गणना चक्र 60 वर्ष को अवधि में चलता है। बारह मुख्य पशुओं तथा पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, लकड़ी और लोहा नामक पाँच तत्त्वों के गुणात्मक रूप से वर्ष के नाम का निर्णय किया जाता है। इन नामों में 'कुत्ता वर्ष' तथा 'सूअर वर्ष' जैसी अभिधाएँ भी पूरे बारह महीनों की अवधि को प्रदान कर दी जाती हैं। 'लोसर' वस्तुत: हेमंत ऋतु के अंत एवं बसंत ऋतु के आगमन का सूचक होता है। बर्फ़ के प्रकोप से मुक्त पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि-कार्य की गतिविधियाँ भी आरंभ हो जाती हैं। अत: इन्हीं शुभ लक्षणों के साथ नव वर्ष के सूत्रपात का प्रतीक 'लोसर' लोकपर्व बड़ी उमंगों सहित धूम-धाम से मनाया जाता है।

## ऋतु-परक लोकोत्सव

मनुष्य अत्यधिक सर्दी से भी घबराता है और तपस भरी गर्मी से भी। बाढ़ से भयभीत व्यक्ति आँधी, तूफ़ान भरी बरसात से भी कंपित हो उठते हैं। किन्तु


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बसंत ऋतु के बाद काल चक्र अनुसार ग्रीष्मकाल में तप्त सूर्य से शोषित धरती जल की याचना करती है। इंद्र देवता भी मुक्त हस्त से अनंत जल-वर्षा करके धरती माता को हरीतिमा से संपन्न कर देते हैं। आषाढ़ में जहाँ ताल-तलैयाँ सूखे रहते हैं, वहाँ सावन चढ़ते ही जल से पूरी तरह भर जाते हैं। इसी तथ्य को हरियाणवी जन मानस ने इस लोकोक्ति में निबद्ध करने का प्रयास किया है।

"हाड़ हाड़ै ना सावन सूखै"

उमड़ते-घुमड़ते मेघों को देख कर अपने चिकत्तों वाले नीले-काले पंख फैला कर मोर नाच उठता है और मोरनी उसकी मनमोहिनी भंगिमाओं पर फ़िदा हो उठती है। कृषक धान बोने में व्यस्त हो जाते हैं और उनकी बेटियाँ एवं बहुएँ वर्षा ऋतु के त्योहारों में नाच, गान, मुस्कान एवं मायके से प्राप्त नए वस्त्राभूषणों की शान जमाने में लीन हो जाती हैं।

(क) **तीज** - यह वर्षा ऋतु का लोक पर्व है, जो कि श्रावण शुक्ला तृतीया से पूर्णिमा तक मनाया जाता है। एक नव विवाहिता पंजाबी बिटिया ने इस त्योहार के आरंभ की तिथि और इसके समापन के बाद भादों के शुरू होने पर अपना गौना (मुकलावा) दिए जाने की चर्चा इस प्रकार की है :

"तीआँ तीज दीआँ
भादों दे मुकलावे
तीआँ तीज दीआँ।"

हरियाणा में इसे "सिंधारा तीज" और पंजाब में 'तीआँ' (तृतीया का अपभ्रंश रूप) अथवा "सावें" (हरियाली भरे वातावरण का लोकपर्व) कहा जाता है। पंजाब की बेटियाँ यह लोकोत्सव मनाने के लिए अपने मायके पहुँचती हैं। वे खूब सज-धज कर झूला झूलती हुई किस प्रकार मंगलाचार करती हैं, इसका संकेत करते हुए पंजाब के दो 'बारहमासा' लेखकों ने इस लोकपर्व की क्षेत्रीय नामावलि का उल्लेख भी कर दिया है, यथा :

(क) सावण सहेलीआँ दे नाल तीआँ खेडदी सी,
लैंदी सी हुलारे पींघ नाल आसमान दे।[8]

(बाराँमाह : भगवान सिंध)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) तां चढ़दे सावण सावें आए; रल के सहीआँ सीस गुंदाए।
सखी सहेली धड़े बँधाए, घरि घरि लोकाँ मंगल गाए।[9]

(बाराँमाह : हकूमति)

धार्मिक विचारों की स्त्रियाँ 'तीज' लोकपर्व का संबंध शिव-पार्वती के विवाह से जोड़ती हैं। वे कहा करती हैं कि जब भगवान शिव ने हिमालय-पुत्री पार्वती जी की घोर तपस्या पर प्रसन्न हो कर दर्शन दिए और उनकी मनोवाञ्छा-पूर्ति का वरदान दिया तो पार्वती जी की खुशी का पारावार न रहा। भोलेनाथ के अंतर्धान होने के बाद पार्वती जी ने योगिनी का वेश उतार कर अपने शरीर को मूल्यवान आभूषणों तथा सुंदर कपड़ों से सुसज्जित कर लिया। इस पहरावे में पार्वती जी एक नव विवाहिता युवती की भाँति दिखाई पड़ने लगीं। यही कारण है कि कई जगह हिन्दू स्त्रियाँ श्रावण शुक्ला तृतीया को व्रत रखती हैं और शिव-गौरी पूजन करती हैं। शिवालय में जाने से पूर्व व्रतधारिणी कन्याएँ एवं व्यसक स्त्रियाँ हाथों और पैरों में मेहन्दी रचाती हैं। फिर गहने-कपड़े पहनकर पूजा-आराधना हेतु जाती हैं।[10]

## पंजाब की "तीआँ"

देवी पार्वती की साधना-पूर्ति में भले ही पंजाब के लोगों का विश्वास हो अथवा न हो, फिर भी 'तीज' के शुभ अवसर पर सौभाग्य की कामना से सधवाएँ तथा कन्याएँ इस लोकपर्व के 'शुगनों' में मेहन्दी रचाने को अत्यंत महत्त्व देती हैं। इसी संदर्भ में पंजाबी ग्रामों का एक लघु चित्र ज्ञानी गुरदित्त सिंह ने बड़ी मनोरंजक शैली में उतारा है, यथा:

"तीआँ का आरंभिक दिन, तृतीया से पूर्व द्वितीया, "मेहन्दी वाला दिन" होता है। इस दिन रात्रि में सोने से पहले क्या बूढ़ियाँ और क्या बालिकाएँ, सभी की हथेलियाँ मेहन्दी से रंग दी जाती हैं। 'रगड़ी जो है, थोड़ी-थोड़ी सभी लगा लो, गर्मी से छुटकारा दिलवाती है'— ये शब्द कहते हुए कई एक के पैरों पर थोप दी जाती है। लड़कियाँ और छोटे-छोटे बालक झाड़ू की सींख ले कर हाथों पर गोलाकार चिह्न बनाते हैं तथा कई प्रकार की मीनाकारी भी करते हैं। भोली भाली युवतियाँ


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तथा वृद्धाएँ अपनी हथेली पर एक बड़ा-सा निशान बना कर ही "शगुन" (मांगलिक बोध) पूरा कर लेती हैं। मेहन्दी रगड़ते समय उसमें (जली हुई लकड़ी के) कोयले मिला लेती हैं ताकि पीले ज़र्द रंग की बजाय कुछ कालिमा झलके और उसके फीका पड़ते समय (हथेली) भद्दी न प्रतीत हो। इस रंग को 'कोकीआँ पै गईआँ' (=खूब गहरा उभरा है) कहा जाता है। 'मेहन्दी' की चर्चा "तीआँ" के "गिद्धा" नृत्य में भी बड़े जोश के साथ इन शब्दों में की जाती है।

महिंदी महिंदी सभ जग कहिंदा;
मैं वी आख दिआँ महिंदी।
बाग़ाँ दे विच्च ससती विकदी,
हट्टीआँ दे विच्च महिंगी।
घोट घाट के हत्थाँ नूँ ला लई,
फोलक बण बण लहिंदी।
महिंदी शगनाँ दी,
धोतिआँ कदे ना लहिंदी।[11]"

## सौग़ात तथा झूल' उत्सव

"तीआँ" मनाने के लिए मायके पहुँचने वाली नव विवाहिताओं को ससुराल से जो उपहार प्राप्त होते हैं, उन्हें 'संधारा'[12] कहा जाता है। इस त्योहार पर बहन को ससुराल से मायके लिवाने के लिए कई जगह भाई को भोजन करवाने का रिवाज भी है। भाई भी जाते समय कुछ उपहार ले कर जाता है, जिन्हें 'तिहार' कहा जाता है और कुछ लोग उसे भी 'संधारा' कहते हैं। हिन्दू और सिक्ख परिवार बेटी को इस मौक़े पर भेजने के लिए आटे-सूजी को खूब भून कर उसमें बूरा तथा मेवे मिला कर 'लड्डू' बना लेते हैं, जिन्हें 'पिन्नीआँ' कहा जाता है। भाई की प्रतीक्षा करने वाली एक बहन के इन्हीं उद्गारों को पंजाब की बेटियों ने अपने लोकगीत में इस प्रकार गूँथा है :

माए पीहड़ी बैठीए नी,
धीआँ किउँ दित्तीआँ दूर, सावण आइआ।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

× ×

पंज सेर पिन्नीआँ पा के, माए मेरीए
वीर मेरे नूँ भेज, सावण आइआ।

× ×

आ वे वीरा मेरिआ,
विहड़े विच थम्म गड़ा, सावण आइआ।
रत्ते वे चीरे वालिआ
भैणां नूँ हूटे दवा, सावण आइआ।[13]

'तीज' से कुछ दिन पहले बहन अपने भाई के साथ मायके चली जाती है और "तीआँ" से एक दिन पहले अथवा उसी दिन लड़की को सास, ननद, देवर में से कोई-न-कोई व्यक्ति 'संधारा' लेकर अपने समधियाने में पहुँचाते हैं। इसमें पालकी, सुहाग पिटारी, भाँडिआँ दी पिटारी, लज्ज़ (झूले की रस्सी) और 'फट्टी' (झूलने हेतु पटरी, जिसकी लकड़ी पर रोग़न के अनेक रंगों से रंगा लोहा मढ़ा रहता है) रखी जाती हैं। 'पालकी' बाँस की तीलियों और रंग-बिरंगे काग़ज़ों से सजा खिलौना होता है, जो कि बेटी को उस 'डोली' का स्मरण करवाता है, जिसमें विदा हो कर वह ससुराल गई थी। ससुराल में पहुँच कर इस पुत्रवधू ने चूल्हे-चौके का काम भी कुशलता पूर्वक संभाल रखा है; "भांडिआँ दी (बर्तनों की) पिटारी" की खिलौना-नुमा कलुछी, क़ड़ाही, तवा, बेलन आदि वस्तुएँ इसी तथ्य की ओर इंगित करती हैं। "सुहाग पिटारी" की बिंदी, सुर्खी, पाउडर चेहरे की सुंदरता को बढ़ाने के लिए और "रंगली मेहन्दी" हथेलियों पर खूब रंग चढ़ाने हेतु रखी जाती है। अब "सुहाग पिटारी" की जगह 'सिंगारदान' भेजने का रिवाज भी चल पड़ा है, जिसमें स्त्री-शृंगार की सामग्री के साथ कंघा तथा शीशा भी धरे होते हैं।

पंजाब में सधवा के वस्त्राभूषणों में पहले सलवार, कुर्ता और चुनरी का 'तेवर' (तीन वस्त्र) भेंजना आवश्यक होता था। अब इन कपड़ों की बजाय साड़ी-ब्लाउज भी भेजा जाने लगा है। मिष्टान्न के रूप में 'घेवर' भेजना अत्यावश्यक होता है। लड़कियों के मनोरंजन के लिए "बुड्ढा" और "डूमनी" नामक दो खिलौने भी सिंधारे में रखे जाते हैं। स्प्रिंगदार 'बुड्ढा' लकड़ी की डिबिया से जब उछलकर बाहर आता है तो उसकी विदूषकों जैसी टोपी और सफ़ेद दाढ़ी हिलती देख कर लड़की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सहेलियाँ तथा मायके के अन्य सदस्य हँस-हँस कर लोट-पोट हो जाते हैं। लोहे के हाथों वाली लकड़ी की गुड़िया स्प्रिंग दबाने से ताली बजाती हुई पंजाबी डूमनी (डोम जाति की स्त्री) का पर्याय बन जाती है।[14]

मुस्लिम परिवारों में भी संधारा भेजने की प्रथा प्रचलित है। यदि किसी लड़की की सगाई और निकाह के बीच 'तीआँ' का त्योहार आ जाता है तो मुसलमान लोग अपनी भावी पुत्रवधू को "खजूर" की शक्ल की मिठाई और नए वस्त्र भेजते हैं। ये "खजूर" गेहूँ के आटे में गुड़ की चासनी मिलाकर तेल में तले जाते हैं। मुस्लिम भाई इस सारी सौगात को 'संधारा' की जगह 'संधारी' पुकारते हैं।[15]

'तीआँ का मेला' गाँव के किसी ऐसे स्थान पर लगता है। जहाँ पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध रहता है। कन्याएँ, युवतियाँ और कई बार वृद्धाएँ भी ऐसे मेलों में सम्मिलित होकर झूला झूलती हैं। 'तीआँ' के लोकगीतों में कहीं सास-ससुर पर व्यंग्यवाण छोड़े जाते हैं और कहीं महंगे दामों पर सामान बेचने वाले सौदागरों तथा दुकानदारों पर छींटाकशी की जाती है। वर्षा की फुहार और आनंदमय वातावरण का उल्लेख भी खुल कर होता है। निम्नलिखित लोकगीत इस तथ्य को प्रकाशित करते हुए हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई के भेदभाव को भुला कर मरियम (ईसाई), राम प्यारी (हिन्दू), किशनो तथा हरनामी (सिक्ख), एवं जन्नत (मुस्लिम) नामक पंजाबी बेटियों का "तीआँ" के आमोद-प्रमोद में सम्मिलित होने एवं 'भावात्मक एकता' की मधुर भावना के संचार को भी द्योतित करता है :

आइआ सावण दिल परचावण,
झड़ी लग्ग गई भारी।
झूटे लैंदी मरीअम भिज्ज गई,
नाले राम पिआरी।
कुड़ती हरो दी भिज्ज गई वरी दी,
किशनो दी फुलकारी।
हरनामी दी सुत्थन भिज्ज गई;
बहुते गोटे वाली।
जन्नत दीआँ भिज्ज गईआँ मेढ़ीआँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिणती 'च पूरीआँ चाली।
भज्ज के कुड़ीआँ पिंड जा वड़ीआँ
मींह ने घेर लईआँ काहली।
पींघ झूटदी सस्सी डिग्ग पई,
नाले नूरी नाभे वाली।
शामो कुड़ी दी झांजर गुआच गई,
राम रक्खी ने भाली।
भिज्ज गई लाजो वे,
बहुते हरखाँ वाली।
साउण दिआ बद्दला वे,
हीर भिउँदी सिआलाँ वाली।[16]

इस प्रकार नित्य नए साज-शृंगार और खेल-तमाशे के साथ लगभग तेरह दिन आनंद पूर्वक बीत जाते हैं। श्रावण पूर्णिमा को 'रक्षा बंधन' होगा। बहन अपने भैया को राखी बाँधेगी और उसके पतिदेव दो-एक दिन बाद उसे मायके से ससुराल ले जाएँगे। इस विदायगी की वेला का करुणामय दृश्य बहन की आँखों के सामने मेले से चलते समय प्रतिदिन आता है। सभी स्त्रियाँ वहाँ से अपने-अपने घर लौटते समय यह चौपाई गाती चलती हैं :

सौण वीर कट्ठीआँ करे
भादों चंदरी बछोड़े पावे।
तीआँ तीज दीआँ,
भादों दे मुकलावे।

विचित्र है नारी-मनोविज्ञान जिसने 'सावन' (= सौण) मास को अपना भ्राता (= वीर) बना लिया है। माँ और सहेलियों से मिलाप का श्रेय (कट्ठीआँ करे) भाई को दिया जाता है। 'भादों' की कुछ सीमा तक समध्वनि वाली भावो (भावज) को 'चंदरी' कहकर कोसा जाता है, जो कि अपनी ननद रानी को विदा करने के लिए अपने सास-ससुर और पति को प्रेरित करती है। इस घर की 'ननद' उस घर में 'भावज' होगी। यह सब कुछ जानते हुए भी इन दोनों का हास-परिहास,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलाप और बिछोड़े की मधुर एवं कटु स्मृतियों को संजोए हुए तीज का त्योहार, अज्ञात काल से निरंतर चला आ रहा है।

## शहरों में "तीआँ" के लोकाचार

संधारे की सामग्री और घेवर खरीदने के लिए ग्रामीण आस-पास के नगरों में जाते हैं। नगर निवासी भी अपनी पुत्रवधुओं को संधारा भेजते हैं। क्या ग्रामीण और क्या नागरिक, प्राय: सभी परिवारों में दामाद तथा अन्य अतिथियों के स्वागत हेतु खीर-पूड़े (पूए) परोसे जाते हैं। नगरों और कस्बों की समाज-सेवी संस्थाओं के महिला सदस्य अपने-अपने क्लबों की ओर से "तीआँ के मेले" का आयोजन दो-एक दिन कर लेते हैं। इस अवसर पर क्लब की प्रबंध-समिति की ओर से मेले में आमंत्रित महिलाओं को विशिष्ट अतिथि रंग-बिरंगी चूड़ियाँ भेंट कर देती हैं। तदनंतर क्लब की चारदीवारी में पंजाब के लोक प्रचलित गीतों के साथ गिद्धा, नृत्य और झूला झूलने के कार्यक्रम कुछ घंटों तक चलते रहते हैं।

गाँवों और छोटे क़स्बों में नवयुवक तथा रसिक स्वभाव के वृद्ध ऊँचे मकानों की छतों पर चढ़कर लुके-छिपे रूप में "गिद्धे" का रसास्वादन कर लेते हैं। विवाह-गौने वाली बेटी-बहू की सुख-शांति पूर्वक विदायगी हेतु श्रद्धालु जन पहाड़ों में देवी के "भौनों" के दर्शनार्थ पहुँच जाते हैं। मन्नत पूरी होने पर वे पुन: देवी-धाम की यात्रा करते हैं और वर्षा ऋतु में पहाड़ों पर चढ़ी नई जवानी का आनंद लूटते हैं। शहरों की उमस के कारण शरीर की चिपचिपाहट से मुक्ति और माता के दर्शन – मानो इनके "दोनों हाथों में लड्डू हों"; जिसके लिए पंजाबी कहावत है : "पुन्न दा पुन्न ते फलीआँ दीआँ फलीआँ।"

जो कुल-पुरोहित और पुरोताहिन साल भर यजमान के द्वार पर पधार कर दान-दक्षिणा प्राप्त करते हैं, उनके सम्मान हेतु "यजमान राजा" को "पंडित जी" के घर पर एक बार दर्शन करने के लिए जाना ही चाहिए। यही कारण है कि कुछ शहरों के खत्री परिवार श्रावण शुक्ला तृतीया को 'तीआँ' की शाम को अपने पुरोहित जी के निवास स्थान पर पहुँचकर "दुर्गामाता" को "मत्था टेकते" हैं। वे अपने श्रद्धानुसार पूजा-स्थल पर विराजमान पंडित जी के उपयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेतु कुछ धन-राशि भी भेंट कर आते हैं। माँ भवानी के समक्ष शीश झुका कर वे अपनी मनोभिलाषा-पूर्ति के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हैं और कई बार नई मन्नतें भी मान आते हैं। इस प्रकार यह सिलसिला पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है।

जब यजमान घर लौटने लगता है तो पुरोहित जी की धर्मपत्नी ढाक के पत्ते से बने दोनों में प्रत्येक प्राणी के लिए उबले हुए काले चने और हलवा रख कर देती है। देवी का यह 'प्रसाद' लोक बोली में 'जी पते' (प्रत्येक जीव के हिसाब से एक पत्ता) कहलाता है। किसी सुशिक्षित और भोले भाले व्यक्ति ने 'प्रसाद' की इस सामग्री का रहस्य-बोध बड़े सुंदर ढंग से करवाया है।

"सफ़ेद रंग का हलवा सुखों का प्रतीक होता है। जिस प्रकार हलवा जल्दी से गले से उतर कर पेट में पहुँच जाता है, उसी तरह सुख का समय भी हँसते-खेलते शीघ्र ही बीत जाता है। किन्तु उबले हुए काले चने दुःख भरी कठोर रात्रियों के समान होते हैं, जिन्हें झेलने के लिए "गज़ भर का कालजा" (=अत्यंत साहस) होना चाहिए। जिस का 'हीआ' (दिल) बड़ा न हो उसे दुःख की घड़ियाँ 'लोहे के चने चबवा' देती हैं। किन्तु ऊँचे हौसले वाले दुःख रूपी दैत्य के दाँत खट्टे करने में समर्थ हो जाते हैं।[17]"

## हरियाणा की "सिंधारा तीज"

### उपहारों का आदान-प्रदान

बेटी या पुत्रवधू को विशेष त्योहारों पर भेजे जाने वाले मांगलिक उपहारों के लिए प्रचलित पंजाबी शब्द 'संधारा' में 'इ' (ि) की वृद्धि हो जाने से इस का हरियाणवी उच्चारण 'सिंधारा' बन गया है। हरियाणा के जन-मानस ने नारी जाति के सौभाग्य सूचक श्रावण शुक्ला तृतीया के लोकपर्व के साथ बड़े सुंदर ढंग से इसे 'सिंधारा तीज' का नाम देने में बड़ी बुद्धिमत्ता दिखाई है। 'तीज' के पर्व पर बहन को सुसराल से मायके लाने के लिए भाई की तैयारी और भेंट स्वरूप ले जाई जा रही सामग्री को 'सिंधारा' नाम देकर "परस्पर स्नेह धारा-प्रवाह" की अर्थवत्ता को बड़े विचित्र ढंग से इन पंक्तियों में प्रकट किया गया है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RA
४१.५
कपूर-३

पति हो तेरी कित की त्यारी सै
बहाण मेरी सुनपत ब्याही सै[18]
हे री तीज्याँ का बड़ा त्युहार
सिंधारा लै कै जाऊँगा।

यदि किसी कारणवश बेटी मायके आने में असमर्थ होती थी तो भाई कपड़े की बनी गुथली में सामान ले कर बहन के घर जाया करता था। इसमें माता की ओर से वस्त्राभूषण, विशेषत: लाल या पीली तील (घगरी) अवश्य भेजी जाती थी। इन उपहारों में बड़ी बहन अपनी अनुजा के लिए सौभाग्य सूचक 'चूड़ियाँ' और भावज अपनी ननद रानी को पैरों की पाजेब (झाँझण) भेजा करती है। इन चीज़ों से गुथी पोटली को ही हरियाणवी में 'कोथली' कहते हैं। प्राचीन काल में भाई की अन्यत्र व्यस्तताओं के कारण 'कोथली' ले जाने का कार्य परिवार का 'नाई' पूरा कर दिया करता था। नाई के विलंब से पहुँचने के कारण उसे कोसा भी जाता था, यथा :

बागाँ मै पपीहा बौल्या, सामणियाँ कद ल्यावैगा।[19]
नीमां के निबौली लाग्यी, सामणियाँ कद आवैगा।
मरीयो री बसंता नाई, कोथली कद ल्यावैगा।
आवै गा री आवैगा, मेरी माँ का जाया आवैगा।
माँ की तील, बाहण का जोड़ा, बहु की झांझण ल्यावैगा।

पुस्तकालय
127798

कुछ जगहों पर 'कोथली' में रखी 'तील' (घगरी) सास के लिए, शरीर पर धारण करने वाले चोली-घाघरा (कपड़ों का 'जोड़ा') ननद (पति की 'बहन') के लिए और जेठानी-बहू के लिए झाँझरें भी भेजी जाती हैं। बहन के लिए तो 'कोथली' में मिठाई ही होती है। ये सब चीज़ें 'मौसी' की संज्ञा से विभूषित अपनी बहन की सास को माँ की ओर से भेंट करके भाई उनसे अनुरोध करता है कि उसकी माँ-जायी को 'सिंधारा तीज' मनाने के लिए उसके साथ भेज दिया जाए। समझदार सास अपनी बहू को मायके भेज देती है। लोक-काव्य में इस तथ्य का चित्रांकन इस प्रकार हुआ है :


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीठी तो कर दे मेरी माँ कोथली जांगा बाहण कै री देस
मीहां नै झड़ ला दिए।

× ×

सिर पै तो धर ल्यूँ मेरी माँ कोथली छम दे सी मारूँगा छाल
मीहां नै झड़ ला दिए।

× ×

तीजां का आया त्योहार मौसी री बेबे घाल दे
मीहां नै झड़ ला दिए।
तीजां का आया सै त्योहार लाडो तो घर नै आ गई
मीहां नै झड़ ला दिए।[20]

## मनोविनोद और खान-पान

कुछ दिनों के बाद सास की ओर से बहू को मेहन्दी, चुनरी, चोली, घागरा, आभूषणों और मिठाई के साथ झूलने के लिए रस्सी तथा पटरी प्राप्त हो जाती हैं। वह माता रूपी स्नेही सास द्वारा भेजी गई चुनरी की सुंदर कढ़ाई पर लट्टू हो जाती है। उसे सामान्य, रस्सी भी रेशम की डोर तथा साधारण लकड़ी से बनी 'पटरी' चंदन से बनी दिखाई पड़ने लगती है। ऐसे अवसर पर हरियाणा की छोरी खुशी से झूमकर कहती है :

(क) सासड़ नै भेजी है माँ मेरी चुंदड़ी जी
ए जी कोई दे भेजी मेरी सास, इंद राजा नै झड़ी ए लगा दई जी,

× ×

सासड़े में बेट्टी हैं माँ मेरी न्यूँ रहवै जी
ए जी ज्यूँ रै कढ़ाई बिच तेल[21], इंद राजा नै झड़ी ए लगा दई जी।

नृत्य-गान के लिए स्त्रियाँ किसी एकांत स्थान पर एकत्र हो जाती हैं। कई बार तो घर में झूलने के लिए छत के शहतीर में अथवा किसी समीपस्थ वट वृक्ष में भी झूला-पटरी लटका लिए जाते हैं। एक ही जगह चार रस्सियाँ लटका कर और उनमें अपनी-अपनी पटरी फँसा कर दो लड़कियाँ पैरों के पंजे आपस में जोड़


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कर बैठ जाती हैं, इसे 'पिंजौला' अथवा 'पिंजौली' कहा जाता है। दो (=युगल) पंजों को जोड़ने के साथ किए जाने वाले इस खेल में एक लड़की इधर से और दूसरी उधर से 'पिंजौला' डालने वाली स्त्रियों को झुलाती है। एक लोकगीत में हरियाणवी वस्त्रों की बानगी के साथ इस खेल का उल्लेख इस प्रकार हुआ है :

सात जणी का हे मां मेरी झूलणा जी
पड्या पिंजौला हरियल बाग में जी
अस्सी गज का है मां मेरी घाघरा जी
उस में कली सैं तीन सौ साठ जी
पड्या पिंजौला हरियल बाग में जी।

सखियों के पहले हिचकोले के साथ ही बिजली चमकती है। फिर हल्की बूँदा बाँदी के कुछ बाद मूसलाधार वर्षा आरंभ हो जाती है। पाँचवाँ हचकोला होता है खूब भीग जाने के बाद ; जब तर-ब-तर कपड़ों के कारण नायिका को झुर-झुरी छूटने लगती है। इन पाँच पगों वाली 'पिंजौली' द्वारा लोकगीत की रचनाकार अज्ञात देवी ने वातावरण से बड़ा विचित्र साम्य बैठाया है :

अगर चंदन की पहाड़ी, सब सखी झूलण जायं
पड़ी है पिंजौली निहालदै के बाग मअं।
पहला झोट्टा, हे माँ मेरी मैं लिया री
रल ग्यी लौर्या महं-पड़ी है पिंजौली बाग मअं जी।
दूजा झोट्टा चमकी बीजली जी।
हां री कोय तीजै मअं पड़ी फुहार।
चौथे झोट्टे झड़ी ए ला दई,
सभी भीजैं खड़ी ए लार-पतार।.....पड़ी है पिंजौली

झूला झूलने-झुलाने की प्रक्रिया में कई जगह तरह-तरह की चुहलबाज़ियाँ भी 'तीज' के त्योहार में खूब रंग भर देती हैं। इस संबंध में श्री राजा राम शास्त्री का कथन है :

"किसी नव विवाहिता लड़की को झूले पर बिठा कर पींग चढ़ाना और इतनी ऊँची चढ़ाना कि गिरने के भय से चीखने लगे और तब उसके मुख से उसके पति


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का नाम सुनने का अन्य सहेलियों का आग्रह और परिहास दर्शनीय होता है। भयभीत नवोढ़ा पति का नाम लेना पाप समझती है और झटके देने वाली सहेलियाँ नाम लेने के लिए आग्रह कर रही हैं। उसे या तो छोड़ा जाता है जब वह अपने पति का नाम ले दे, या फिर तब जब वह इतनी भयभीत हो जाए कि सहेलियाँ भी उसके भय से आशंकित हो उठें।[22]"

पंजाबी लोकगीतों की भाँति हरियाणवी लोकगीतों में भी 'मेहन्दी' केवल अपना रंग ही नहीं जमाती, बल्कि भौजाई एवं ननद के अगाध स्नेह को भी दर्शाती है, यथा :

घोलो री नंणद मेंहदी के पात रगड़ रचाओ मेंहदी जी राज।
नणद रचाए हाथ और पां हम नै रचाई आंगली जी राज।
जीवो जी नंदल थारे बीर सदा सुहागण म्हारी नणदली जी राज।
द्यूँगी री नणदल बुगचे की तील छटे महीने सीधा कोथली जी राज।

'सोहागिनों की परमप्रिया "श्रावणी तीज" के बारे में एक विद्वान का कथन है : "खाइए त्योहार, चालिए ब्यौहार वाली नैतिक सूझ-बूझ, पारिवारिक दायित्व-निर्वाह की भावना तथा सावन के गीत गा कर तीजों का पर्व मनाने के संकेत आदर्श गृहिणी पद को गौरव प्रदान करते हैं। खीर का भोजन और गीतों की झंकार.....ये हैं सावन के रंग।"[23]

## राजस्थान की तीजें

सूर्य की तेज़ धूप के कारण राजस्थान का रेतीला भाग तवे की भाँति तप उठता है। अत: "दीर्घ दाघ निदाघ" से राहत प्रदान करने वाली रिमझिम करती फुहारों का राजस्थान में अत्यधिक स्वागत होता है। उसी मंगल वेला में राजस्थान की रंगीली धरती पर "तीज का मेला" मनाया जाता है। तभी से राजस्थान की वीर भूमि पर पर्वोत्सव का निरंतर सिलसिला चल पड़ता है, जिसकी इतिश्री गणगौर उत्सव में दिखाई पड़ती है। अत: किसी बुद्धिमान व्यक्ति ने छह शब्दों की इस सूक्ति में बड़े पते की बात कह डाली है :

"तीज त्योंवारों बावड़ी ले डूबी गणगौर"

उत्तरांचल के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा राजस्थान में 'गणगौर' की भाँति 'तीज'


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की महिमा इस बात से जानी जा सकती है कि इस प्रदेश में यह पर्व केवल "श्रावणी तीज' को ही नहीं, बल्कि "भादों की तीज" को भी मनाया जाता है। सावन लगते ही भाई द्वारा बहन को तीज मनाने के लिए ससुराल से पीहर ले जाने, रेशम की डोर से बना झूला झूलने की राजस्थानी बेटी की साध और कई बार निष्ठुर पति के विछोह की वेदना 'तीज' के लोकगीतों में उमड़ पड़ती है। विवाह के पश्चात् पहली तीज पर पत्नी साज-शृंगार किए बैठी हो और पति घर पर न हो तो उसे वास्तव में उपालंभ सहने ही पड़ते हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध लोक काव्य में "ढोला मारु" में यह बात बड़े स्पष्ट शब्दों में कही गई है। "उपालंभ" की मार पति एवं पत्नी दोनों को सहनी पड़ती है, यथा :

जउ तू साहिब नावियउ, सावण पहली तीज।
बीजल तणइ झबूकड़इ, मूँध मरेसी खीज।

होली नहीं आयो, गिण्गोरियो नहीं आयो,
नहीं आयो तीज्यांह।
म्हाँवालो मोल्यो मिलै, ओलंभो दीज्योह।।

(क) **छोटी तीज** - राजस्थान में सावन के शुक्ल पक्ष की तृतीया के लोकपर्व को 'छोटी तीज' पुकारा जाता है। नव विवाहिताएँ दूज की रात्रि को ही हाथों और पैरों में मेहन्दी रचा लेती हैं। वे तड़का (सुबह) होते ही रंग-बिरंगी लहरिएदार चूनरी, घगरी और आभूषणों से सज-धज जाती हैं। फिर एक-दूसरे के घर से सहेलियों को बुला-बुला कर झूला झूलने के लिए किसी निश्चित स्थल पर एकत्र होती हैं। इस प्रकार का मेला प्राय: राजस्थान के सभी नगरों तथा गाँव में लगता है। किन्तु जयपुर नगर में श्रावण शुक्ला तृतीया को लगने वाला 'तीज का मेला' दूर-दूर से दर्शकों को राजस्थान की राजधानी की ओर खींच लाता है।

शाम होते ही स्त्री और पुरुष दर्शक त्रिपोलिया, छोटी चौपड़, गणगौरी बाज़ार तथा चौगान नामक इलाक़ों में सड़कों एवं मकानों की छतों पर ही नहीं, यहाँ तक कि पेड़ों पर भी जमा हो जाते हैं। तभी 'त्रिपोलिया' से तीज की सवारी निकलती है। किसी वाहन में एक देवी प्रतिमा को सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणों से सजा कर


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिपोलिया बाज़ार से छोटी चौपड़, गणगौरी बाज़ार और चौगान तक ले जाया जाता है। बैंड-बाजों की मधुर धुनों के साथ राजस्थानी पगड़ी पहने और पुरानी तथा नई वेशभूषा में सुसज्जित हाथी, घोड़ों एवं ऊँटों पर बैठे सवार शोभा-यात्रा में समाँ बाँध देते हैं। नगर की जगमगाहट में "पार्वती जी" की प्रतीक देवी-प्रतिमा "तीज" के दर्शनों के लिए सुहागिनें अपने वर की मंगल-कामना हेतु चढ़ावा चढ़ाती और मधुर लोकगीत गाती उमड़ पड़ती हैं। मेला देखने के बाद घर लौटने वाले लोग "तीज" के शुभ अवसर पर सजी दुकानों से 'फीणी' और घेवर खरीद कर घर ले जाना नहीं भूलते।

(ख) **बड़ी तीज** - भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की तृतीया को राजस्थान में 'भादव तीज' अथवा "बड़ी तीज" कहा जाता है। 'छोटी तीज' से पन्द्रह दिन बाद आने वाले इस लोकपर्व पर बहुत-से राजस्थानी परिवार नववधू को 'सिंजारा' (संधारा=सिंधारा) भेजते हैं। 'सिंजारे' में नववधू के लिए वस्त्राभूषण के अतिरिक्त घेवर भेजना भी आवश्यक होता है। कई परिवारों में इस दिन घर को खूब लीप-पोत कर आंगन में खड़िया तथा गेरु से 'माँडने' मांडे जाते हैं। आटे, चावल, बेसन और जौ के "सातू" (सत्तू) भी विशेष रूप से तैयार किए जाते हैं।

कुछ परिवारों में 'बड़ी तीज' के अवसर पर "नीमड़ी" पूजने की प्रथा भी है। एतदर्थ नीम की एक बड़ी शाखा पेड़ से तोड़ कर लाने के बाद मिट्टी के कुंड में रोप दी जाती है। कुंड के बीच पानी भर दिया जाता है और उसके समीप एक दीपक जला कर रख दिया जाता है। उस दिन सधवाएँ उपवास रखती हैं। प्रातः काल में स्नान करने के बाद वे महावर-काजल लगा लेती हैं। वे नए चुटीले और चूड़ली (चूड़ियाँ) से सुसज्जित होकर रंग-बिरंगे कपड़े धारण कर लेती हैं। तदनंतर परिवार की सभी स्त्रियाँ मिलकर "नीमड़ी पूजन" करती हैं।

'नीमड़ी' के कुंड में भरे पानी में नींबू, नीम का पत्ता और सत्तू में मीठा मिलकर बनाया गया लड्डू एक-एक करके देखा जाता है। सत्तू का यह लड्डू विशेष रूप से पूजा के पश्चात् पति को ही दिया जाता है। सभी वस्तुएँ पानी में देखने के बाद घर की बड़ी-बूढ़ी एक लोक कथा भी सुनाती है। वह इस प्रकार है :

"सात देवरानियाँ-जेठानियाँ थीं। एक के पीहर में सभी लोग थे, बाक़ी के


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई नहीं था। जिसके पीहर था, उसके माता-पिता बेटी को भाई के हाथ सातू (सत्तू) - रुपया भेज देते। कई साल यह क्रम चलता रहा। एक बार बाक़ी के छह भाई किसी दुकानदार के घर में घुस गए। गिनती के छह हट्टे-कट्टे नौजवानों को कौन रोक पाता। उन्होंने चने की दाल निकाली और उसे पीस कर सत्तू बना लिए। इसी बीच किसी ने पुलिस को सूचित किया और वह घुसपैठियों को पकड़ने आ गई। किन्तु थाने में जा कर उन्होंने सारी बात सच-सच बता दी। दयालु थानेदार उनकी बेबसी को समझ गया और सभी भाइयों को यह कहकर छोड़ दिया – 'तुम लोगों को क़ैद में डालने से सधवाएँ भूखी रह जाएँगी। जब तक वे तुम लोगों से प्राप्त मायके वाला 'सातू का लड्डू' अपने-अपने पति को अर्पण नहीं करेंगी, तब तक पानी की बूँद भी मुँह में नहीं डालेंगी। इसलिए उनके भूखे रहने का पाप मुझे लगेगा।"

जिस दुकानदार के घर में चोरी की गई थी, वह भी इन लोगों की विवशता को समझ गया। तभी से वह उन बहुओं को "सातुड़ी तीज' के अवसर पर सत्तू भेजने लगा, जिनके मायके में कोई नहीं था। साथ ही उसने यह भी कहलवा दिया कि यदि किसी स्त्री के 'पीहर' न हो तो वह अपने घर में ही किसी भी अनाज का "सातू" बना कर पूजन कर सकती है। तभी से व्रतधारिणी स्त्रियाँ अपने घर पर अनाज को छान-बुहार कर और पीस कर सत्तू बनाने का माहात्म्य समझती हैं।"

दिन भर उपवास रखने के बाद वे रात्रि में चन्द्रमा को अर्घ्य देकर भोजन करती हैं। वस्तुतः "बड़ी तीज" का यह व्रत राजस्थान की अपनी विलक्षणता है और वहाँ की स्त्रियों के धैर्य एवं धर्म-निष्ठा को प्रकट करता है। कुछ परिवारों में छोटी तीज पर पीहर से आया घेवर और रुपया भी बहुएँ सास को भेंट करती हैं, जिसे 'बीया निकालना' कहा जाता है। सावन और भादों की दोनों तीजों के अवसर पर झूले की पटरी को बीच में जोड़ने वाली रस्सियों की तरह सहेलियों के स्नेह-बंधन का संकेत 'हींडो' लोकगीत में निबद्ध है, यथा:

सावणियै री हींडौ रे बाँधण जाम।
भादवियै री हींडौ रे बाँधण जाम।।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हींडौ रे वांधण जाम।
सात सहैल्यांरे साथ।।

## बसन्तोत्सव

ऋग्वेद (10/10/6) में ग्रीष्म, शरद एवं बसंत नामक केवल तीन ऋतुओं का ही वर्णन हुआ है। किन्तु कालांतर में 'बसंत' केवल एक ऋतु-बोधक नाम ही न रहा, प्रत्युत् इस की शोभा के लक्षित करने वाले अनेक लोक पर्व प्रचलित हो गए। फिर भी पंजाब, हरियाणा और जम्मू के कुछ भागों में आज भी 'बसंत पंचमी' नामक एक लोक पर्व है, जिसका सीधा संबंध उसकी संज्ञा-बोधक ऋतु से जोड़ा जा सकता है।

## आदि प्रागैतिहासिक रूप

हिन्दी के उच्च कोटि के विद्वान् डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने वसन्तोत्सव के उद्भव एवं क्रमिक विकास की झाँकी इस प्रकार प्रस्तुत की है :

"कामशास्त्र में 'सुवसंतक' नामक उत्सव की चर्चा आती है। 'सरस्वती कंठाभरण' में लिखा है कि 'सुवसंतक' वसंतावतार के दिन को कहते हैं। वसंतावतार अर्थात् जिस दिन बसंत पृथ्वी पर अवतरित होता है। मेरा अनुमान है कि 'वसंतपंचमी' ही 'वसंतावतार' की तिथि है। "मात्स्यसूक्त" और "हरिभक्ति विलास" आदि ग्रंथों में इसी दिन को बसंत का प्रादुर्भाव-दिवस माना गया है। इसी दिन मदन देवता की पहली पूजा विहित है।.....सरस्वती कंठाभरण में महाराज भोजदेव ने सुवसंतक की एक हल्की-सी झाँकी दी है। इस दिन उस युग की ललनाएँ कंठ में कुवलय की माला और कान में दुर्लभ आम्र-मंजरियाँ धारण करके गाँव को जगमग कर देती थीं :

छुणपिट्ठ धूसरत्थणि, महुमअतम्मच्छि कुवलआहरणे।
कण्णकअ चूअमंजरि, पुत्ति तुए मंडिओ गामो।।

पर यह अपेक्षाकृत परवर्ती समाचार है। इसके पहले क्या होता था ? क्या बसंत के जन्मदिन को मदन का जन्मोत्सव मनाया जाता था ? धर्मशास्त्र की पोथियों में लिखा है कि बसंत पंचमी के दिन मदन देवता की पूजा करने से स्वयं श्री कृष्णचन्द्र जी प्रसन्न होते हैं। यह और मज़ेदार बात निकली। तांत्रिक आचार के अनुसार


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णु-भजन करने वाले बताते हैं कि 'काम गायत्री' ही 'कृष्ण-गायत्री' है। तो कामदेव और श्रीकृष्ण अभिन्न देवता हैं? पुराणों में लिखा है कि काम देवता श्री कृष्ण के घर पुत्र-रूप में उत्पन्न हुए थे। वह कथा भी कुछ अपने ढंग की अनोखी ही है। कामदेव 'प्रद्युम्न' के रूप में पैदा हुए और शम्बर नामक मायावी असुर उन्हें हर ले गया और समुद्र में फेंक दिया। मछली उन्हें खा गई। संयोगवश वही मछली शम्बर की भोजनशाला में गई और बालक फिर उसके पेट से बाहर निकला। काम देवता की पत्नी रतिदेवी वहाँ पहले से ही मौजूद थी।.....नारद मुनि भी वहाँ पहुँच गए। रति को सारी बातें उन्हीं से मालूम हुईं। प्रद्युम्न पाले गए, शम्बर मारा गया, श्रीकृष्ण के घर में पुत्र ही नहीं, पुत्रवधू भी यथासमय पहुँच गई।"[24]

## हिमाचली वसन्तोत्सव : 'चैत्रोल खोन' एवं 'होरिंगफो'

यदि हम द्विवेदी जी के कथन का निष्कर्ष निकालें तो यही सिद्ध होता है कि स्त्रियाँ अपने संभोग के साधन 'काम (देवता)' के प्रतीक अपनी पति देव की पूजा वसन्तोत्सवों के माध्यम से करती हैं। हिमाचल प्रदेश के जन जातीय स्वांगों में आज भी वही प्राचीन लिंग-पूजा के तत्त्व विद्यमान हैं। इस विषय में श्री एन. डी. पुरोहित की विस्तृत टिप्पणियाँ उल्लिखित हैं :

'चैत्रोल' आदिम जन जातीय क्षेत्र किन्नौर का मुख्य त्योहार है। चैत्र में मनाए जाने के कारण इसे 'चैत्रोल' कहते है। इस त्योहार पर किन्नर क्षेत्र के अनेक गाँवों में विभिन्न स्वांगों के प्रदर्शन आयोजित किए जाते हैं। 'चैत्रोल खोन' के प्रदर्शन के लिए एक विशेष परिवार का व्यक्ति चुना जाता है, जिसके सिर पर राक्षस का प्रतीक काष्ठ मुखौटा 'खोर' लगा कर देवता के वस्त्र पहना दिए जाते हैं। 'खोर' मुखौटाधारी स्वांगिए को 'खोन' अर्थात् राक्षस का प्रतिनिधि माना जाता है। 'खोन' की गर्दन के पास, पतली रस्सी की मदद से लकड़ी का बना, एक रंग-बिरंगा लिंग लटका कर पेट के नीचे एक छुन-छुनी बाँध दी जाती है। इस प्रकार चैत्रोल स्वांग 'खोन' तैयार हो जाता है। गाँव के युवक लिंगाकार लम्बी लकड़ियाँ (चैत्रोल शिंड) को हाथों में ले कर खोने की गर्दन में बँधे लिंग को छेड़ते हैं और पेट के नीचे बँधी हुई छुन-छुनी को बजाते हुए अश्लील शब्दों का ज़ोर-ज़ोर से उच्चारण करते हैं। इस रात गाँव के सभी व्यक्तियों को अश्लील प्रदर्शनों एवं संभाषणों की छूट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती है। चैत्रोल शिंडधारी युवक गाँव की युवतियों के साथ भी अश्लील मज़ाक एवं छेड़ छाड़ करते हैं, जिसको वे बुरा नहीं मानतीं।[25]"

चैत्रोल परंपरा का दूसरा स्वांग 'होरिंगफो' भी इन्हीं दिनों होता है। इसमें भाग लेने वाले एक व्यक्ति की पीठ से लगकर पीछे वाला व्यक्ति घोड़ी की मुद्रा में झुक जाता है। घोड़ी बना यह व्यक्ति दोहडू से ढाँप दिया जाता है। खड़ा हुआ व्यक्ति अपने चेहरे पर दो बनावटी सींग बाँधकर उन्हें मुखौटों से ढाँक लेता है। बीभत्स पशुओं के मुखौटे में से ये सींग बाहर उभरी हुए भयंकरता को और बढ़ा देते हैं। कपड़े से ढकी दो लाठियाँ उसके हाथ में होती हैं और पीछे घोड़ी बना व्यक्ति। इस प्रकार वह व्यक्ति दैत्याकार प्रतीत होने लगता है; जिसे 'होरिंगफो' कहा जाता है। एक अन्य पुरुष को स्त्री के कपड़े पहना दिए जाते हैं और उसके मुख पर भयंकर मुखौटे लगा कर उसे होरिंगफो की पत्नी बना दिया जाता है। 'होरिंगफो' तथा उसकी पत्नी के स्वांग के बार में पुरोहित जी का विवरण प्रस्तुत है :

"देवालय के पास खुले मैदान के बीच में लकड़ियों का एक ढेर (घेना) 'खण्डा' सुलगा कर, नाट्य-प्रदर्शन के लिए अपेक्षित स्थान खाली छोड़ कर गाँव के लोग बैठ जाते हैं। 'होरिंगफो स्वांग' का प्रारंभ ढोल बजा कर किया जाता है। ढोल और थाली वादन के साथ होरिंगफो का स्वांग आगे-पीछे नृत्य करता है। इस नृत्य के तुरंत बाद होरिंगफो की पत्नी का स्वांग धरती पर कमर के बल लेट जाता है और धीमी गति से नाचता हुआ "होरिंगफो" स्त्री स्वांग पर लेटते हुए काम-केलि क्रियाओं का अभिनय करता है।[26]"

ये सभी स्वांग प्राचीन काल से रात्रि के समय नरभक्षी राक्षसों पर देवताओं की विजय के रूप में अभिनीत होते आ रहे हैं। अश्लील प्रदर्शनों में इन्हीं अमांगलिक प्रभावों के निवारण एवं देव अनुकंपा प्राप्त करने की लालसा ही जन मानस में रहती है। यही कारण है कि हास्य-विनोद एवं अश्लील प्रदर्शनों के बाद ये स्वांगी देव मंदिरों में जाकर पूजा-अर्चना करते हैं।

## बसन्त पंचमी

कामदेव अपने पंच वाणों के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके इन 'पंचवाणों' का निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पुष्पों से हुआ है, जो कि अपनी शोभा से प्रत्येक स्त्री-पुरुष को मुग्ध कर लेते हैं। इन सुमनों के नाम हैं : आम की कोंपले, अरविंद (कमल), अशोक, चमेली तथा नीला कमल। कुछ मनोविज्ञान शास्त्री 'काम' नामक मनोविकार के पाँच प्रभावों को भी 'कामदेव' के पाँच तीर मानते हैं। इनके शास्त्रीय नाम एवं अर्थ इस प्रकार हैं :

(क) द्रवण = मन का पिघलना।
(ख) शोषण = शरीर का सूखना।
(ग) तापन = शरीर में कामावेग के कारण गर्मी पैदा होना।
(घ) मोहन = नायक अथवा नायिका का मोहित हो जाना।
(ङ) उन्मादन = काम-तृप्ति के अभाव में पागलों जैसी दशा होना।

माघ मास की प्रतिपदा से ही एक पुष्प-वाण का संबंध एक तिथि से जोड़कर संभवत: 'काम सूत्र' के रचयिता वात्स्यायन के समय से ही पंच पुष्प-वाणों की गिनती पूरी करके 'बसंत ऋतु' के आरंभ की निश्चित तिथि 'माघ शुक्ला पंचमी' को मान लिया गया। कालांतर में 'काम' नामक मनोविकारों के पाँच प्रभावों को पूरी तरह लक्षित होते देख कर मनोविज्ञान-सम्मत 'बसंत पंचमी' नाम की महिमा को स्वीकार कर लिया गया। 'काल-विज्ञान' के आधार पर एक अन्य विद्वान् की परिकल्पना भी अत्यंत युक्तिसंगत प्रतीत होती है, यथा :

"चैत्र और वैशाख के महीने बसंत के मास हैं। प्रश्न उठ सकता है कि जब चैत्र और वैशाख हैं तो बसंत के महीने; फिर 'बसंत पंचमी' का पर्व चालीस दिन पहले ही, माघ शुदि पंचमी को क्यों मनाया जाता है ? इस प्रश्न का एक उत्तर तो यह दिया जा सकता है कि सभी ऋतुओं ने 'बसंत' को अपना राजा मानकर अपने-अपने समय में से आठ-आठ दिन भेंट कर दिए। इस प्रकार पाँच ऋतुओं से 'बसंत' को चालीस दिन मिल जाते हैं। उस का प्रवेश 'माघ शुदि पंचमी' को मान लिया जाता है। किन्तु इस प्रश्न का एक अन्य तर्क-सम्मत उत्तर भी है। देखा जाए तो ऋतु के आगमन के लक्षण पहले से प्रकट होने लगते हैं; एक कहावत है – "एक मास रुत आगे धावे, आधा जेठ आषाढ़ कहावे।[27]"

पंजाब में 'बसंत पंचमी' का लोकपर्व राजमहलों के प्राचीन ढर्रे के शृंगारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातावरण को तिलांजलि देकर बसंत ऋतु की शोभा का प्रतीक एवं वीरता-पर्व बन कर उभरा है। भारत के ज्ञान-मार्गी साधु-संतों ने "सदा दीवाली साध की आठों पहर बसंत" की सूक्ति के माध्यम से सांसारिक प्राणियों को इस बात की प्रेरणा दी है कि वे विषय वासनाओं से उपराम हुए मन को प्रभु-चिन्तन में लीन करें। मानव-हितैषी श्री गुरु नानक देव जी का यह संदेश "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" के 'बारामांह तुखारी' में संकलित इस मनोहर वाणी में समाविष्ट है :

चेतु बसंत भला भवर सुहावड़े।
बन फूले मंझ बारि मै पिरु घरि बाहुड़े।
पिरु घर नहीं आवै धन किउँ सुख पावै, बिरहि बिरोध तन छीजै।
कोकिल अंबि सुहावी बोलै, किउँ दुखु अंकि सहीजै।
भवरु भवंता फली डाली, किउँ जीव गुरू माए।
नानक चेति सहिज सुख पावै जे रति वरु घरि धनु पावै।[28]

भोले भाले लोगों को प्रकृति की सुषुमा ने मुग्ध किया होगा। वे सुगंधित फूलों की सुंदरता देख कर और सुगंधि का सेवन करके रस मग्न होते रहे होंगे। किन्तु जब बसंत की उपज ने सामान्य जन के मन पर ही नहीं, प्रत्युत् तन पर भी चामात्कारिक प्रभाव प्रकट किया होगा, तब लोगों ने इस ऋतु के फूलों को लाभकारी समझ कर विशेष रीति-रिवाजों का अंग बना लिया होगा। डॉ. ब्रजमोहन जी के शब्दों में:

"माघ लगते ही सरसों का फूल खिलने लगता है। खेत के चारों ओर पीले-पीले फूल और नीचे हरी-हरी घास बड़ी प्यारी मालूम होती है। किसान का दिल उमंग से भरा रहता है कि उसके परिश्रम का पहला फल दृष्टिगोचर होने लगा है। वह सरसों के फूल तोड़ कर घर लाता है। बच्चे हर्ष से प्रफुल्लित होकर वे फूल कान पर रखते हैं, उन्हें मसल कर शरीर से मसल डालते हैं और अपने खेल-कूद में लग जाते हैं। 'बसंत पंचमी' का त्योहार इस प्रकार मनाया जाता है।....सरसों का तेल शरीर की मालिश के लिए बहुत लाभदायक है....वह सरदी को दूर भगाता है। यदि शरीर पर सरसों का तेल मला हुआ हो तो मच्छर के काटे का कोई प्रभाव नहीं होता। अत: यह जूड़ी बुखार की रोक थाम करता है।[29]"

प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में विकसित सरसों के पीले फूलों की सुंदरता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से साम्य बैठाने के लिए आज भी 'बसंत पंचमी' के दिन पुरुष पीली पगड़ी और स्त्रियाँ पीली चुनरी अथवा साड़ी धारण कर लेते हैं। प्रकृति से एकात्मीयता प्रकट करने वाले 'बसंती' रंग के परिधान एवं भोजन की परंपरा का उल्लेख एक कवि ने बड़े चाव के साथ किया है :

फग्गन फुल्ल बसंती दिओरा, पग्ग बसंती बन्नही वे।
गले बसंती झग्गा पाएँ, नाल बसंती चुन्नीं वे।
देवर नूँ है देंदी भाबी, खाह बसंती पिन्नी वे।
गोपाल सिंघ फुल्ल दे बसंती, मुराद भाबो दी पुन्नी वे।।

दिन प्रतिदिन पंजाब और हरियाणा के घरों में घटते जा रहे घी-दूध के कारण अब 'पिन्नीआँ' बनाने और बाँटने का रिवाज धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। फिर भी हल्दी, केसर और नमक मिला कर तैयार किए गए चावल "बसंत पंचमी" का मुख्य भोज्य पदार्थ होता है। 'ताहरी'[30] के नाम से प्रसिद्ध यह नमकीन पदार्थ भाई-बन्धुओं को बाँटा भी जाता है।

लोग सर्दी भर तिल, मूँगफली, मेवों और गुड़-मिश्रित पदार्थों का सेवन करते हैं, जिनकी तासीर गर्म होती है। शरीर में गर्मी अधिक होने के कारण मौसम की तबदीली अपना रंग दिखाती है। कई बार बुख़ार के साथ ही लोगों के, विशेषत: बालक-बालिकाओं के, शरीर पर चेचक के दाने नज़र आने लगते हैं। पुराने विचारों की स्त्रियाँ इसे 'बंसती माता' का नाम दिया करती हैं। चेचक का प्रकोप हट जाने पर आगामी पहले शुक्ल पक्षीय मंगलवार को शीतला देवी के थानों (मंदिरों) में 'बसंती माता' की पूजा की जाती है। कई नगरों और गाँवों में 'बसंती माता' के नाम से अलग मंदिर भी बने हुए हैं। इस अवसर पर चढ़ावे के लिए एक दिन पहले गुलगुले और पूरियाँ तैयार कर ली जाती है। सरसों के तेल से बने इस बासी पकवान को 'बासड़ा' कहा जाता है।[31] यही शब्द हरियाणवी में 'बासोहड़ी' या 'बास्योढ़ा' कहलाता है। पंजाब की मलवई बोली में इसे 'बहेड़ा' कहते हैं।

'बसंत पंचमी' के दिन पूरे उत्तर भारत में पतंगबाज़ी की प्रतियोगिताएँ उषा काल से सूर्यास्त तक चलती हैं और 'बो काटा' की ध्वनियों से धरती और आकाश गूँजते रहते हैं। कटे हुए पतंग लूटने के लिए 'बो काटा' का आह्वान मैदानों और घरों की छतों पर भारी भीड़ इकट्ठी कर देता है। हरियाणा में बसंत पंचमी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन होलिका-दहन हेतु 'होली का डण्डा' गाड़ कर पूजा-स्थल निर्धारित कर दिया जाता है। धर्म-परिवर्तन के विरोध में जान की बाजी लगाने वाले बालक वीर हक़ीकत राय की शहीदी की स्मृति में कई जगह "बसंत पंचमी" को मेले भी लगते हैं।[32]

## फागुली

यह त्योहार किन्नौर ज़िले के कामरु, रोपा एवं साँगला आदि गाँवों में 'बसंत पंचमी' के दिन ही मनाया जाता है। इसके मनोरंजक स्वांगों में "चैत्रोल" तथा "होरिंगफो" की भांति लैंगिक चिह्नों के प्रतीकों का प्रदर्शन नहीं होता, प्रत्युत् रामायण के कुछ प्रसंग जुड़ जाने के कारण इसमें धार्मिकता का अंश अधिक उभरता है। कुल्लू और लाहुल स्पीति के कुछ भागों में ऐसे धार्मिक स्वांग 'बसंत पंचमी' के दिन ही अभिनीत होते हैं।

किन्नौर ज़िले में 'फागुली' उत्सव हेतु काग़ज़ पर रावण का चित्र बना लिया जाता है। लोग हाथों में तीर-कमान लेकर उस पर निशाना बाँधते हैं। जिस का निशाना लग जाता है, उस की प्रशंसा होती है। तीर निशाने पर बैठ जाने को 'लंका मारना' अथवा 'लंका दहन' कहा जाता है और स्वर्ग में देवताओं की दैत्यों पर विजय का प्रतीक समझा जाता है।

कुछ पहाड़ी क्षेत्रों में मनुष्यों को भयभीत करने वाले राक्षसों के स्वांग भी होते हैं। राक्षस का अभिनय करने वाले पुरुष रावल नामक जंगली घास और पहाड़ी वृक्षों के पत्तों से अपनी देह ढाँप कर चेहरे पर काष्ठ के पुराने मुखौटे पहन लेते हैं। इन राक्षसों के हाथों में विभिन्न प्रकार के वस्त्राभूषण होते हैं। कई बार कमर में लटकी पोटली से भी ये ऐसी वस्तुएँ निकालते हैं, मानो इन्होंने लोगों को मार कर स्त्री-पुरुषों के ज़ेवर और कपड़े उतार लाए हों।

लूट-मार के इस कल्पनामयी प्रसंग को साक्षात् रूप में भी अभिनीत किया जाता है। पहाड़ी वाद्य-यंत्रों की भयावनी धुनों के अनुरूप बीभत्स भाव-भंगिमाएँ दिखाते हुए ये स्वांगिए दर्शकों की भीड़ में इधर-उधर घूमते हैं, मानो इन्हें किसी सुंदर मानव प्राणी की तलाश हो। फिर अचानक ही खुशी के मारे चीखते हुए ये किसी एक स्त्री या पुरुष का हाथ पकड़ कर उसे रंगमंच की ओर ले जाते हैं और ज़ोर-ज़बर्दस्ती से उसे गहने-कपड़े पहनाने का अभिनय करने लगते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई बार किसी किशोर को गहने-कपड़ों से सुसज्जित करके अपनी पत्नी बनाने का अभिनय करते हैं। किसी बालक को पुत्र बनाकर उससे बच्चों की तरह लाड-प्यार भी दिखाया जाता है। दर्शकों में से खींच कर लाए गए ये पात्र अपने संभाषणों अथवा मूकाभिनय द्वारा स्वांगी राक्षस के भावाभिनय का प्रत्युत्तर देते हैं। श्री एन. डी. पुरोहित इन विचित्र-से अभिनयों के आधार पर लिखते हैं:

"फागुली त्योहारों का उद्देश्य उन प्राचीन परंपराओं की याद ताज़ा करता मालूम पड़ता है, जब राक्षस और भूत-प्रेत मनुष्यों को बहुत तंग किया करते थे और मनुष्य उनके आगे विवश थे।[33]"

हिमाचल प्रदेश की पत्तन घाटी में बर्फ़ के शिवलिंग के अतिरिक्त देवी हिडिम्बा और नागों की पूजा द्वारा यह उत्सव मनाया जाता है। इस अवसर पर गाँव के मुखिया तथा अन्य वयोवृद्धों को फूल भेंट करके उनका आशीर्वाद प्राप्त किया जाता है। इसके बाद छाँग, लुगड़ी और मांड का सेवन किया जाता है।

## सोंत

यह काश्मीर का बसंतोत्सव है, जो कि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को आयोजित होता है।[34] 'नवरेह' और 'सोंत' दोनों लोकपर्व एक ही दिन मनाए जाते हैं तथा 'बुथवुछन' की परंपरा भी दोनों में एक समान है। घर के लोगों को जगाकर किसी टोकरी या तश्तरी में धरी सामग्री का दर्शन करवाना ही काश्मीरी भाषा में 'बुथवुछन' कहलाता है। 'बुथवुछन' वाली सामग्री देख कर परिवार का प्रत्येक व्यक्ति एक या दो अखरोट उठा लेता है और स्नान के बाद किसी नदी या चश्मे में फेंक देता है। धान किसी मछली पकड़ने वाले को भेंट कर दिए जाते हैं। वह उनके बदले में जो मछलियां देता है, उनके स्वादिष्ट व्यंजनों का उपयोग 'सोंत' पर्व की संध्या को होता है। श्री रब्बानी इसे काश्मीरी पंडितों द्वारा सौर वर्ष के चैत्र मास की प्रथमा को मनाए जाने का उल्लेख करते हैं। उस दिन प्राय: ईस्वी सन् के मार्च की पन्द्रह तारीख़ होती है।[35]

'सोंत' के मेलों का आयोजन 'बादाम वाड़ियों' (बादाम के बाग़ीचों) से घिरे किसी खुले स्थान पर होता है। इसमें हिन्दू और मुसलमान बिना किसी भेदभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सम्मिलित होते हैं और अपने 'समोवर' से निकाल कर गर्म-गर्म चाय पीते-पिलाते हैं। सर्दियों में बर्फ़ से ढकी काश्मीर वादी में फूलों तथा मेवों की नई बहार देख कर काश्मीरियों का हर्षोत्फुल्ल होना स्वाभाविक ही है। ठिठुरती सर्दी के पश्चात् बसन्त ऋतु अवश्य आती है, पहाड़ों में कठोर परिश्रम करने वाले काश्मीरियों की आशावादी दृष्टि इस लोकोक्ति में निबद्ध है, जो कि 'सोंत' के आयोजनों में साक्षात् रूप में चित्रित होती है :

"वन्दे चली शिन गल्ली ब्यीयी बहार।"

कुछ लोग इस अवसर पर 'हरि पर्वत' एवं 'शंकराचार्य पहाड़ी' की ढलानों पर बैठ कर धूप सेंकते हैं और बादाम की कोंपलों को देख कर हर्ष विभोर हो उठते हैं तथा काश्मीरी लोकगीतों द्वारा "बहार के मौसम' का स्वागत करते हैं।

## उख्याङः

हिमाचल प्रदेश के किन्नौर ज़िले का "उख्याङः" नामक लोकपर्व अगस्त में आरंभ हो जाता है। उन दिनों भादों मास होता है। भिन्न-भिन्न गाँवों में इसके मनाने की तिथियाँ अलग-अलग होने के कारण यह मार्गशीर्ष (अंग्रेज़ी महीना 'नवम्बर') तक भी चलता है। "रुपी" गाँव में यह अगस्त में मनाया जाता है। कुछ गाँवों में यह सितम्बर में और सब से बाद यह लोकपर्व "जनी" गाँव में अक्तूबर के अंत अथवा नवम्बर के आरंभ में संपन्न होता है।

वस्तुतः यह जंगली फूलों पर आई बहार का लोकोत्सव है और मैदानी प्रदेशों के बसंतोत्सव से साम्य रखता है। किन्नौरी बोली के 'उख्याङः' शब्द का संधि-विच्छेद करने से भी यही अर्थ प्रकट होता है। 'उ' का अर्थ है 'फूल' तथा 'ख्यांङः' शब्द का अर्थ है 'झाँकना'। पुष्प-संग्रह के इस पर्व का 'उख्याङः' नाम एक दम सार्थक है। इसे 'फुलैच' भी कहा जाता है और किन्नौरी की कुछ उपबोलियों में 'नमांग' तथा 'मिंथको' भी।[37]

लोक परंपरा के अनुसार ग्रामीण परिवार का कम से कम एक व्यक्ति पर्वत की चोटी पर फूल एकत्र करने जाता है। उत्सव मनाने के लिए वैसे तो कोई भी फूल बीना जा सकता है, फिर भी रोंगल, लोसकर्च, खसबल तथा ग्यालची नामक पुष्पों का विशेष महत्त्व माना जाता है। पुष्प-संग्रह करने वाले ये ग्रामीण लोग फूलों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के गुलदस्ते या मालाएँ बना कर उन्हें गुफ़ाओं में जमा करते रहते हैं। किन्नौरी बोली में ऐसी गुफ़ा को 'उदबरो' कहा जाता है।

कमरु गाँव में 'उख्याङ' पर्व की बड़ी विचित्र परंपरा है। महासू देवता की ओर से भविष्यवाणी सुनाने वाला गुफ़ाओं के समीप इन पुष्प-संग्रहकर्ताओं की प्रतीक्षा करता है। सभी के आ जाने पर वह पहाड़ी भूत-प्रेतों तथा काली देवी को प्रसन्न करने के लिए एक बकरे की बलि देता है। तदनंतर यह जन समूह 'उख्याङ' के गीत गाता हुआ गाँव की ओर प्रस्थान करता है। अगली सुबह सभी ग्रामवासी एक निश्चित स्थान पर एकत्र होते हैं। श्रद्धालु जन अपने ग्राम देवता को एक जुलूस में मेला-स्थल पर लेकर पहँचते है। वहाँ पर काली देवी और कैलाश पर्वत को फिर बकरे की बलि भेंट की जाती है। तब 'ग्रोक्च' (देवता का 'गूर') पुष्प-संग्राहकों में से कोई दो व्यक्ति चुनता है और उन्हें गुफ़ाओं में एकत्र किए फूल लाने का आदेश देता है। वे लोग गुलदस्तों और फूल मालाओं का ढेर ला कर 'देवता के गूर' के सामने रख देते हैं और वह अपने आस-पास एकत्र हुए कुछ लोगों को फूल बाँट देता है। कुछ वर्षो पहले इस प्रकार फूलों का वितरण सब से पहले बुशैहर के राजा को किया जाता था।

सुमन-वितरण के उपरांत 'ग्रोक्च' आगामी फ़सलों और ऋतु-परिवर्तन के विषय में भविष्यवाणी करता है। अन्य लोग भी गुफ़ाओं से लाए हुए फूलों के ढेर से कुछ फूल लेकर अपने-अपने घर विदा होते हैं। ग्राम देवता की मूर्ति भी मंदिर में ले जाई जाती है। शाम को फिर सभी ग्रामवासी 'संथांग' (दिव-मंदिर का प्रांगण =सत्संग स्थल) में एकत्र होते हैं और देव मूर्ति को मंदिर से बाहर लाया जाता है। जिन लोगों ने पुष्प-संग्रह 'फुलैच' के दिन किया था, वे सभी 'फुलैच' के गीत गाते हुए मूर्ति को नमन करते हैं।

देवमूर्ति को उठाने वाले ज्यों-ज्यों उसके प्रभा-मंडल को लेकर घूमते हैं, त्यों-त्यों किन्नौरी नृत्य और गान ज़ोर पकड़ते हैं। तीसरे दिन 'संथांग' में 'उख्याङ' पर्व का समापन होता है, उस समय फिर कुछ समय तक नृत्य-गान मंडलियाँ अपनी-अपनी कला के प्रदर्शन करती हैं।

किन्नौर ज़िले के कुछ गाँव ऐसे भी हैं जहाँ श्रद्धालुजन अपने ग्राम-देवता को विविध वस्त्राभूषणों से सजा कर और उसकी पालकी उठा कर ऊँचे पहाड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिखर पर ले जाते हैं। वे वहाँ कुछ समय रहते हैं और नृत्य-गीत के साथ रात व्यतीत करते हैं। प्रात: होते ही वे आस-पास के जंगलों से फूल चुन कर देव-प्रतिमा को अर्पण करते हैं और फिर कुछ खान-पान के उपरांत ग्राम-देवता को लौटा कर उसके मंदिर में प्रतिष्ठापित कर देते हैं। उत्सव के समय गाए जाने वाले निम्नलिखित लोकगीत में इस आयोजन का विवरण इस प्रकार अंकित किया गया है :

जुगली उख्याङ्, रुपि ते रासू, रुपि ते रासू, साई भादर।
बाराड़ उख्याङ् नीजा भदरंग, बंगश्या पवंग, यू ता भादू।
हाला सालां ते, हे हाला सालां ते,
रचु कानंग मुण्डयाल हालु रांते।
रानी मरांते मारकालिंग शूपांग,
शिश्यूस मुण्डयाल हातु राते।

सावन-भादों की घनघोर वर्षा और भूस्खलन की चिन्ता किए बिना वीहड़ वनों तथा बरसाती पानी से लबालब भरे नदी नालों को पार करने का जोख़िम उठाकर भी 'उख्याङ' के मेले में हज़ारों स्त्री-पुरुष हिमाचल प्रदेश के दूर-दूर गाँवों से बड़ी उमंग के साथ पहुँचते हैं।

सन् 1987 से 'जन जातीय उत्सव' के नाम से हिमाचल प्रदेश सरकार ने रीकोंगपो में इस लोकपर्व की विभिन्न परंपराओं के समन्वय का प्रयास किया है। सन् 1989 में इसे 'फुलैच उत्सव' नाम देकर रीकोंगपो में हर वर्ष 7 से 9 अक्तूबर तक मनाया जाता है। उस समय विभिन्न ग्राम-देव मूर्तियाँ समारोह-स्थल पर लाई जाती हैं और उन्हें दूर-दूर से लाए गए पुष्प भेंट किए जाते हैं, जो कि "ब्रह्म कमल" के प्रतीक माने जाते हैं। किन्नौर ज़िले से आने वाले दर्शक विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों, प्रदर्शनियों एवं खेल-प्रतियोगिताओं को देख कर आनंद विभोर हो उठते हैं।

## पाद-टिप्पणियाँ

1. डॉ० जवाहर लाल हंडू : कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत – एक तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 177।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2-3. Som Nath Dhar : Jammu & Kashmir — The Land & The People, Page 22.

4. G.M. Rabbani : Ancient Kashmir — A Historical Perspective, Page 53.

5. डॉ० जवाहर लाल हंडू : कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत — एक तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 178।

6. G.M. Rabbani : Ancient Kashmir — A Historical Perspective, Page 54.

7. Som Nath Dhar : Jammu & Kashmir — The Land & the People, Page 22.

8. सावन के महीने में सखियों के साथ 'तीआँ' (तीज) के त्योहार को हर्षोल्लास से मनाने के लिए झूले पर झूलती हुई आकाश तक उछल जाती थी।

9. सावन के आरंभ होते ही 'सावें' (तीज) लोकपर्व मनाया जाता है। सभी सहेलियाँ अपने बालों को अनेक तरह से बल दे कर सजाती हैं। वे सभी टोलियाँ बना कर घर-घर जा कर मंगल गीत गाती हैं।

10. (क) डॉ० नवरतन कपूर : पंजाब दे लोक तिउहार — इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 73।

(ख) Major C. H. Buck : Faiths, Fairs & Festivals of India, Page 92.

11. सारा संसार मेहन्दी की चर्चा करता है। मैं भी कहती हूँ कि मेहन्दी के पत्ते बाग़ों में आसानी से और सस्ते दाम पर मिल जाते है। किन्तु दुकानदार तो इन सूखे पत्तों को पिसवा कर महंगे दामों में बेचते हैं। यदि इसे खूब रगड़-पीस कर हाथों पर लगाया जाए तो सूखने पर छिलकों की तरह उतरती है। किन्तु इस का रंग शुभ सूचक माना जाता है, जो कि कई बार धोने पर भी कभी फीका नहीं पड़ता।

12. 'संधारा' शब्द की निरुक्ति इस प्रकार हो सकती है : (1) 'संधा (= समझौता; वचन) + धारा' (= वेग) अर्थात् 'वचन' अथवा समझौते की निरंतरता; (2) 'सम+धारा' अर्थात् पुराने रीति-रिवाजों को पूर्ववत् निभाना; (3) 'स्नेह+धारा' अर्थात् (बेटियों-पुत्रवधुओं) के प्रति प्रेम भाव का आवेग स्थिर रखना। ये सभी भाव 'संधारा' शब्द के निर्माण में समाविष्ट हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से यह शब्द पार्श्ववर्ती व्यंजन स्थानांतरण (Contact Consonant metathesis) नियम पर आधारित है।

- Bhakha Sanjam, Vol. IX, Year 1986. Page 40. [Dr. Nav Rattan Kapur : Semiological Study of 'TEEJ' Rituals of the Punjab]

13. (क) ऊँचे आसन पर विराजमान, हे धनाढ्य माता! बेटियों का ससुराल दूर जगहों पर क्यों ढूँढा ? सावन का महीना आ गया है। पंजीरी के बने पाँच सेर लड्डू (पिन्नीआँ) किसी गुथली में डाल कर (मुझे लिवाने के लिए) मेरे भैया को भेज दो। (भाई के आगमन पर उसका स्वागत करते हुए) लाल रंग की पगड़ी बाँधे हुए हे मेरे भाई ! आंगन में एक खंभा अपने घर में गड़वाना ताकि तुम्हारी बहनें मायके में पहुँच कर उसमें झूला डालकर झूल सकें।

(ख) ग़रीब लोगों को भले ही उधार लेना पड़े, फिर भी वे पुत्रवधू को कोई न कोई आभूषण अवश्य भेजते हैं। – गिआनी गुरदित्त सिंघ : तीज ते तिउहार, पृष्ठ 42।

14. डॉ० नवरतन कपूर : पंजाब दे लोक तिउहार – इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 92-94

15. H. A. Rose : A Glossary of the Castes & Tribes of the Punjab & North West Frontier Province, Vol. I, Page 793.

16. (क) देविन्दर सतिआरथी : गिद्धा, पृष्ठ 143 &144।

(ख) दिल बहलाने वाला सावन का महीना आ गया है। मूसलाधार वर्षा होने लगी है। झूला झूलती मरियम भीग गई है और उसके साथ ही राम प्यारी भी। हरी नामक लड़की का कुर्ता और किशनो की सिर पर ओढ़ने वाली फुलकारी भी भीग गई है। गोटे से जड़ी हुई हरनामी की सलवार और चालीस बलों से सजाए हुए जन्नत नामक लड़की के बाल भी भीग गए हैं। लड़कियों ने भाग कर गाँव में शरण लेनी चाही, किन्तु रास्ते भर वर्षा की अत्यधिक तेज़ धार ने उनका पीछा जल्दी नहीं छोड़ा। झूला झूलती हुई सस्सी नामक लड़की के साथ ही नाभा उप-मंडल (ज़िला पटियाला) से आई हुई नूरी भी गिर पड़ी। शामो नामक लड़की (= कुड़ी) की खोई हुई झांझर राम रक्खी ने ढूँढी। अभिमानी लाजो भी बरसात के पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मार से नहीं बच पाई। अरे, सावन के बादल! तुम ने तो स्यालकोट (अब पाकिस्तान) से आई हुए हरि नामक लड़की को भी भिगो डाला है।

17. डॉ० नवरतन कपूर : पंजाब दे लोक तिउहार–इक्क समाजं विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 102-103।

18. मेरी बहन सोनीपत में ब्याही गई थी।

19. सावन की 'सिंधारा तीज' का भेंट रूपी सामान।

20. धड़ाधड़ वर्षा होने लगी है। हे माता! मेरी गुथली मिठाई से भर दो, मुझे बहन के सुसराल जाना है। चाहे कितनी भी वर्षा हो, मैं अपनी गुथली सिर पर उठा कर छलांगें मारता सपाटे से चलता रहूँगा। (बहन के ससुराल पहुँचने पर उसकी सास से विनय) हे मेरी मौसी! बड़ी बहन (बिबे) को मेरे साथ भेज दो, क्योंकि 'तीज' का त्योहार आ गया है और (सास का आदेश प्राप्त होने पर) माँ की लाडली बेटी मायके पहुँच गई।

21. "ससुराल में बेटी इस प्रकार रहती है, जैसे कड़ाही में तेल" – कुछ लोग इसका अर्थ बेटी के सदा दु:खी रहने की ओर भी लगाते हैं। किन्तु हमारा विचार उनसे भिन्न है। जैसे तेल के बिना कड़ाही में वर्षा ऋतु के पकवान नहीं बन सकते, उसी तरह ससुराल परिवार में बहू के बिना कोई शुभ कार्य नहीं हो सकता। इस दृष्टि से पुत्रवधू के महत्त्व को ही इस लोकगीत में दर्शाया गया है।

22. डॉ० साधुराम शारदा (संपा.) : हरियाणा – एक सांस्कृतिक अध्ययन, (राजा राम शास्त्री : मेले और त्योहार), पृष्ठ 138।

23. पुष्पा जैन एवं सत्यपाल गुप्त (संकलन) : हरियाणा (सांस्कृतिक दिग्दर्शन; (डॉ० भीम सिंह : हरियाणा के लोकगीत–एक विशष्ट अध्ययन), पृष्ठ 242।

24. डॉ० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : कल्प लता, पृष्ठ 13-15।

25. एन. डी. पुरोहित : हिमाचली लोकरंग, पृष्ठ 77-78।

26. उपर्युक्त, पृष्ठ 78-79।

27. डॉ० एस. पी. उपाध्याय : भारतीय पर्व और त्योहार, पृष्ठ 42।

28. चैत्र का सुहावना महीना है। बाग़ीचों और वनों में फूल खिल गए हैं और उन पर भंवरे मंडराने लगे हैं। आम पर बैठी कोयल मीठे स्वर में 'कू-कू' कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है। ऐसे मौसम में सच्ची आत्मा रूपी पत्नी का परमात्मा रूपी पति से मिलाप के लिए आतुर होना स्वाभाविक है। वह सामान्य जीव आत्माओं से विलक्षण बन कर परमात्मा में लीन होकर मुक्ति के लिए लालायित है।

29. डॉ० ब्रजमोहन : हमारे त्योहार, पृष्ठ 56।

30. एक प्रकार का पुलाव। चावलों को स्वादिष्ट बनाने के लिए आलू और बड़ियाँ भी मिला ली जाती हैं और उसे दही, अचार या चटनी के साथ खाया जाता है। कुछ लोग 'ताहरी' के अतिरिक्त मीठे चावल भी बनाते हैं।

31. डॉ० नवरतन कपूर : पंजाब दे लोक तिउहार – इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 261।

32. हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 12 (डॉ० नवरत्न कपूर : हकीकत राय), पृष्ठ 385।

33. एन. डी. पुरोहित : हिमाचली लोकरंग, पृष्ठ 93।

34. डॉ० जवहार लाल हंडू : कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत – एक तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 177।

35. G. M. Rabbani : Ancient Kashmir – A Historical Perspective, Page 51

36. नरेन्द्र धीर, हिमानी लोक साहित्य, पृष्ठ 37।

37. Indian Express, Oct. 13,1990, Rajendra Rajan : Fulaich – Festival of Flowers)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तर भारत के कृषि पर्व

भारत एक कृषि-प्रधान देश है। उत्तर भारत में मैदानी और पहाड़ी क्षेत्रों में फ़सलें बोने-काटने की तिथियाँ जलवायु पर आधारित होने के कारण अलग-अलग होती हैं। अत: भारत के उत्तरांचल में खेती-पर्वों की बहुलता दिखाई पड़ती है।

## वैशाखी

**प्रागैतिहासिक रूप :**

आर्य जाति वैदिक काल से ही अपने 'वर्ष'(Year) का विभाजन ऋतुओं एवं राशियों के आधार पर करने लगी थी। इस प्रकार भारतीय साल के बारह महीनों के नाम वैशाख, ज्येष्ठ, श्रावण, मार्गशीर्ष आदि धरे गए। जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है, तभी से वैशाख महीने का आरंभ माना जाता है। भगवान् विष्णु ने द्वापर युग में श्री कृष्ण के रूप में अवतार धारण किया था। उन्हें 'माधव' के नाम से भी स्मरण किया जाता है। श्री कृष्ण ने 'वैशाख' को अपना हम-नाम 'माध ाव' पुकार कर इसकी महिमा को चार चाँद लगा दिए थे। 'माधव' (वैशाख) मास को लक्ष्मी की भाँति मधुसूदन का प्रेमी बता कर वैशाख के महत्त्व की श्रीवृद्धि इस प्रकार की गई है :

"माधवो मासो वल्लभो मधुसूदनं"

महर्षि नारद ने राजा अंबरीष के समक्ष वैशाख का माहात्म्य इस प्रकार प्रकट किया था :

यथा हरेर्नाम भयेन भूप नश्यन्ति सर्वे दुरितस्य वृन्दा :
नूनं खौ मेष गते विभाते, स्नानेन तीर्थ च हरिस्तवेन।

भगवान् का नाम जपने से जैसे सभी पाप दूर हो जाते हैं, उसी तरह सूर्य के मेष राशि में पहुँचने पर तीर्थ-स्थल पर स्नान करने तथा हरि-नाम जपने का फल होता है। आगे चलकर नारद मुनि ने राजा अंबरीष को उपदेश देते हुए स्नान हेतु तीर्थ-स्थान का यह बंधन भी हटा दिया है और कहा है कि कलियुग में वैशाखी के अवसर पर स्नान एवं दान करने का फल अश्वमेध यज्ञ से भी कहीं अधिक होता है। "पद्म पुराण" में नारद जी का कथन इस प्रकार उपलब्ध है :


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वैशाख के महीने में जब सूर्य मेष राशि में पहुँच जाए तो किसी बड़ी नदी में, नदी रूप तीर्थ में, नद में, झरने में, देवकुंड में, स्वत: प्रकट हुए किसी चश्मे में, बावड़ी में अथवा कुएँ आदि पर जाकर नियमपूर्वक भगवान् विष्णु का स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिए।"

कार्तिक मास में जब सूर्य तुला राशि पर स्थित हो, उस समय जो स्नान तथा दानादि पुण्य कार्य किए जाते हैं, उसका पुण्य 'परार्धगुणा'[1] अधिक होता है। माघ के महीने में जब सूर्य मकर राशि में पहुँच जाए तो कार्तिक की तुलना में हज़ार गुना उत्तम फल होता है। वैशाख मास में मेष की संक्रांति होने पर यह पुण्य माघ से भी अधिक होता है।....कलियुग में वैशाख की महिमा गुप्त नहीं रहने पाएगी, क्योंकि उस समय वैशाख-स्नान का माहात्म्य अश्वमेध यज्ञ रचाने से भी कहीं बढ़कर है।"

## पौराणिक प्रसंगों का वैज्ञानिक विश्लेषण

यदि मेष की संक्रांति का अर्थ सौर वर्ष (Solar Year) के हिसाब से लिया जाए तो यह आधुनिक "वैशाखी" लोकपर्व ही बनता है ; जो कि प्रत्येक वर्ष उत्तर भारत में 13 या 14 अप्रैल को मनाया जाता है। चान्द्र वर्ष-गणना के आधार पर यह आठ-दस दिन पहले आ जाता है और केवल 'वैशाख-स्नान' का धार्मिक पर्व कहलाता है। पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में आज भी बहुत से श्रद्धालु स्त्री-पुरुष मिल जाते हैं जो कि सौर अथवा चांद्र-गणना (Lunar Calculations) के चक्कर में नहीं पड़ते। वे चांद्र वर्ष के वैशाख के पूरे महीने प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व स्नान-दान हेतु अपने ही नगर अथवा गाँव के किसी पवित्र सरोवर पर जाते हैं। इस प्रकार सौर वर्ष वाला 'वैशाखी' लोकपर्व इसमें स्वत: आ जाता है।

वैसे भी वैशाख के महीने में दान-स्नान संबंधी पौराणिक दृष्टिकोण को आधुनिक वैज्ञानिक कसौटी पर परखने से बड़े रोचक परिणाम सामने आते हैं। इस मास में सूर्यदेव "उत्तरायण दिशा" (Northward) में होते हैं। उत्तर की ओर आने से भारत के उत्तरांचल में गर्मी बढ़ने लगती है और सभी पदार्थों का रस सूखने लगता है। मनुष्य भी इस स्थिति से अवश्य प्रभावित होता है, उसके शरीर के रसों का भी उष्णातावश शोषण होने लगता है। स्नान करने से ही अग्नि और जल का संतुलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य के शरीर में हो पाता है। अत: पंच तत्त्व से बनी देह को पूर्ण स्वस्थ रखने के लिए ही लोग प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व स्नान करते हैं। ईश्वर के श्रद्धालु भक्तों ने स्वास्थ्य-रक्षा के इस प्रसंग को धार्मिक पुट देकर वैशाख के स्नान की महिमा को बढ़ा दिया है। किसी कारणवश प्रात: स्नान में असमर्थ, आलसी अथवा प्राचीन आस्थाओं को धत्ता बताने वाले लोगों के लिए "वैशाखी" का लोकपर्व निश्चित करके किसी महापुरुष ने अपने बुद्धि-कौशल का सचमुच प्रदर्शन किया है।

दूसरी बात यह है कि आयुर्वेद के कथनानुसार बसंत ऋतु में स्त्री और पुरुष की काम-वासना बढ़ जाती है। भोग-विलास में अधिक लिप्त रहने के कारण उनके शरीर के रस—'रज' (स्त्री) और 'वीर्य' (पुरुष) – घट जाते हैं। वैशाख में जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है तो गर्मी का प्रकोप बढ़ने लगता है। समूह रसों का शोषण करने वाले सूर्य को तप्त-प्रकृति के विरुद्ध जाकर यदि स्त्री-पुरुष इस मौसम में भी मैथुन कार्यों में अधिक रुचि लें तो उनका स्वास्थ्य बिगड़ सकता है। फलत: मनुष्य की कुदरती आदत (Natural habit) पर धार्मिक प्रतिबंध लगाकर उसे रोग ग्रस्त होने से बचाने का उपाय बड़े रहस्यमय ढंग से समझाया जाता है।

भारतीय धर्म शास्त्रों ने चार पदार्थों की प्राप्ति द्वारा मानव जीवन की पूर्णता मानी है। ये पदार्थ हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। माता-पिता के संभोग के परिणाम स्वरूप कुछ दिनों के बाद जो संतान इस संसार में आने वाली है, उसके पालन-पोषण के लिए धन (=अर्थ) की आवश्यकता होती है। पैसा ख़र्च करके ही सामग्री ख़रीदी जाती है और दान की जाती है। नक़द राशि के रूप में दान के लिए भी रुपया-पैसा पल्ले होना चाहिए। दानशील व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी माना जाता है। इस प्रकार धन-दौलत ही ऐसी धुरी है, जिस पर मानव जीवन की सांसारिक एवं आध्यात्मिक सफलता का रथ टिका रहता है। यही कारण है कि व्यापारी नव वर्ष के आरंभ में स्नान करके शरीर की शुद्धि के बाद नए बही-ख़ाते लगाते हैं।

## कृषि-पर्व

भारत की 80 प्रतिशत जनता आजीविकोपार्जन के लिए कृषि पर निर्भर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि द्वारा ही मनुष्य भिक्षावृत्ति से निवृत्त हो सकता है। कितना भी महान् वैभवशाली मनुष्य हो उसे भोजन हेतु अन्न-प्राप्ति के लिए किसान के आगे झुकना ही पड़ता है। कारण यह है कि भोजन ही जीवन है, भोजन ही शक्ति है तथा भोजन का आधार अन्न ही सभी वस्तुओं का पूरक है। भारतीय विचारधारा के अनुसार तो देव, असुर एवं मनुष्य सभी के जीवन का अधार एकमात्र अन्न है। इसीलिए हमारे शास्त्रों में कृषि करने और अन्न उपजाने का आदेश दिया गया है :

अन्नं तु धान्यं संभूतं, धान्यं कृष्या बिना न च।
तस्मात्सर्व परित्याज्य कृषि यत्नं च कारयेत।।

भारतीय लोक चेतना ने खेती की इसी महिमा को समझकर ही यह लोकोक्ति गढ़ी है :

उत्तम खेती, मद्धम वपार।
नखिद्ध चाकरी, भीख नदार।।

शास्त्रीय प्रमाणों की लोक मानस द्वारा पुष्टि हो जाने पर कृषि और कृषक की महिमा को अस्वीकार करने में कोई तुक नहीं रह जाती। इसीलिए गर्मी की तपती धूप, बरसात की मूसलधार बौछारों और कटकटाती सर्दी में भी जनता के कल्याण हेतु अपनी धुन में मस्त किसान बढ़िया से बढ़िया फ़सल उगाने में तल्लीन रहता है। अत: किसान एक सामान्य व्यक्ति नहीं है, उसकी महानता को इस कसौटी पर परखा जाना चाहिए :

"आर्य का सीधा अर्थ है किसान। इसकी गवाही वेदों में भी है। राजा पृथु की कथा, सीता जन्म....आदि से पुराण भरे पड़े हैं। कृष्ण और हलधर किसानों के ही नाम हैं। जो काम वैश्यों का बताया गया है, वही किसानों का है। वेदों में 'विश' आर्य प्रजा के लिए आया है और इसी से वैश्य बना है।[3]"

पंजाब तो सभ्यता के आरंभ से ही भारत के अनाज का भंडार भरता आ रहा है। पंजाब की एक लोकोक्ति है

सत्ती सीवीं गाजराँ, सौ सीवीं कमाद।
बाराँ सीआँ पा के, वेख कणक दा सुआद।।[4]

सूर्य के मेष राशि में प्रवेश करने पर ही वैशाख महीने का आरंभ होता है। इन्हीं दिनों पंजाब में गेहूँ की नई फ़सल की कटाई होती है। 'गेहूँ' को पंजाबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा में 'कणक' कहते हैं। संस्कृत के 'कनक' शब्द का अर्थ 'सोना' है। एक ही शब्द की इस अनेकार्थकता को ध्यान में रखकर पंजाबी के सुप्रसिद्ध लेखक प्रोफ़ेसर संत सिंह सेखों लिखते हैं :

"इसमें कोई मीन-मेख करने वाली बात नहीं है कि जब पंजाबी किसान 'कणक' (गेहूँ) की कटाई करते हैं तो वे सोने की ही कटाई करते हैं और जब वह खाता है तो सचमुच सोना ही 'छकता' (सेवन) है।...भले ही वह अपनी फ़सल (को बेचकर) थोड़ा-बहुत सोना कमा सके, किन्तु पंजाबी किसान "अकाल पुरख की दात" (निराकार ईश्वर का वरदान) जो भले ही मनुष्य की दृष्टि में लघु, फिर भी "कुदरत की निगाह" में विराट होती है, के प्रति कृतघ्न नहीं होता। भले ही वह वैशाख के पहले दिन ही 'सोने' की फ़सल की कटाई आरंभ न करे, फिर भी वह इस दिन खुशी के मारे झूम उठता है।[5]"

गेहूँ और सोने के हल्के पीलेपन में साम्य देखकर सेखों साहब ने बड़ा सुंदर प्रतीक-विधान किया है। दानों से भरी गेहूँ की बालियाँ देखकर पंजाब का किसान "वैशाखी" के शुभ अवसर पंर आनंद-विभार हो उठता है। वह 'भंगड़ा' जैसे ओजस्वी नृत्य और 'बोलियों', 'माहिया' तथा अन्य लोकगीतों की मधुर ध्वनि के द्वारा अपना हार्दिक उल्लास प्रकट करता है। करे भी क्यों न? कुछ समय पश्चात् वह बालियों से गेहूँ प्राप्त करके किसी एक गाँव, ज़िले या विशेष राज्य का नहीं, बल्कि समूचे देश का "भंडारी" बन जाएगा।

वैशाखी मनाने के उपरांत उसकी दराँती की कला से देखते ही देखते उसकी कोठड़ियाँ गेहूँ और भूसे से पूरी तरह भर जाएँगी। आवश्यकतानुसार पशुओं के लिए चारा और परिवार के लिए गेहूँ संभाल कर रखने के बाद वह बाक़ी 'जिनस' मंडी में बेचकर बेटी-बेटियों, पोतों-दौहित्रों के विवाह तथा अन्य सामाजिक रीति-रिवाज निभाने के लिए रुपया-पैसा इकट्ठा करेगा। जोंक की तरह खून चूसने वाले साहूकार का पैसा चुका कर सुख की नींद सोएगा। सरकारी लगान और आबियाना भर कर चैन की वंशी बजाएगा। यदि पंरपरावादी विचारों का हुआ तो पुरोहित-नाई आदि को दक्षिणा-नेग देकर अपनी दानशीलता की प्रशंसा सुनकर गद्‌गद् हो उठेगा।

वैशाखी क्या आई, मानो पंजाब के किसान के घर में देवी लक्ष्मी का साक्षात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्पण होने जा रहा है। भद्र पुरुष और ईमानदार व्यक्ति की उपमाओं से विभूषित किसान इसीलिए प्रसन्न हो उठता है और अपने भाई बन्धुओं के साथ खुशियों के मधुर क्षण बाँटता हैं।

## वीरता पर्व एवं नव वर्षोत्सव

भारतीय काव्य शास्त्र में 'वीर' चार प्रकार के बताए गए हैं--- दान वीर, दया वीर, धर्म वीर और युद्ध वीर। पहले तीन प्रकार के वीर दान-दक्षिणा द्वारा अपने धर्म की नींव पक्की कर लेते हैं। 'वैशाखी' के लोक पर्व के साथ कालांतर में शौर्य की घटनाएँ भी जुड़ने लगीं। भारतीय शास्त्रों का कथन है कि वही राजा नया संवत् चला सकता है, जिसने नवीन संवत् का आरंभ होने से कम से कम एक दिन पहले अपना तथा अपने राज्य की जनता का सारा ऋण चुका दिया हो।

उज्जैन के सम्राट विक्रमादित्य ने इसी शास्त्रीय विधान को सहर्ष स्वीकार करके 'नवीन संवत्' की स्थापना की थी। उस शक्तिशाली नरेश ने अपने भुजाबल से शक जाति के आक्रमणकारियों के छक्के छुड़ा दिए थे। इस प्रकार महाराजा विक्रमादित्य ने देश की रक्षा का बोझ उतार कर अपनी प्रजा को स्वतंत्र एंव निश्चिन्त कर दिया था। ऐसा करने से वह महाबली नया संवत् आरंभ करने का अधिकारी बन गया था। पंजाब में इसी कारण बहुत से लोग सौर वर्ष का आरंभ वैशाख मास की पहली तारीख से मानते हैं। इसके महीनों के नाम आकाशीय नक्षत्रों की विज्ञान-सम्मत गति एवं उदयास्त पर आधारित हैं। यह "विक्रमी संवत्" के नाम से विख्यात है।[७]

इस घटना से लगभग साढ़े सत्रह सौ साल बाद दसवें सिक्ख गुरु श्री गोविन्द सिंह जी ने भारतीय वीरता की पावन पंरपरा को चाँर चाँद लगा दिए। सतारहवीं शताब्दी के मध्य में समूचा भारत मुग़ल साम्राज्य के अत्याचारों के कारण कंपायमान हो उठा था। ऐसे संकट काल में उन्होंने सुप्त समाज को चनौती भरे शब्दों से झकझोर डाला:

सकल जगत् में खालसा पंथ गाजै।
जगे धरम हिन्दू, सकल भंड भाजै।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने इसी कथन को कार्यान्वित करने के लिए दशमेश पिता ने पहली वैशाख, संवत् 1756 (तदानुसार 30 मार्च, 1699) को आनंदपुर साहिब (ज़िला रोपड़; पंजाब) में खालसा पंथ का सृजन कर दिया। उन्होंने भिन्न-भिन्न वर्गों से पाँच व्यक्ति चुन कर पहले उन्हें अमृत छकाया और सिर-धड़ की बाज़ी लगाने के लिए उन्हें एक नया रूप प्रदान किया। किसी भी सिक्ख के लिए उन्हीं वीरों (पाँच प्यारों) वाले पाँच चिह्न धारण करना अनिवार्य हो गया। कच्छ, केश, कड़ा, कृपाण (कमर में लटकाई जाने वाली छोटी-सी तलवार) और कंघा ही ये चिह्न थे, जिन्हें पारिभाषिक शब्दावलि में 'पंच ककार' ('क' की आद्याक्षरी वाले धार्मिक चिह्न) कहा जाता हैं। वस्तुत: ये भुजा-बल पर आस्था के वे पक्के स्तंभ थे, जिन पर स्वायत्त शासन की नींव रखी गई थी।

कालांतर में सिक्ख समाज इसी दिन अमृतसर के "अकाल तख्त साहिब" में एकत्र होकर अपनी-अपनी स्थानीय समस्याएँ श्री गुरु ग्रंथ साहिब की हजूरी (उपस्थिति) में सुलझाने लगा। इसे 'गुरमता' (श्री गुरु ग्रंथ साहिब का आदेश) कहा जाता है। पहला 'गुरमता समागम' 29 मार्च, सन् 1748 को 'वैशाखी' के शुभ पर्व पर आयोजित हुआ था।[7]

इस प्रकार पंजाब की शस्य श्यामला भूमि पर वैशाखी के लोकपर्व का इतना माहात्मय हो गया कि उस दिन बिना मुहूर्त निकलवाए अथवा ज्योतिषी से शुभ घड़ी पूछे बिना ही सभी मांगलिक कार्य संपन्न होने लगे। महाराजा रणजीत सिंह ने अपने राज तिलक के लिए 'वैशाखी' का पवित्र दिन ही चुना था। डॉ. भगत सिंह के शब्दों में:

"12 अप्रैल सन् 1801 को रविवार के दिन एक बड़ा दरबार सजाया गया। इसमें सम्मिलित होने के लिए रईसों तथा सम्माननीय व्यक्तियों को आमंत्रित किया गया। बाबा साहिब सिंह बेदी ने राज तिलक के रूप में रणजीत सिंह को 'सरकार-ए-वाला' अथवा 'महाराज' की उपाधि से विभूषित किया। यही पहला अवसर था जबकि किसी सिक्ख सरदार को 'महाराज' की उपाधि प्राप्त हुई हो।"[8]

महाराजा रणजीत सिंह के समकालीन इतिहास लेखक श्री सोहन लाल सूरी का कथन है कि राज तिलक के बाद 'नानक शाही' नामक सिक्का भी चलाया गया था। अपने शासन काल के दौरान महाराजा रणजीत सिंह वैशाखी के पावन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्व पर सोने के बर्तन तथा नक़द धन-राशि दान करते थे।[9] पंजाब की सिक्ख रियासतों में भी 'वैशाखी' के सालाना दरबार और दान-दक्षिणा की परंपरा सन् 1948 ई. में रियासतों के पुनर्गठन तक चलती रही। तदनंतर शाही दरबारों के सिलसिले का अंत हो गया, फिर भी राज घराने अपनी हैसियत के अनुसार आज भी दान-दक्षिणा की परंपरा निभाते आ रहे हैं।

## अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की नृशंसता

'वैशाखी' का नाम सुनते ही हमारा ध्यान बरबस भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास की ओर आकृष्ट हो जाता है। 13 अप्रैल, सन् 1919 को अमृतसर के प्रसिद्ध जलियाँ वाला बाग़ में जो दुखांत घटना घटित हुई, उसे सुनते ही प्रत्येक देशभक्त का खून खौल उठता है। उस दिन वैशाखी की खुशी मनाने के लिए जलियाँवाला बाग़ में हज़ारों की संख्या में एकत्र हुए निर्दोष लोगों को जनरल डायर की गोलियों ने भून डाला था।

इस रोमांचकारी घटना से समूचे भारत में क्रोध की लहर दौड़ गई। ज्यों ही बंगाल में इस रक्तपात की ख़बर पहुँची तो अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिए बंगला के विख्यात साहित्यकार श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने ब्रिटिश साम्राज्य से प्राप्त 'सर' की उपाधि का परित्याग कर दिया। इस करुणा भरी घटना ने अंग्रेज़ी शासन की जड़ें हिला दीं। सभी हिन्दुस्तानी अपने धार्मिक एवं क्षेत्रीय भेदभाव को भूलकर अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद से लोहा लेने के लिए संगठित हो गए। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि जलियाँवाला बाग़ हत्याकांड ने अंग्रेज़ी-भारतीय संबंधों को एक नया मोड़ दे दिया था। उदारचित्त अंग्रेज़ विद्वानों ने इस सदर्भ में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि जनरल डायर की इस महान भूल ने अंगेज़ों को भारत छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया।[10]

## सामुदायिक लोकोत्सव

आम बोलचाल में सामुदायिक लोकोत्सव को 'मेला' कहते हैं। 'मेला' शब्द 'मिलना' या 'मेल' की भाववाचक संज्ञा है। जब बहुत-से लोग किसी विशेष सामाजिक अथवा धार्मिक उद्देश्य को सम्मुख रखकर किसी विशिष्ट स्थल पर एकत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं तो उसे 'मेला' की संज्ञा प्रदान की जाती है। पंजाब के लगभग सभी बड़े सिक्ख गुरुद्वारों में 'वैशाखी का मेला' भरता है। स्नान और दान का पर्व होने के कारण वैशाखी के मेले पर उस गुरुधाम का महत्व अधिक माना जाता है, जिसके समीप कोई पवित्र सरोवर हो। पटियाला के "गुरुद्वारा दुक्ख निवारण साहिब" की महिमा श्री गुरु तेग़ बहादुर जी की चरण-रज से पवित्र हुई धरती के कारण है। ऐसा लोक विश्वास है कि इस पावन स्थल के सरोवर में स्नान करने से बाँझ स्त्री के भी संतान हो जाती है। फलत: बहुत से लोग सौर वर्ष के पहले दिन यहाँ अपनी मनोकामनाएँ लेकर स्नान करने आते हैं। इसी प्रकार जिन के मन की मुराद पूरी हो जाती है, वे भी अपनी 'मन्नत' चढ़ाकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

पंजाब के ज़िला बठिंडा में तलवंडी साबो नामक क़स्बे में 'दमदमा साहिब' के गुरुद्वारे की वैशाखी का बड़ा ऐतिहासिक महत्व है। यहाँ पर दसवें सिक्ख गुरु श्री गोविंद सिंह जी ने सन् 1705-06 में कुछ दिन विश्राम किया था। उस समय डल्ला नामक एक जाट सिक्ख ने गुरु साहिब की अत्यंत भक्ति-भाव से सेवा की थी। तभी कलगीधर जी ने डल्ला को अमृत-पान करवा कर सिक्ख बनाया और उस रेतीले इलाकों में नहरें बहने और गेहूँ की फ़सल लहलहाने का आशीर्वाद दिया था। यही स्थान आगे चलकर 'दमदमा साहिब' और "गुरु की काशी" के नाम से विख्यात हुआ। यहाँ पर गुरु साहिब से संबद्ध पाँच पवित्र स्थल हैं। वैशाखी के मेले पर वहाँ स्नान करने एवं दीवाली जैसा दृश्य देखने तथा दानार्थ दूर दूर से श्रद्धालु त्योहार से दो एक दिन पहले ही पहुँच जाते हैं।

यहाँ पधारने वाले श्रद्धालुजन सब से पहले पवित्र सरोवर में स्नान करते हैं। इस विषय में एक विदुषी का कथन है:

"इस दरबार में मन माँगी मुरादें पूरी होती हैं। सच तो यह है 'यकीन' (आस्था) की ही बात। श्रद्धालु विश्वास के साथ चले आते हैं और सब से पहले पवित्र सरोवर के अमृत कुंड में स्नान करके कुष्ट रोग से निवृत्ति प्राप्त कर लेते हैं। कोई 'जपुजी साहिब' का पाठ करता है, कोई 'रामदास सरोवर नाते सभ उतरे पाप कमाते' पढ़ता हुआ डुबकियाँ लगा-लगा कर सचमुच पवित्र होने की इच्छा प्रकट करता है। कोई पुरातन मर्यादाओं की धारणाओं वाला व्यक्ति 'बसंत की वार' पढ़ता हुआ 'रोग सोग सभ मिट गए नित नवाँ नरोआ' और 'दिन रैन नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिआइदा फिर पाइ ना मोआ' पढ़ता-पढ़ता अन्तरात्मा के साथ एकात्मीय स्थापित करता प्रतीत होता है।"[11]

वैशाखी के दिन स्थानीय गुरुद्वारों के दर्शन करने और लंगर छकने-छकाने में निकल जाता है। अगले दिन निहंग सिक्खों का 'बुड्ढा दल' समीपस्थ 'महल्ल सर' से सटे मैदान में अपने शौर्य के करतब दिखाता है। डल्ला जाट की आतिथ्य सेवा के समय श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने, वैशाखी को वीरता पर्व बना दिया था। आजकल उसी की पावन स्मृति में 'निहंग सिंघ' श्री गुरु ग्रंथ साहिब की अरदास (प्रार्थना) के पश्चात् शस्त्रों से सुसज्जित होकर शोभा-यात्रा में सम्मिलित होते हैं। जुलूस में 'महिषासुर' की सजीव झाँकी प्रस्तुत की जाती है। भैंसे की नाक में पड़ी नकेल पकड़े दो निहंग सिक्ख उस पर सवार रहते हैं। 'महल्ल सर' में पहुँचने पर एक ओर पहलवानों की कुश्तियाँ होती हैं। फिर दूसरी ओर एक 'जत्थेदार' के नेतृत्व में नेज़े-बाज़ी और गतके बाज़ी के चमत्कार दिखाए जाते हैं। नेज़े-बाज़ी का दृश्य इस प्रकार होता है:

"सिंघ (निहंग सिक्ख) दूर से घोड़ा दौड़ाते हुए हाथ में नेज़ा थामे सरपट दौड़ आते हैं। सैंटर (क्रीड़ा स्थल के मध्य) एक सिंघ फूस के 'बूझे' (बालक नुमा पुतले) को गाड़ देता है। दूसरा सिंघ घोड़े को सरपट भगाकर नेज़े पर इस 'बूझे' को लटकाता है। नेज़े पर लटका हुआ बूझा इस प्रकार आभासित होता है मानो 'मस्से रंगड़' का सिर हो। सिंघ बारी-बारी से आते हैं और इसी प्रकार अपने करतब दिखाते हैं।[12]"

इस प्रकार दमदमा साहिब की वैशाखी का मेला तीन दिन चलता है। तीसरे दिन संध्या होने से पहले ही सारे आयोजन संपन्न हो जाते हैं ताकि श्रद्धालुजन लौटकर सूर्यास्त होने से पहले अपने घरों में पहुँच जाएँ।

इसी तरह का मेला जालंधर शहर के 'देवी तालाब' पर तथा करतारपुर (जालंधर ज़िले के एक) नगर में भी लगता है। यात्रीगण करतारपुर के थम्म साहिब, गंगा सर, चुबच्चा साहिब, कौलसर आदि गुरुद्वारों के दर्शन करते हैं। वहाँ पर श्री गुरु ग्रंथ साहिब की 'बीड़' (हस्तलिखित प्रति) है, जिसे गुरु अर्जुन देव जी ने भाई गुरदास जी से लिखवाया था। उसे भी श्रद्धालुओं के दर्शन हेतु रखा जाता है। महाराजा रणजीत सिंह द्वारा निर्मित किले में छठे सिक्ख गुरु श्री हरिगोविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी के शस्त्रास्त्र संभाल कर रखे गए हैं। वैशाखी के दिन इन शस्त्रास्त्रों के दर्शनार्थियों के लिए किले के द्वार खोल दिए जाते हैं। करतारपुर में यह रिवाज है कि वहाँ की बेटियाँ वैशाखी का मेला देखने के लिए अपने ससुराल से पीहर में अवश्य पहुँचती हैं।[13] कपूरथला शहर में वैशाखी का मेला नगर से 3 किलोमीटर दूर 'कांजली नदी' के तट पर स्नान करके मनाया जाता है। रजवाड़ों के समय में यहाँ पर पानी की खेलें हुआ करती थीं। किन्तु अब ऐसे आयोजन समाप्त हो गए हैं और मेले का रंग फीका पड़ने लगा है।

एक विद्ववान का मत है कि सिक्ख गुरुद्वारों में 'वैशाखी' का आरंभ तीसरे गुरु श्री अमरदास जी के समय से ही हो गया था। इसका उद्देश्य यही था कि लोग 'संगत' में बैठ कर एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करना एवं सद्भावनाएँ अर्जित करने की शिक्षा लें। अमृतसर के हरिमंदर साहिब में वैशाखी मनाने की प्रथा पाँचवें गुरु साहिब श्री अर्जुन देव जी के आदेशानुसार प्रचलित हुई।[14]

# हिमाचली छवि

## लोकपर्व की नामावलि

हिमाचल प्रदेश में स्थानीय देवताओं एवं ऋषियों के मंदिर में 'वैशाखी' के मेले लगते हैं। इस पहाड़ी क्षेत्र में प्रस्तुत लोकपर्व के कई नाम और उच्चारण मिलते हैं। भरमौरी बोली में 'वैशाख' महीने को 'बसुआ' कहते हैं।[15] सिरमौर ज़िले में 'वैशाख' महीने को 'बशो' तथा 'वैशाख' के लोकपर्व को 'बशोआ' पुकारा जाता हैं।[16] हिमाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में इस पर्व को 'बसोआ' ('श' के स्थान पर 'स') उच्चरित करते हैं। किन्तु इसके 'बिशू' तथा 'बीशू' उच्चारण अधिक प्रचलित हैं, जो कि इन दिनों मनाए जाने वाले आसाम के कृषि-पर्व से विचित्र साम्य रखते हैं।

इस राज्य की अधिकांश जनता चान्द्र वर्ष के चैत्र मास की प्रतिपदा से ही नए वर्ष का आरंभ मानती है। फिर भी सिरमौरी बोली में एक शब्द मिलता है: 'बशोतरी', जिसका अर्थ है 'वार्षिक'।[17] जब हम 'वैशाख' के लिए प्रचलित सिरमौरी बोली के 'बशो' एवं 'बशोआ' शब्दों को तथा कुल्लू एवं शिमला ज़िले के 'बशोह' शब्दों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो ऐसा लगता है कि कुछ लोग वैशाख से वर्षारंभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानते आ रहे हैं। कुल्लू ज़िले की बोली में अवस्थित 'बरशोहा' इस तथ्य का रहस्योद्घाटन करता प्रतीत होता है, जिसका अर्थ इस प्रकार किया गया है:-

"देवता द्वारा वर्ष में एक बार प्राय: वैशाख में बताया वर्ष भर का वृत्तांत।"[18]

हिमाचल प्रदेश में महीनों के नाम सुनाने के लिए पंडित या भाण्ड अपने यजमानों के यहाँ जाते हैं। "वर्ष भर के वृत्तांत" का भाव ही 'वर्षफल' है और हिमाचल की बोलियों में इसका उच्चारण 'बरशफल' हो गया है। अत: हमारा मत है कि वैशाख से नव वर्ष के सूत्रपात की मान्यता अब भी किसी न किसी रूप में पहाड़ी क्षेत्र में विद्यमान हैं।

## हिमाचल प्रदेश के विभिन्न मेले

शिमला ज़िले में 'पुरग' नामक स्थान के महादेव की बड़ी मान्यता है। पुरग के अतिरिक्त एक दर्जन से अधिक ग्रामों के निवासी इसे अपना देवता मानते हैं। 'बीशु' का मेला पुरग गाँव में लगता है। उस लोकपर्व के शुभावसर पर भक्त जन पुरग के शिवालय के महादेव की मूर्ति को कमाहली (पालकी) में ले जाते हैं और गिरी नदी में स्नान करवा कर शिवालय में लौटा लाते हैं। तदनंतर यह मेला तीन दिन तक मनाया जाता है। इस मेले में चैथला, नेहरा और पिमडा गाँव के अन्य देवताओं को भाग लेने के लिए वहाँ के ऋद्धालुजन पालकियों आदि में उठाकर लाते हैं। जनश्रुति है कि इन्हीं देवताओं ने इस क्षेत्र के लोगों की राक्षसों से रक्षा की थी। देवताओं की असुरों पर विजय के उपलक्ष्य में ही यह मेला लगता है।

चौपाल क्षेत्र में यह मेला शिव-मंदिरों के समीप लगता है। मशरान और पुजारली के ग्राम देवता 'महेश्वर' भाई-भाई माने जाते हैं। अनुश्रुति है कि जुब्बल के राजा ने एक शिव भक्त ब्राह्मण को किसी कारणवश कारागार में डाल दिया था। रात्रि में भोले बाबा ने भक्त को दर्शन दिए और क़ैद से छुड़ाने का आश्वासन दिया। अगले ही दिन वह सचमुच जेलखाने से छूट गया। घर लौटते समय ब्राह्मण महोदय ने उसी स्थान पर विश्राम किया, जहाँ उसने स्वप्न में अपने आराध्य देव भगवान शिव के दर्शन किए थे। वहीं पर उसके हाथ शिव जी की दो मूर्तियाँ लगीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने एक मूर्ति की प्रतिष्ठा मशरान में कर दी और दूसरी की पुजारली गाँव में तथा उन स्थलों पर शिवालयों का निर्माण करवा दिया। तभी से इन देवस्थलों पर 'बीशू' का मेला लगता हैं।

हिमाचल के कई ऋषि-मंदिरों में भी 'बीशू' के उपलक्ष्य में मेलों का आयोजन होता है। ऐसे कई प्रसिद्ध स्थल हैं। उनमें से एक है रिवालसर (मंडी ज़िले) की विख्यात झील के तट पर निर्मित लोमस ऋषि का मंदिर। लोमस ऋषि की स्मृति में बनाए गए इस छोटे-से मंदिर के समीप भारी मेला लगता है। श्रद्धालुजन पहले इस झील में स्नान करतें हैं, जिसकी महिमा गंगा स्नान के तुल्य मानी जाती है। स्नान के उपरांत लोग मंदिर में ऋषि-मूर्ति का दर्शन करते हैं। मेले की समाप्ति पर प्रत्येक भक्त बर्रे (एक स्थानीय जड़ी बूटी) की जड़ें और पत्ते ले जा कर अपने घरों में स्थापित करता हैं।[19]

शिमला-हमीरपुर राजमार्ग पर संदौली नामक स्थान से लगभग 2½ किलोमीटर की दूरी पर बंदलाधार के पश्चिम में 'मार्कण्डेय तीर्थ धाम' स्थित है। एक जनश्रुति के अनुसार बालक मार्कण्डेय की घोर तपस्या के आगे सभी देवताओं ने घुटने टेक दिए। जब ऋषि मार्कण्डेय की आयु केवल एक दिन की रह गई तो उन्होंने मिट्टी का एक शिवलिंग बनाया और उसे अपनी भुजाओं में समेट कर तपस्या में लीन हो गए। यमराज ने मृत्यु और काल को मार्कण्डेय के जीवनांत के लिए भेजा तो मिट्टी के शिवलिंग से अग्नि की लपटें निकलने लगीं। उससे भयभीत होकर मृत्यु एवं काल रफू चक्कर हो गए। उनके जाते ही शिवलिंग से पानी के फव्वारे छूटने लगे और वहाँ पर एक कुण्ड में पानी जमा होने लगा।

मंदिर के समीप एक गुफ़ा है, जिसे व्यास गुफ़ा कहा जाता है। कहते हैं कि महर्षि व्यास जी इसी गुफ़ा से प्रतिदिन इस कुण्ड में स्नान करने आया करते थे। जनश्रुति के अनुसार मार्कण्डेय ऋषि की रक्षा मृत्तिका शिवलिंग ने वैशाखी के दिन की थी। संभवत: जन मानस ने 'मृत्तिका' (मिट्टी) और 'मृत्यु' (मौत) शब्द में ध्वनि-साम्य के कारण यह लोक कथा गढ़ ली हो। उसी उपलक्ष्य में इस स्थल पर "बीशू" का मेला लगता है। लोगों का विश्वास है कि "मार्कण्डेय तीर्थ धाम" के कुण्ड में स्नान करने से संतानहीन व्यक्ति को भी पुत्र-प्राप्ति हो जाती


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसी प्रसंग में एक जनश्रुति और भी है। पुत्र-प्राप्ति हेतु मार्कण्डेय ऋषि के पिता ने ब्रह्मा जी की घोर तपस्या की। प्रसन्न चित्त ब्रह्मा जी के वरदान के फलस्वरूप महर्षि मार्कण्डेय का जन्म हुआ। अत: मार्कण्डेय मंदिर के समीप के चश्मे में स्नान करने से पुत्र-प्राप्ति, संकट-हरण एवं सुख-संपत्ति की वृद्धि होती है।[20]

किन्नौर ज़िले के आदिम जनजातीय क्षेत्र में "बीशू" त्योहार 'पंचखोने के स्वांग' द्वारा मनाया जाता है। गाँव के बीच बने मंदिर से पंच खोने का स्वांग निकलता है। मुख्य स्वांग को 'मड़ स्वालस' कहते हैं। इस स्वांग में केवल तीन पुरुष ही रहते हैं। एक पुरुष खड़ा हो जाता है और दूसरा उसकी पीठ पर सिर झुका कर टिक जाता है। इसी मुद्रा में तीसरा पुरुष दूसरे की पीठ पर सवार हो जाता है। सब से आगे वाले व्यक्ति के मुँह को एक मुखौटे से ढाँप दिया जाता है, जो आधा काला होता है और आधा सफ़ेद। मुखौटे के दाईं तथा बाईं ओर सींग लगाकर उसे भयंकर राक्षस का रूप दे दिया जाता है।

दूसरे स्वांग का पुरुष किन्नौर स्त्री की वेश भूषा धारण किए रहता है। उसके काले-सफ़ेद मुखौटे में एक बच्चा बना होता है। बच्चों को खा जाने वाली इस राक्षसी के स्वांग को 'छेचखोन' कहते हैं। इस प्रकार पुरुषों से बने 'बरखोन' पर बाघ का, 'होमखोन' पर भालू का तथा 'कूई खोन' पर कुत्ते का मुखौटा लगा रहता है। स्वांग प्रारंभ होते ही 'मड़ स्वालस' और उसकी राक्षसी पत्नी 'छेचखोन' नृत्य मुद्राएँ करते हैं और पशुओं के आकार वाले स्वांग उनके पीछे भयंकर आवाज़ें करते भागते हैं। राक्षस-युगल इनसे डर कर मुँह बनाता हुआ भागता है और अश्लील हरकतें तथा संभाषण करता है।

गाँव के मेशुर एवं नारायण आदि देवताओं को प्रदर्शन-स्थल के सामने आसीन कर दिया जाता है। नृत्य करते 'खोने' चीख-चीख कर 'होईशियागो' तथा 'गिद्दा' शब्दों का उच्चारण एवं संभोग क्रियाएँ करते हैं। दर्शक भी उन्हीं की तरह चीखते हैं। स्वांगाभिनय के समय ताँबे की तूरी-बुखारिड नामक वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता है। इसे राक्षस की मृत्यु की घोषणा समझा जाता है। तदनंतर स्वांग की सामग्री मंदिर में लौटाकर अभिनेतागण अपने-अपने घर चले जाते हैं।[21]

हिमाचल प्रदेश के 'कोटब' नामक ग्राम में 'बिशू' मेले को 'विष्णु का मेला'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानकर आस-पास का जन समूह एकत्र होता हैं। 'विष्णु' के अन्त्याक्षर का लोप करके ही सामान्य जनता इसे 'बीशू' पुकारने एवं 'विष्णु-उत्सव' मानने लगी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह मेला वैशाख मास में कौरव-पाण्डवों की स्मृति में भरता है। इस उत्सव की धनुषवाण प्रतियोगिताओं में भाग लेने तथा मेले का आनंद लूटने के लिए स्त्रियों, पुरुषों तथा बालकों के दल दूर-दूर के गाँवों से आते हैं। "बीशू" मेले के इस लोकगीत में इन सभी बातों का विवरण प्राप्त होता है:

म्हारे कोटब जाणा, बीशू बोले मेले रा हामों चाव
शाठी पाशी रे खुंदों गाजे-बाजे सिते सेला आव
पाली दरावेले ढीला जो देवोधियो सीढ़ो
सीते आदमी भेयो, दुधा माता लीवो
पितली पंचड़ी रे भाटे जे आये-बोड़े
देवते दी गरणी लागी–देवते के मनाव
पारलो सेरा ढोडा खेलदे लागे
आरी धारो दी ला छेड़बे लाई–चटाव
बीशू बोलो मेला रा चाव, म्हारे कोटबे जाणा।

## गद्दी क्षेत्र का सामाजिक त्योहार

गद्दी जन-जाति अधिकतर हिमाचल प्रदेश के चंबा ज़िले में बसी हुई है। संपूर्ण गद्दी क्षेत्र में 'वैशाखी' को 'बसो' के नाम से याद किया जाता है और उसे सामाजिक त्योहार के रूप में बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। गद्दी लोग घुमंतू हैं, फिर भी सभी की यही मनोभिलाषा होती है कि वे गदेरन क्षेत्र में जाकर अपनी जन-जाति के लोगों के साथ मिलकर 'बसो' का त्योहार मनाएँ।

त्योहार की तैयारियाँ कई दिन पहले शुरू हो जाती हैं। गद्दी जन-जाति की जो महिलाएँ अपने घरों में रह जाती हैं, वे उन्हें पहले गोबर-मिट्टी से लीप-पोत लेती हैं। फिर 'मकोल' (सफ़ेद मिट्टी) से पूरे घर में इस तरह सफ़ेदी की जाती है जिससे घर में नई सजावट नज़र आए। यही स्त्रियाँ कोदों के आटे की टिकियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना लेती हैं, जिन्हें गद्दी बोली में 'पिंदड़ी' पुकारा जाता है। प्रत्येक पिंदड़ी पर छाछ छिड़क दी जाती है और कोदों के आटे से तैयार की गई टिकियों को एक टोकरी में रखकर ऊनी वस्त्र से ढाँप दिया जाता है। दो-तीन दिनों में ये टिकियाँ सफ़ेद हो जाती हैं और चखने पर इनमें थोड़ी-सी खटास का स्वाद आता है।

इसके बाद इन टिकियों को एक खास पेड़ के पत्तों की तीन-चार पर्तों में लपेट दिया जाता है। 'बसो' के दिन इन्हें दूध में मीठा मिलाकर सेवन किया जाता है। कुछ लोग इसे गुड़ या शहद के साथ भी खाते हैं। इसे आत्मीय जनों को भी भेंट किया जाता है। कुछ लोग देवी-देवता को चढ़ाने के लिए विशेष पकवान भी तैयार करते है, जिन्हें संज-संचोलू कहते हैं। 'बसो' मनाने के लिए गद्दी जाति की विवाहिता कन्याएँ विशेष रूप से अपने मायके पहुँचती हैं और बहनोइयों के मुँह पर पिंदड़ियाँ मलकर खूब तमाशा करती हैं।

सुबह होते ही पिंदड़ी की भेंट और सेवन तथा संज-संचोलू के चढ़ावे के बाद[22] गदेरनें किसी खुले स्थान में एकत्र हो जाती हैं। वे गिद्धा और डंगी (डाँगी) नृत्य करती हैं। इन समूह नृत्यों में अधिकतर कन्याएँ ही भाग लेती हैं। किन्तु गद्दी स्त्रियों की पारंपरिक वेशभूषा में कन्याओं की भाँति सुसज्जित होकर कई बार गदेरन युवतियाँ और बड़ी बूढ़ियाँ भी जोश में आकर इन नृत्यों में सम्मिलित हो जाती हैं।

## पहाड़ी नृत्य-गान का पर्व

डंगी नृत्य करने वाले गदेरन नर्तकियाँ एक गोल दायरा बना लेती हैं। इसमें बिना किसी वाद्य यंत्र के लोक गीत गाए जाते हैं। वे एक दूसरी से बाहें मिलाकर दायरे में घूमती हैं और गान की कड़ियाँ गाती तथा दोहराती हैं। नृत्य के समय गाया जाने वाला पहला लोक गीत होता है 'ब्रपेडी' (बरहेड़ी)। इस विरह गान में एक नव विवाहिता पर ढाए गए सास के अत्याचारों और मायके से आने वाले भाई की प्रतीक्षा का दुःखमयी वर्णन होता है।[23] एक लोकगीत ऐसा भी होता है, जिसमें एक निम्न जाति की लड़की के प्रति किसी राजा के प्रेम का चित्रण रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।[24]

वस्तुत: बीशू वसंत ऋतु का त्योहार है, जबकि खेतों में जौ लगभग पक चुके होते हैं और गेहूँ के दाने भी पक कर सोन रंगे (golden) हो जाते हैं। अत: कई जगत 'बिसू मेले' लगते हैं, जिसमें आस-पास के गाँवों के बंधु-बांधवों से बहाने से मेल-मुलाक़ात भी हो जाती है। ऐसे मेले सुबह से लेकर देर रात तक चलते हैं। दिन में लोक नृत्यों का सिलसिला चलता है और रात्रि में स्वांगों के अभिनय होते हैं। स्वांगों में केवल पुरुष ही सम्मिलित होते हैं। स्वांग में आने वाले दर्शकगण साधुओं-वैरागियों से उनके संप्रदाय के आरंभ होने तथा तीर्थ-यात्रा हेतु गंतव्य-स्थल के बारे में पूछकर अपने ज्ञान में अभिवृद्धि करते हैं। कई उत्तरदाता जंगम अपने आराध्यदेव भगवान शिव का स्तुति-गान करते हुए वस्तु-स्थिति समझाते हैं।

नरसिंह अवतार के स्वांग में वैष्णव भजनों का प्रयोग होता है। 'भैंसा नृत्य' में स्थानीय देवताओं के पुराने ऊनी वस्त्रों के टुकड़े जोड़ कर लबादा पहना जाता है। चार नर्तक हाथ में लंबे डंडे पकड़कर और सामने की ओर झुककर चार टाँगों वाले पशु का रूप धारण करके गुज्जर जाति के अपने मालिक के संकेतों का पालन करते प्रतीत होते हैं। अनाड़ी किसान, अनाड़ी नाई, लालची साहूकार के अतिरिक्त ऐसे वर का स्वांग भी होता है, जिसके साथ किसी कन्या ने विवाह से इंकार कर दिया हो। प्रत्येक स्वांग के बीच अंतराल के समय में धीमे संगीत के साथ एक व्यक्ति विभिन्न प्रकार के हाव-भाव का प्रदर्शन भी करता है, जिसे पहाड़ी भाषा में 'भानरा नृत्य' कहा जाता है।[25] आश्चर्य नहीं कि यह शब्द संस्कृत "रूपक" की 'भाण' विधा से व्युत्पन्न हो।

कुल्लू ज़िले के निरमण्ड नामक स्थान पर लगने वाले इस लोकपर्व को "निर्शू-बिशू का मेला" कहते हैं। वहाँ भी दिन में लोक-नाट्यों और रात्रि में स्वांगों द्वारा लोकानुरंजन किया जाता है। हिमाचल प्रदेश के किन्नौर ज़िले के 'चगाँव' नामक स्थान पर प्रत्येक चौथे वर्ष 'बीशू' के दिन 'बल' मनाया जाता है। 'बल' शब्द की व्युत्पत्ति एवं स्वरूप के विषय में एक विद्वान का विवरण प्रस्तुत है:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बल से अभिप्राय है "शौर्य एवं वीरता का प्रदर्शन"। कुछ लोग इसका अर्थ 'बलि' लेते हैं, क्योंकि इस दिन पशुओं की बलि देने की प्रथा भी प्रचलित है। इसका संबंध राजा बलि से भी संभावित है। बल मनाने के दिन गाँव के युवक प्रात: काल में देवता के मंदिर में रखे सभी पुराने हथियारों को शस्त्रागार से बाहर निकाल कर अच्छी तरह चमकाते हैं और तलवारों की तेज़ धार बनाते हैं। दोपहर में गाँव के सभी स्वस्थ पुरुषों के दो दल उन देव-हथियारों से घमासान युद्ध का नृत्याभिनय-प्रदर्शन करते हैं। दोनों प्रतिद्वंद्वी दलों के योद्धाओं के इस कृत्रिम युद्ध में प्राचीन युद्ध कला के अद्भुत कौशल दिखाई पड़ते हैं।

योद्धा–नर्तक देवता की पालकी को गाँव के विभिन्न भागों में घुमाते-फिराते हुए जगह-जगह युद्ध-नाट्य का प्रदर्शन करते हैं। इस परिक्रमा में अनेक बार राक्षस तथा भूत-प्रेत बने मनुष्य-पात्र देवता को घेर लेते हैं और इससे पालकी का भार बढ़ जाता है। परंतु इन एतिहासिक हथियारों को लेकर युद्ध-नाट्य करने से राक्षस तथा भूत-प्रेत डर कर भाग जाते हैं। 'बल' की इस भावना के पीछे जन-जातीय संस्कार सक्रिय देखे जाते हैं। खश राजपूतों के दो प्राचीनतम क़बीलों 'शाठड' और 'पाठड' ने इस युद्ध-नाट्य के ब्याज से अपने प्राचीन जातीय-शौर्य तथा गौरव को आज तक सुरक्षित रखा है।[26]

वैशाखी के शुभावसर पर शिमला ज़िले के अनेक भागों में जोली (भ्टैथू) नृत्य तथा हिमाचल प्रदेश के कई क्षेत्रों में तूरी (ढाकी) नृत्य के प्रदर्शन होते हैं। जोली (भ्टैथू) में भाग लेने वाले कलाकार हरिजन समुदाय के होते हैं। वे मेले के स्थान पर देव-मंदिर के सामने गोल दायरे में खड़े होकर खंजरी बजाते हैं और पूजा-स्थल के देवता का यशोगान करते हुए नाचते हैं। तदनंतर स्थानीय वीर-पुरुष और सती-स्त्रियों की महिमा विषयक गीतों के साथ नृत्य भी होता है। इनाम पाने के इच्छुक ये गायक दर्शकों में उपस्थित किसी महानुभाव का गुण-बखान करके उसे प्रसन्न कर लेतें हैं और धन-राशि तथा वस्त्रादि भी पुरस्कार रूप में प्राप्त करते हैं।

सायंकाल में दर्शक मंडली के समक्ष देव-मंदिर के व्यवस्थापकों की ओर से नर्तकों को सिरोपा भेंट किया जाता है। 'सिरोपे' के रूप में कलाकार के सिर पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पगड़ी बाँधी जाती है और उसे अनाज एवं कुछ धन राशि भी भेंट की जाती हैं। मेले के दौरान पूरी नर्तक मंडली के भोजन-पानी का प्रबंध देवता के भंडार से ही किया जाता है।

तूरी (तुरिण) अथवा ढाकी नृत्य केवल स्त्रियाँ ही करती हैं। ये स्त्रियाँ 'ढाकीण' या 'तुरिण' वर्ग की होती हैं और उसी के आधार पर इस नृत्य का यह नाम पड़ा है। नाचने के समय ये स्त्रियाँ गोटे-किनारी वाले अनेक रंगों के घाघरे-चोली से सुसज्जित रहती हैं। इनके वादक पति गीत एंव नृत्य के समय ढोल और शहनाई पर धुनें निकाल कर इनका साथ देते हैं। यह नृत्य प्रत्येक ग्राम-देवता के मंदिर के सामने होता है। इसके बदले में ग्रामवासी इन्हें खाना, अनाज और कपड़े भी भेंट करते हैं। वैशाखी के अवसर पर कई बार संपन्न लोगों के घरों के सामने नृत्य-गान करके भी ढाकीणें खूब इनाम प्राप्त कर लेती हैं।[27]

## जम्मू-काश्मीर की वैशाखी

कुछ काश्मीरी लेखकों का मत है कि उनके क्षेत्र में वैशाखी लोकपर्व का प्रचलन सिक्खों के द्वारा हुआ हैं। किन्तु अब काश्मीरी पंडित एवं जम्मू-काश्मीर में बसे सिक्ख ही नहीं, बल्कि मुसलमान भी इस त्योहार में भाग लेते हैं।[28] श्रीनगर में हिन्दू 'इश्बअर' के समीप 'गुप्तगंगा' में स्नान करते हैं और तदनंतर वहाँ के मुग़ल उद्यानों, विशेषत: निशात बाग़ में गोठ (Picnic) के लिए जाते हैं। पुराने समय में लोग 'डल झील' में जल क्रीडाएँ और नौका-विहार भी करते थे, जिसका उल्लेख काश्मीरी लोक गीतों में विद्यमान है, यथा:

बअल्य मय त्राव नेन्द्र मस्तय, ड़ल हय गछ़व शिकार्रस्तय।
शौरअ बर्योम बन्दूकस्तय, ड़ल हय गछ़व शिकार्रस्तय।
दसगीर संअबिमिस मअदानस्तय, ड़ल हय गछ़व शिकार्रस्तय।

काश्मीरी भाषा में 'वैशाखी' का उच्चारण 'बअस अखी' है। इस दिन मुसलमान स्त्रियाँ एक विशेष नृत्य करती हैं, जिसे 'रोफ' कहा जाता है। यह नृत्य करते समय नर्तकियाँ अर्द्ध चंद्राकार पंक्ति में खड़ी हो जाती हैं और एक दूसरी की बाहों में बाहें डालकर समूह गान करती हुई हाथों और पैरों से विभिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव-भंगिमाएँ प्रदर्शित करती हैं।[30] 'दूज का चाँद' मुसलमानों के झंडे का चिह्न भी है और यह नृत्य उसकी ओर इंगित करते हुए 'ईद के नए चाँद' को भी चित्रित करता है। वस्तुत: वैशाखी से आरंभ होने वाले नए साल में ईद के चन्द्रोदय के समान होने वाली धूमधाम में मुस्लिम बहनों का नृत्य-गान द्वारा योगदान 'बअस अखी' को एक समन्वयवादी लोकपर्व बना देता है। काश्मीर के बाग़ों में इसी दिन से फव्वारे छूटने आरंभ होते हैं। मानो जलदेवता भी अपने हर्ष की उत्ताल तरंगे रूपी भुजाएँ फैलाकर नए सौर वर्ष के स्वागत के लिए प्रसन्नचित्त खड़ा हो गया हो।

पंजाब से सटे काश्मीर के जम्मू प्रांत में "वैशाखी" को विक्रमी संवत् से आरंभ होने वाले नव वर्ष का प्रतीक माना जाता है। श्रद्धालु लोग मंदिरों और गुरुद्वारों के समीप सरोवरों में स्नान करते हैं और वहाँ पर आयोजित मेलों की रौनक़ बढ़ाते हैं। बड़े बड़े ढोलों तथा मंजीरों के साथ कई नर्तक दल भाँगड़ा करते भी दिखाई पड़ते हैं। जम्मू प्रांत की 'पुणछी बोली' के लोकगीतों में 'हाड़ी' (रबी) की फ़सल पकने पर भी नौकरी-चाकरी में व्यस्त पति के घर न लौटने पर पत्नी अपने 'सज्जन' का स्मरण इस प्रकार करती है:

आइआ वो बसाख, जानी फली ए हाड़ी
हाए महाड़े सजनै नी ककी जेही दाढ़ी
सजणा जीने जोगिआ बहिला मुड़िआँ।

वैशाखी के आस-पास लोग फ़सल बेचकर अपने बच्चों के शादी-मुंडन आदि रचाते हैं। किन्तु घर के किसी पुरुष को छुट्टी न मिलने के कारण उसकी खलने वाली अनुपस्थिति का उल्लेख लोकगीतों में भावुकता पूर्ण भाषा में किया जाता है। कुछ घंटे तक प्रतीक्षा करने के बाद जब कन्या का भाई बहन की शादी में सम्मिलित होने में असमर्थ रहा तो लाचार माता-पिता ने बेटी को विदा कर ही दिया। माता-पिता की बेबसी को अन्य बेटियों ने अपनी काव्यमयी उक्ति में इस प्रकार गूँथ दिया:

आइआ वो बसाख महिलीं बोलणीआँ ने चिड़ीआँ,
अम्मीं ते बाबल धीआँ रोई रोई टोरीआँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## मिंजर मेला

यह मेला सावन के महीने के दूसरे सोमवार से शुरू होकर तीसरे सोमवार तक पूरा एक सप्ताह चलता हैं। कहते हैं कि चम्बा का राजा शैल वर्मा युद्ध में शत्रुओं को परास्त करके लौटा तो मकई के पौधे बालियों से भरे हुए थे। उसकी प्रजा ने अपने स्वामी की विजय की खुशी में उसे मकई की बालियाँ भेंट की थीं। तभी से इस मेले का आयोजन प्रति वर्ष चम्बा में रावी नदी के तट पर होता है।[31] मकई की बालियों को पहाड़ी भाषा में 'मिंजर' कहा जाता है जो कि 'मंजरी' का विकृत रूप है।

सावन के दूसरे रविवार से ही चंबा ज़िले की जनता उत्सव-स्थल पर पहुँचना शुरू कर देती हैं। कई दिनों तक प्रीतिभोज और लोक गीतों तथा लोक नृत्यों के कार्यक्रम चलते हैं। मेले के अंतिम दिन चंबा के राजमहल से जुलूस चलता है। नगर की सारी सड़कें खूब सजाई जाती हैं। मेला स्थल पर पहुँच कर चंबा नरेश द्वारा रावी नदी को नारियल, दूब-घास, फूल और पैसे भेंट किए जाते हैं। तदनंतर राजा अपनी मिंजरें नदी में फेंक देता है और लोग भी उसका अनुकरण करते हैं।

कुछ वर्षों पहले मिंजरें रावी नदी में फेंकने से पूर्व एक भैंसा नदी में छोड़ दिया जाता था। फिर राजा के साथ-साथ नदी में मिंजरें फेंकती हुई जनता भैंसे की हालत देखती थी। यदि भैंसा नदी में डूब जाता तो यह समझा जाता था कि 'वरुण देवता' ने जनता की बलि स्वीकार कर ली है। अत: आगामी मेले तक का समय राज्य के लिए शुभ रहेगा। यदि वह भैंसा पानी से निकल कर दूसरे किनारे चला जाता तो लोग इसे पाप टलने की शुभ सूचना मानते थे।

किन्तु यदि भैंसा उसी दिशा में चला आता, जिधर से फेंका गया था तब यही समझा जाता कि अब राज्य के लिए संकट काल आने वाला है। इसके बावजूद बलि की वस्तु होने के कारण भैंसे को पशु-गृह में सुरक्षित रखा जाता था। उसे खाने को भी मिलता और साल भर तक उससे कोई काम भी नहीं लिया जाता था। किन्तु अगले मेले के समापान के दिन उसे फिर पूर्ववत् नदी में धकेला जाता था। यदि वह डूब जाता तो राज्य के लिए कल्याणकारी वर्ष समझा जाता था।

हिमाचल प्रदेश में पुरानी रियासतों का अंत हो जाने के कारण तथा पशु-बलि के भयानक दृश्य के फलस्वरूप अब रावी नदी में भैंसे को छोड़ने की प्रथा कई वर्षों से बंद हो गई है। राजा को मिंजर भेंट करने के लिए आने वाले लोग सजावट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए अपने वक्षस्थल पर रेशम की बनी हुई मिंजरें भी लगा लेते हैं। किन्तु अब मकई की बालियों की तरह के गोटे-किनारे से बने फूल ही लोग अपने साथ लाते हैं। इन्हें ही 'मिंजर' मान कर भेंट किया जाता है। इस मेले के पीछे छिपी भावना के बारे में दो मत हैं। श्री मौलू राम ठाकुर का कथन है:

"भारी बाढ़ नदी-देव का आक्रोष्ट रूप है। उसे भी बकरे या भेड़ की बलि देकर शांत कराया जाता है.... कुछ लोगों के अनुसार मिंजर मेला जल के अधिपति वरुण देवता की पूजा के रूप में मनाया जाता हैं।"[22]

डॉ॰ जे॰ हचिसन का मत ठाकुर साहिब से भिन्न है, जो कि इस प्रकार है :

"इस मेले का मूल संभवत: पहाड़ी क्षेत्र के आदि वासियों के भूमि-पूजन पर आधारित है। शायद यह अच्छी वर्षा और भरपूर फ़सल प्राप्त करने की कामना से आयोजित होता है।[33]"

हमारा विचार है कि यह मकई की बढ़िया और अत्यधिक फ़सल की प्राप्ति की इच्छा से जुड़ा 'कृषि लोक पर्व' ही है। पहाड़ों पर वर्षा की कमी तो नहीं रहती। किन्तु नदियों में अतिवृष्टि के कारण बाढ़ आ जाने से किसान को अपनी खेती उजड़ने का भय रहता है। अत: वह उसे बचाने के लिए 'वरुण-देव' को मकई की बालियाँ भेंट करके पहले से प्रसन्न कर लेना चाहता है।

## सेरी-पूजा : अखरोटों का त्योहार

हिमाचल प्रदेश के चंबा, कुल्लू और मण्डी ज़िलों तथा उपरि-महासू, पाँगी एंव भरमौर में ' सेरी पूजा' का विशेष प्रचलन है। चंबा ज़िले में इसे "सैर पूजन" भी कहा जाता है। 'सेरी' शब्द के दो अर्थ हैं: (क) "खरीफ़ की फ़सल" तथा (ख) "जल सिंचित भूमि।[34]" यह कृषि-पर्व विक्रमी संवत् के आश्विन (असौज) मास की संक्रांति को मनाया जाता है। वस्तुत: यह फ़सल काटने का त्योहार है। मण्डी ज़िले में इसे एक सामूहिक लोकपर्व के रूप में मनाया जाता है। सर्वप्रथम गणपति-पूजन किया जाता है। फिर धान का पौधा, मक्की के भुट्टे, कपास का पौधा और गन्ना रखे जाते हैं; जो कि खरीफ़ की उपज के प्रतीक होते हैं। सब्ज़ियों में से पेठा, ककड़ी, गलगल; सूखे मेवों में अखरोट और वनस्पतियों में कोठा, कुरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष रूप से पूजां-स्थल पर रखे जाते हैं।

पूजा हेतु आमंत्रित सगे संबंधियों, मित्रों एवं आस-पड़ोस के लोगों को दोपहर का भोजन करवाया जाता है। खाने में तले हुए भटूरे और अनेक प्रकार की सब्ज़ियाँ तैयार की जाती हैं। माश (उड़द) की दाल के "भल्ले" (दही बड़े) और अरबी के पत्तों के "पतरोडू" (पतौड़) अनिवार्य रूप में बनाए जाते हैं। इस प्रकार खेती की कोई भी ऐसी उपज या उसका प्रतीक नहीं रहता, जो कि पूजा अथवा भोजन में विद्यमान न हो। भोजन में अखरोटों का सेवन तथा पूजा के पश्चात प्रसाद में अखरोटों का वितरण होने के कारण आम बोलचाल में इसे 'अखरोटों का त्योहार' भी कहा जाता है। ऐसा लोक विश्वास है कि इस दिन गन्ना चूसना और ककड़ी खाना वर्जित है। जो इस निषेध का उल्लंघन करता है, वह अगले जन्म में गधा बनता है।[35]

गद्दी जन-जाति के लोग इसे फ़सल काटने की तैयारी का सामाजिक त्योहार मानते हैं। इस अवसर पर प्रत्येक पहाड़ी फ़सल को एक थाली में सजाया जाता है। फिर सिट्टों वाली इस थाली में धूप, जलता हुआ दीपक तथा रोली-चावल आदि पूजा की सामग्री रख दी जाती है। कौआ बोलने से पहले सुबह-सवेरे इस थाली को बैलों के मस्तक से छुआ कर उनका पूजन किया जाता है। यह वृषभ-पूजा परिवार का प्रत्येक सदस्य बारी-बारी से करता है। थाली में पहले से धरे हुए सामान के साथ किसी अनाज के दाने और सेंकी हुई रोटी डालकर किसी 'बाजदार' (ढोलक, नगाड़ा अथवा अन्य वाद्ययंत्र बजाने वाले) को दे दिया जाता है। पितरों के निमित्त भी अलग से रोटी तथा अन्न के दानों का पूजन होता है और यह सामग्री कुल पुरोहित स्वयं यजमान के घर आ कर ले जाता है।[36]

हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों में किसान या ज़मींदार बिना कुछ खाए-पीए प्रातः ही खेतों में जाता है। वह अपने घर से चलते समय आटा या चावल और घी अपने साथ ले जाता है। वह खेत में पहुँच कर बिना नमक के चावल पकाता है अथवा फीकी रोटी बनाता है। यदि घर से गुड़ अथवा चीनी अपने साथ ले गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो तो वह खूब घी डाल कर हलवा तैयार करता है। फीकी रोटी में खूब घी चुपड़ता है और चावल हों तो उनमें ढेर-सा घी उंडेलता है।

वह खेत के किसी खण्ड-विशेष में बड़ी चट्टान के समीप चौड़े पत्थर पर धूप जला देता है और खेतों के बीचों बीच रोटियों के टुकड़े, चावल अथवा हलवा इधर-उधर बिखेर देता है। यह पंछियों का भोज्य पदार्थ होता है। इसका का कुछ अंश धूप के साथ चौड़े पत्थर पर भी रखा जाता है, जो कि भू-देवता हेतु होता है। जब तक पंछी (पक्षी), जिनमें अधिकतर कौए ही होते हैं, उड़ान भरते हुए नीचे उतर कर पत्थर पर धरे खाद्य पदार्थ चट नहीं कर जाते तब तक किसान अथवा ज़मींदार दूर किसी कोने में बैठा 'भूदेव' का नाम जपता रहता है। जब तक पक्षी आकर अपना भोजन नहीं कर लेते, उसका नाम-स्मरण का क्रम निरन्तर चलता रहता है। पक्षियों की इस भोजन-प्रक्रिया को 'पूछना' कहते हैं। पंछियों के 'पूँछ' चुकने पर ही किसान फ़सल में पहली बार दरान्ती लगाता है। घर में नई फ़सल आने के बाद उसे खेत के समीपस्थ किसी बड़ी चट्टान अथवा सपाट पत्थर पर पके हुए भोजन अथवा हलवे के रूप में भेंट किया जाता है। कुछ लोग अन्न को सत्तू के रूप में कूट-पीस कर भी इसे शिला पर धूप-बत्ती जलाकर भेंट करते हैं। यह शिला 'थन पाल' (खेतों का रक्षक) मानी जाती है। भोले किसान का यही दृढ़ विश्वास होता है कि इस 'थन पाल' के कारण घर में 'बरकत' (वृद्धि) होती है।

'थनपाल' को भी नमकीन पदार्थ भेंट करना पूर्ण निषिद्ध है। कुछ लोग इसे भेड़ अथवा बकरी की बलि भी चढ़ाते हैं। धनाभाव अथवा जीव-दया के कारण बहुत-से किसान पशु-बलि से हटकर नई फ़सल आने पर धान, जौ और गेहूँ की बालियाँ "थन पाल" को अर्पित करके धन-धान्य की वृद्धि हेतु आभार प्रदर्शित करते हैं।

कुल्लू (ज़िले) नगर के निकट गिलढ़थान में 'सेरी' का प्रतीक कोई चट्टान या विशिष्ट पत्थर नहीं होता। वहाँ लोग काफ़ी लम्बे पत्थर का आधा भाग भूमि में गाड़ देते हैं। यह कम चौड़ा और मोटा होता है। इसके ज़मीन से ऊपर दिखाई देने वाले आधे भाग को पहाड़ी भाषा में 'ओड़ी' कहा जाता है। 'ओड़ी' संस्कृत


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के 'अद्रि' शब्द का अपभ्रंश रूप प्रतीत होता हैं। 'ओड़ी' की पूजा भी 'थनपाल' के समान होती है और उसे नई फ़सल के अन्न से तैयार किया गया हलवा, सत्तू अथवा अन्य पका हुआ भोजन अर्पण किया जाता है। बहुत-सी जगह ज़मीन में स्वत: गड़े लंबे पत्थर को 'ओड़ी' मानकर उसकी 'भू-देवता' के रूप में पूजा की जाती है।[37]

# लोहड़ी

## शब्द-व्युत्पत्ति और नामकरण

'लोहड़ी' लोकपर्व भी सौर वर्ष के अनुसार मनाया जाता है। यह पौष मास की अंतिम रात्रि को संपन्न होता है। उस दिन ईस्वी सन् के अनुसार 13 जनवरी होती है और कभी-कभार 12 अथवा 14 जनवरी। 'लोहड़ी' शब्द की निरुक्ति विद्वानों और लोक संस्कृति के विशेषज्ञों ने अपने-अपने ढंग से की है, जो इस प्रकार है:

(क) भाई काह्न सिंह ने 'वैदिक धर्म' पत्रिका के आधार पर 'लोढ़ी' का मूल 'तिल+रोड़ी' में ढूँढा है। उनका विचार है कि यही 'तिलरोड़ी' शब्द कालांतर में रूपांतरित होकर 'लोढ़ी' बन गया।[38]

(ख) हमारा विचार है कि 'लोहड़ी' शब्द की व्युत्पत्ति 'लोंहड़ी' से हुई है। 'मुख-सुख' संबंधी भाषा-वैज्ञानिक नियम के अनुसार 'लोंहड़ी' की बिंदी (अनुस्वार) का लोप हो गया और 'ड' भी 'ड़' में बदल गया।

लोहड़ी जलाने के पश्चात धधकती अग्नि में मूँगफली और भुने हुए मक्का की फुल्लियाँ डालकर पूजा करने का रिवाज है। मूँगफली और मक्की को भूनने के लिए बड़ी कड़ाही की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु लोहड़ी का शगुन तब तक नहीं होता, जब तक लोहड़ी को रेवड़ियों की भेंट न चढ़ाई जाए। रेवड़ियाँ तिल तथा गुड़ (अथवा चीनी) मिला कर बनाई जाती हैं। तिल बहुत हल्के होते हैं। उनका रस और स्वाद कहीं भूनने से बिगड़ न जाए, इसलिए इस कार्य हेतु हल्के बर्तन तथा मद्धम आँच का उपयोग किया जाता है। पंजाब के मालवा क्षेत्र में तिल भूनने के लिए सपाट तले वाले लोहे के पात्र का उपयोग होता है। इस पात्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए मलवई बोली का शब्द है "लोंहडा" (लोह+भांड=लोहे का बर्तन)। किन्तु पंजाब के पश्चिमी भाग (पाकिस्तान) से आए हुए लोग इसे 'लोंहड़ी' कहते हैं।

निम्नलिखित उद्धरण द्वारा 'लोंहडी से 'लोहड़ी' शब्द के सहज निकास की सार्थकता प्रकट हो जाएगी:

रातीं तिल लोंहडी विच पाईए, माघ महीना आइआ ई।
जावीं दिओरा! तिल तूँ लिआवीं. माघ महीना लिआइआ ई।।

(गोपाल सिंघ: बारांमाह दिओर भाबी)

'लोंहडी' से उपर्युक्त भाषा वैज्ञानिक नियम के अधीन अस्तित्व में आए 'लोहड़ी' शब्द का प्रयोग पंजाब के लोक जीवन में चिरकाल से होता आ रहा है, जैसा कि नीचे लिखी पंक्तियों से स्पष्ट है:

पोह दे महीने एह पैंदे पाले।
जिन्हाँ घर लाल जी ओह करमाँ वाले।।
माघ दे महीने घर लोहड़ी आई।
जिन्हाँ घर लाल उन्हाँ तिल चौली पाई।।

ठिठुरन भरी सर्दी ने भी इस लोकपर्व को 'लोहड़ी' की संज्ञा प्रदान करने में अवश्य सहायता की है; जैसा कि इस त्योहार के लोकाचारों से ज्ञात होता है, यथा:

(1) "लोहड़ी" जलाने के लिए लकड़ी और गोहों (गोबर के उपलों) की आवश्यकता होती है। पूजा के लिए तिल और गुड़ से तैयार की गई रेवड़ियों के बिना काम नहीं चलता। इस प्रकार उपयोगी सामग्री के अक्षर-संकेतों को जोड़ने से "लोहड़ी" के नामकरण की सार्थकता सिद्ध हो जाती है:

ल = 'लकड़ी' का आद्याक्षर।
ओह = 'गोहा' (पंजाबी शब्द) के मध्याक्षर।
ड़ी = 'रेवड़ी' के अंतिम अक्षर।

इस प्रकार "ल+ओह+ड़ी" पदांशों को जोड़ने से बना शब्द है: "लोहड़ी"।

(2) लो (लीजिए)+ हरि (परमात्मा) – भगवान के नाम पर "लोहड़ी" को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रेवड़ी, मूँगफली आदि भेंट करते समय 'लो हरि' वचन ने ध्वनि-साम्य के कारण 'लोहड़ी' शब्द के प्रचलन में विशेष योगदान किया है।[39]

## "लोहड़ी" के अन्य लोक-प्रचलित नाम

(1) लोही – कई जगह 'लोहड़ी' की बजाय 'लोही' शब्द का प्रयोग भी होता है। हलवाई जिस कड़ाही में जलेबियाँ या इमरतियाँ उतारता है, उसे 'लोही' कहा जाता है। 'लोही' का तला गहरा नहीं, सपाट होता है ; किन्तु इस की शक्ल 'लोंहडे' जैसी होती है। लोंहडे का तला कड़ाही की तरह गहरा नहीं होता, बल्कि सपाट होता है और वह कड़ाही से छोटा ही होता है। संभव है पश्चिमी पंजाब के कुछ भागों में 'लोंहडी' की जगह 'लोही' शब्द का प्रयोग होता रहा हो और उसी के फलस्वरूप लोकपर्व के लिए भी 'लोही' शब्द का प्रयोग होता रहा हो। ऐसे प्रयोग के दो उदाहरण लोक काव्य से प्रस्तुत हैं:

(1) पोह पाले मैं साड़ीआँ, काबल करी बैरान
शाम जी! कदी मिलोगे आई, सहीआँ गावनि लोही दे चाई।

(हकूमति कृत बाराँमाह)

(i) चढ़दे पोह जु बरफ़ाँ पईआँ, गावन चाही लोही दे सईआँ

× ×

चढ़दे माह जु आई लोही, सहीआँ कीती न्हाई धोई।

(मुंसफ़ महिणी रचित बाराँमाह ढोलसम्मी)

(ii) लोई – ऐसा प्रतीत होता है कि पंजाब के कुछ भागों में 'लोही' के स्थान पर 'लोहड़ी' के लिए 'लोई' शब्द का भी प्रयोग होता रहा, यथा:

"ताजी चढ़े माघ दी लोई। इस राधे दा हाल न कोई"

(केसो गुणी कृत बारांमाह)

ऊन की बनी चादर को पंजाब में 'लोई' कहा जाता है। आज़ादी से पूर्व पश्चिमी पंजाब के स्यालकोट (अब पाकिस्तान) की "लोई" सर्दी से बचाव की दृष्टि से बहुत बढ़िया मानी जाती थी। 'लोंहड़ी' की रात्रि में प्रज्वलित अग्नि भी श्रद्धालुओं को ठिठुरती सर्दी से बचाती है। संभव है दोनों में गर्मायश (Warmth) के साम्य


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के कारण 'लोई' बहुलार्थक शब्द बन गया और इस का उपयोग ऊनी चादर एवं लोकपर्व दोनों के लिए एक समान होने लगा।

(iii) बाल - लोक भाषा ने 'लोहड़ी' को दो और नाम भी प्रदान किए हैं: "व्हे-माता" और "मोह माई"। आइए! इनके कारणों को भी सामाजिक रीति रिवाजों एवं दार्शनिक गुत्थियों से ढूँढ निकालें:

(अ) व्हे-माता : इस शब्द का निकास 'विधना' में निहित है। हिन्दू लोकपर्वों से संबद्ध लोक कथाओं में व्हे-माता (बेह-माता) का उल्लेख प्राय: होता है। संभव है इन कथात्मक तत्वों के कारण 'लोहड़ी' के लिए भी 'व्हे-माता' (बेह-माता) शब्द चला पड़ा हो। 'बेह-माता' के स्वरूप और प्रभाव को एक अंग्रेज़ समाज शास्त्री ने इस प्रकार उद्घाटित किया है:

"बेह-माता वह देवी है, जो बच्चे के जन्म के समय उस के भविष्य का लेखा-जोखा रखती है। इसकी इच्छा के अनुकूल इसे अग्नि न देने से मनुष्य पाप का भागी बनता है। 'बेह-माता ही 'बिधी-माता' अथवा 'विधना' (विधना) है।"[40]

परिवार में नए बालक के जन्म पर "लोहड़ी" पर्व का विशेष महत्व इसी विश्वास पर निर्भर दिखाई पड़ने के कारण इसके 'व्हे-माता' नाम की सार्थकता में शंका की गुंजायश नहीं रहती।

(आ) मोह-माई :-कई बार दुकानों और घरों के सामने खड़ी हुई लड़कियाँ "लोहड़ी" का दान माँगते हुए "लोहड़ी" के स्थान पर "मोह-माई" शब्द का प्रयोग करती हुई भी सुनी गई हैं। इस प्रकार का एक लोकगीत प्रस्तुत है:

मोह माई दे, मोह माई दे।
तेरी हट्टी विच कपाह।
नाले खट्ट ते नाले खाह।
तेरी हट्टी विच थम्मी।
तेरी वहुटी आवे लम्मी।
मोह माई दे के जाह।
दाढ़ी फुल्ल पवा के जाह।
दाढ़ी तेरी हरी भरी।
फुल्लां नाल जड़ी मढ़ी।।

संसार को मोहित करने वाली ब्रह्म की शक्ति को 'मोह माया' पुकारा


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। उसी की नक़ल पर 'मोह-माया' से 'मोह-माई' ('आ' का लोप एवं 'इ' से 'ई' की स्वर-दीर्घता के कारण) बन गया। दुकानदार की ओर प्रयुक्त इस शब्द का भाव है -- "वह व्यक्ति, जिसे माया (धन) से मोह है।" बच्चों की दिशा में इसका अर्थ है --"मोहिनी शक्ति" = वशीकरण मंत्र अथवा विद्या। वस्तुत: माया के मोह में जकड़े हुए कंजूस दुकानदार पर प्रशंसायुक्त उपर्युक्त शब्दों द्वारा जादू का-सा प्रभाव हो जाता है और वह अपनी तिजोरी खोलने के लिए लाचार हो जाता है। यही कारण है कि 'मोह-माई' शब्द ने 'लोहड़ी' का पर्याय बनने में देर नहीं लगाई।[41]

## लोहड़ी का आरंभ एंव विकास

'लोहड़ी' लोकपर्व के सूत्रपात एवं नामकरण की कोई अवधि निश्चित करना केवल अटकलबाज़ी होगी। फिर भी इसके मूल तत्व प्राचीन वैदिक यज्ञों में तलाश किए जा सकते हैं। साधारण जनता की दृष्टि में 'लोहड़ी' का अर्थ है --"मुहल्ले अथवा गाँव के लोगों का एकत्र होकर अग्नि-पूजा का महोत्सव।" श्री पिल्लै का विचार है कि अग्नि-पूजा वैदिक काल से भी बहुत पहले से चली आ रही है। मनु की संतान में अग्निधर नामक एक क़बीला था, जो कि अग्नि-पूजक था। अग्निधरों के पुरोहितों को औरव कहा जाता था। औरव ऋषियों का अस्तित्व 2500 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व के मध्य दृष्टिगोचर होता है।[42]

गायत्री मंत्र में वर्णित 'सविता यज्ञ' ही 'लोहड़ी' का आदि स्रोत माना जा सकता है। 'सविता' (सूर्यदेव) को समर्पित किए जाने वाली खरीफ़ की फ़सल के उपलक्ष्य में इस लोकपर्व का शुभारंभ हुआ होगा। 'दाने दाने पर मोहर' की पंजाबी कहावत को आज भी पंजाबी समाज प्रकृति देवी के वरदान स्वरूप प्राप्त तिहलन और ईख से बना गुड़-चीनी रेवड़ियों के रूप में भेंट करके आनंद विभोर हो उठता है। तपन के कारण सविता (सूर्य देव) के प्रतीक अग्निदेव अथवा ज्वाला माई के माध्यम से ख़रीफ़ (सावनी) की उपज सूर्य देव को भेंट की जाती है। सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप जब यज्ञ शब्द का अर्थ-विस्तार हो गया, तो उस श्रृंखला में पाँच यज्ञ और जुड़ गए। वे हैं ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, भूत यज्ञ, पितृ यज्ञ और अतिथि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ। लोहड़ी के लोकगीतों और परंपराओं में इन सभी के कुछ-न-कुछ तत्व अवश्य दृश्यमान होते हैं। लोहड़ी के अवसर पर विवाहिता बेटियों को दी जाने वाली सौग़ात-जिसे 'संधारा' कहा जाता है – दक्ष प्रजापति की पुत्री सती के अग्निदाह और उसके पति भगवान शिव रूपी दामाद के संतुष्टि हेतु उपहारों को प्रकट करती है।[44]

## सामग्री-संचय और पूजा-विधि

संपूर्ण उत्तर भारत में 'लोहड़ी' जलाने के लिए लकड़ियाँ-उपले जुटाने का कार्य त्योहार से 10-15 दिन पहले आरंभ हो जाता है। आज भले ही शहरों की तरह गाँवों में भी खाना पकाने के लिए मिट्टी का तेल और गैसों का प्रयोग बढ़ जाने के कारण लकड़ी-उपले का अभाव रहता हो, फिर भी लोकगीतों में अभी तक इन की भिक्षा-प्राप्ति की अभिलाषा पूर्ववत् बनी हुई है। घरों से लुप्त हो रहे लकड़ी और उपलों के उपलक्ष्य में अब लोहड़ी का भिक्षाटन करने वाले बालक नकद धन-राशि प्राप्त करके ही संतुष्ट हो जाते हैं। लोहड़ी जलाने के लिए आवश्यक यह सामग्री पर्व की संध्या को बाज़ार से ख़रीद लाते हैं और उनमें से एक बालक तारे खिलते ही दहनीय सामग्री को तीली दिखा देता है।

जैसे ही लोहड़ी जलने की सूचना गाँव अथवा शहर के मुहल्लों में पहुँचती है तो लोग अपनी-अपनी पीढ़ियाँ, मूढ़े और कुर्सियाँ लेकर पूजा-स्थल पर पहुँच कर अग्नि के चारों ओर बैठ जाते हैं। गाँवों में प्राय: एक-दो जगह खुले मैदान में 'लोहड़ी' जलाई जाती है और नगर में प्रत्येक मुहल्ले के लोग चौक में लोहड़ी जला लेते हैं। भोजनादि से निवृत्त होकर प्रत्येक परिवार के स्त्री-पुरुष घर के मुखिया और उसकी पत्नी के साथ आ कर लोहड़ी की परिक्रमा करते हैं।

परिक्रमा आरंभ करने से पूर्व प्रत्येक सदस्य को वयोवृद्धा अपने हाथ में पकड़ी हुई थाली से दो-चार रेवड़ियाँ, मूँगफलियाँ और मक्की के दाने थमा देती हैं। चार बार लोहड़ी की अग्नि के चारों ओर घूमते समय प्रत्येक प्राणी यह सामग्री 'लोहड़ी' को भेंट करता जाता है। गुड़, तिल, मूँगफली और मक्की की फुल्लियाँ आग में जलती हुई चिट-चिट करती हुई उसे और अधिक प्रज्वलित होने में सहायता करती


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इस प्रकार तिलहन तथा ईख की नई उपज ज्वाला माई के बहाने सूर्यदेव को भेंट करने का उपक्रम लगभग आधी रात तक निरंतर चलता रहता है।

बारी-बारी से विभिन्न परिवार आकर सामूहिक रूप में इसी प्रकार लोहड़ी-पूजन करते हैं और थाली में रखी शेष सामग्री पूजा-स्थल पर उपस्थित जन-समूह को एक-एक मुट्ठी भर कर बाँट देते हैं। फिर पूरा परिवार अपनी सुविधा के अनुसार वहीं विराजमान होकर आग भी तापता है और दूसरों के भोग-प्रसाद का रसास्वादन भी करता है। पुराने समय में जब घरों में लकड़ियों की बहुतायत होती थी तो मुहल्ले के संपन्न व्यक्ति लोहड़ी की अग्नि शांत होते देखकर उसमें वृक्षों के तने अपने निवास स्थान से लाकर डलवा देते थे। इसे पंजाबी बोली में 'खुण्ड' कहते हैं। यह खुंड अगले दिन, माघ संक्रांति की दोपहर तक, धीरे-धीरे सुलगता रहता था। धनाढ्य परिवारों में जब साल भर का बालन मँगवाया जाता था तो बच्चे अपने पिता को स्मरण करवा देते थे कि 'लोहड़ी' के लिए 'खुण्ड' मँगवाना न भूल जाएँ।

जिस घर में किसी लड़के का विवाह उस वर्ष में हुआ हो अथवा परिवार में नए बालक का जन्म हुआ हो, वे लोहड़ी पर विशेष धन-राशि दान करते हैं। वे बंधु-बाँधवों के घर अलग से रेवड़ी, ग़ज़क और तिल के लड्डू भी बाँटते हैं। लोहड़ी के अवसर पर नव विवाहिता बेटियों को विशेष उपहार भेजे जाते हैं, जिसे पंजाब में 'संधारा' कहा जाता है। हिमाचल प्रदेश में इसे 'तिहार' कहा जाता हैं। 'संधारे' या 'तिहार' में बेटी के ससुराल वालों के लिए कपड़े, रेवड़ियाँ, ग़ज़क और खिचड़ी भेजने का रिवाज चला आ रहा है। अब कुछ लोग अपनी हैसियत के अनुसार मिठाई, मेवे और सोने-चाँदी के आभूषण भी भेजने लगे हैं।

## लोहड़ी से संबद्ध कतिपय स्थानीय परंपराएँ

(क) हिमाचल प्रदेश में किसी शरारती लड़के के सिर तथा शरीर पर पत्ते बाँध दिए जाते हैं। उसे हिरन का रूप देने के लिए उसके सिर वाले पत्तों में पट्टी के साथ लकड़ी के दो टुकड़े लटका दिए जाते हैं, जो कि उसके सींगों का काम करते हैं। हिरननुमा इस लड़के के पैर में एक रस्सी बाँध दी जाती है, जिसका एक छोर तमाशबीन लड़के पकड़े रहते हैं। शाम होते ही इस हिरन के साथी ढोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दंतारे बजाते हुए नाचते-गाते इस हिरन के पीछे चलते रहते हैं। जिस घर के दरवाज़े पर 'हिरन' पहुँचता है, वहीं पर जा कर उसके साथी लड़के इस प्रकार लोक गीत सुना कर 'लोहड़ी' के दान की याचना करते हैं:

हारणा पई हारणा, बागीं चारणा।
हिरण मंगे तिलचौली दे ••• हारणा।
नाल गुड़े दी रोड़ी दे ••• हारणा।
दिन्नियाँ दुआन्नियाँ ••• हारणा।
कोठ्ठियाँ हत्थ पान्नियाँ ••• हारणा।
कोठ्ठियाँ लड़ेया पिस्सु ••• हारणा।
मैं धाड़-धाड़ रोन्निया ••• हारणा।
मैं धाड़-धाड़ प्टोनिया ••• हारणा।
पिलणा पई पिलणा रूपईया लई हिलणा।[45]

पंजाब के गुरदासपुर ज़िले के कई गाँवों में इसी प्रकार का हिरन बना लड़का मुहल्ले के घरों के दरवाज़े को लकड़ी के अपने सींगों से खटखटाता है। उसके साथियों के पास कोई वाद्ययंत्र नहीं होते। वे केवल इस प्रकार के गीत गाते हैं:

हरिनां भई हरिनां, दौआर नहीं करना।
हरिना मारी टक्कर, दे पड़ोपी शक्कर।
हरिना मारी शाल, दे पड़ोपी दाल।
हरिना मारी कुंजी, दे पड़ोपी मुंजी।
हरिना आइआ टांडिओ, गुड़ कड्डो कोरे भांडिओं।
हरिना आइआ पलाई दा, छप्पड़ कुल्ला टाई दा।
हरिना भाई हरिना, हुधार नहीं करना।

गुरदासपुर ज़िले के कई गाँवों में 'हरिना' (= हिरन) के स्थान पर 'हुंडु' शब्द का प्रयोग भी होता हैं और बालकों के उच्चारण एवं संबोधनों में भी थोड़ी-बहुत भिन्नता रहती है, यथा:

(क) हुंडु हुंडु प्हाड़िआ!
दे पड़ोपी शक्कर दी।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुंडु मारी टक्कर दी।

(ख) हुंड हुंड बानीआ!
दे पड़ोपी शक्कर दी।
हुंडु मारी टक्कर दी।[46]

'प्हाड़िआ' शब्द के प्रयोग और हिरननुमा बालक के भिक्षाटन वाले खेल से प्रतीत होता है कि यह लोकगीत हिमाचल प्रदेश से ही पंजाब के मैदानी क्षेत्रों में आया है। लोकगीतों की शब्दावली में मैदानी तथा पहाड़ी बालकों की निजी सूझ-बूझ की छाप स्वत: झलकती है।

(ख) पंजाब के फ़रीदकोट नगर में 'लोहड़ी' के लिए मुंज या सन की मोटी रस्सी में गीले उपलों को पिरो कर रख लिया जाता है। लोहड़ी तक ये उपले सूख जाते हैं और अलग-अलग घरों के लोग किसी चौक में पहुँच कर उपलों की ये मालाएँ एक-दूसरे पर टिकाते जाते हैं। इस प्रकार बने उपलों के ढेर को जलाकर "लोहड़ी" की अग्नि तैयार की जाती है। कौरपूर गाँव (ज़िला होशियारपुर, पंजाब) में सामूहिक लोहड़ी नहीं होती। वहाँ पर प्रत्येक परिवार अपने-अपने घर के आंगन में लकड़ी रहित केवल उपलों की 'लोहड़ी' जलाता है।

(ग) पंजाब के संगरूर ज़िले के धनौला क़स्बे में 'लोहड़ी' प्रज्वलित हो जाने के पश्चात् परिवार की प्रौढ़ाएँ और वृद्धाएँ धूनी में मुट्ठी भर-भर कर तिल डालती हैं। पाँच-सात बार तिल डालते समय हर बार इन तुकों का उच्चारण किया जाता है:

जिन्ने मेरे तिल लड़े, उन्ने मेरे पाप झड़े।
इस्सर आ दलीदर जा, दलीदर दा जड़ चुल्लहे पा।।

तदनंतर यही स्त्रियाँ मिलकर गीत गाती हैं, जिसमें अविवाहित पुत्र के विवाह की शुभ कामना अथवा पुत्रहीन बेटे के यहाँ बालक-जन्म की याचना 'लोहड़ी' से की जाती है। ज़िला संगरूर के कुछ अन्य भागों में 'लोहड़ी' को इसी प्रकार तिल-समर्पण करते हुए जेठानी की ओर से देवरानी को पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद इन शब्दों में दिया जाता है:


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्ने जठाणी तिल सुटेसी।

उन्ने दराणी पुत्त जणेसी।।

(घ) स्वाधीनता से पूर्व पंजाब के पश्चिमी भाग के झंग तथा लायलपुर (अब पाकिस्तान क्षेत्र) की स्त्रियाँ लोहड़ी की धधकती आग में अपने चर्खे फेंकना शुभ मानती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने प्रियतम के वियोग में दुखिया पत्नी किसी समय खाने-पकाने और कातने-पिरोने से उकता कर अपना चर्खा आग में फूँक बैठी होगी कि इतने में उसके पतिदेव पधार गए होंगे। अतएव यह अमंगलमय कार्य भी मंगलमय परंपरा के रूप में उभर आया होगा। चर्खे को प्रतीक बनाकर एक पंजाबी रमणी ने लोहड़ी मनाए जाने वाले पौष मास में अपने पति-विछोह की अतिशयता को इस प्रकार व्यक्त किया हैं।

मैनूँ पोह विच राताँ वड्डीआँ, मैं नाल दुखाँ दे कड्ढीआँ।

× ×

सुण पिआरे दिलबर यार वे, मिल जा मैंनूँ इक वार वे,
कोई तंद अवल्ली पै गई, मेरा कत्तण तुंबण लै गई।
दिन रोंदिआँ मैंनूँ बीतदा, एह डिट्ठा सुख प्रीत दा।

× ×

जे खाणा ए दुक्खा मुझ नूँ, मैं मूल न वरजिआ तुध नूँ।
पर खाईं ना अक्ख दा मास वे, अजे वेखण दी है आस वे।

(अज्ञात कवि विरचित 'बारांमोह वियोग')

(ङ) चंबा (हिमाचल प्रदेश) के गद्दी जन जाति के लोग 'लोहड़ी' के अवसर पर दूरस्थ स्थानों से चलकर अपने बिछुड़े हुए परिवारों से आकर मिलते हैं। घर पहुँचते ही उन्हें चावल और पाश की खिचड़ी खाने के लिए दी जाती है, जिसमें शुद्ध (देसी) घी भारी मात्रा में डाला जाता है।[47]

(च) जम्मू नगर की 'लोहड़ी' अपने-आप में बड़ी विचित्र होती हैं। बालक और तरुण रंग-बिरंगे कपड़े पहनकर घूमते हैं। ढोलक और बाँसुरी के


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुर संगीत के साथ भंगड़ा लोक नृत्य की टोलियाँ सारे नगर में दिखाई पड़ती हैं। सर्वाधिक दर्शनीय होता है बाँस की पतली खपच्चियों को काट कर और काग़ज़ के फूलों को जोड़ कर बनाया गया वह छज्जा, जो पंख फैलाए मोर के समान पायल डाले दिखाई पड़ता है। इस छज्जे का अर्द्धव्यास दो से चार फुट तक होता है। उधर आकाश में काली घटाएँ छाई रहती हैं और इधर लंबे-लंबे पंख फैलाए मोर के माध्यम से जम्मू के लोगों के मन-मयूर नाचने की परिकल्पना करते हैं।

कुछेक छज्जों को देवी-देवताओं के चित्रों से सजाया जाता हैं। उनके इर्द-गिर्द गोल गत्ते के टुकड़े को क़ाग़ज़ और पन्नी के फूलों से सजाया जाता है, मानो जम्मू-काश्मीर राज्य की जनता देवार्चन के रूप में पुष्प-अर्पण करके अभी-अभी लौटी हो। यहीं पर कुछ छज्जों में सूर्योदय का दृश्य भी प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें से सहस्रों चमकती किरणों को रंग-बिरंगी चमकदार पन्नी के टुकड़ों द्वारा दर्शाया जाता है। अगले दिन, जो कि मकर-संक्रांति है और सूर्य देव उत्तरायण होने वाले हैं। एक लोक कवि की काव्य-पंक्तियाँ इस प्राकृतिक दृश्य और लोक-कल्पना को समेटती हुई दिखाई पड़ती हैं, यथा:

चढ़िआ माघ माँह सुख साजे, सूरज उत्तराखंड बिराजे।

× ×

बजण भाँत भाँत दे बाजे, बार झूलण जिह दरवाजे असु अपार।

(बीर सिंह कृत बारांमाह गुरु गोबिंद सिंह)

## लोहड़ी के खाद्य-पदार्थ

तिलहन और ईख की उपज दिसंबर-जनवरी में होती हैं। मौसमी चीज़ों का उपयोग स्वभावत: होता ही है। सर्दी का मौसम खाने-पीने का होता है, जबकि गरिष्ठ से गरिष्ठ पदार्थ भी हज़्म हो जाता है। इसी लिए लोहड़ी के दिन सरसों का साग, मक्की की रोटी और गन्ने के रस की खीर ग्रामीण और नगर के प्रत्येक घर में बनाना शुभ माना जाता है। एक लोक कवि ने लोहड़ी के इन खाद्य-पदार्थों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उल्लेख इस प्रकार किया है:

आइआ पोह ककरीला
कीता सभना कोई हीला
रलाइआँ होरहां निक्क सुक्क
असाँ तिल्ह ही लए कुट्ट
भरे लेफ ते तलाईआँ
लोकाँ भट्ठीआँ मघाईआँ।

× ×

हुण आ गिआ माघ
धरती मात पई जाग
होइआ गंदलाँ दा साग
आइआ चेहरिआँ ते भाग
कड्ढे हल डंग चउ
खाधा तत्ता तत्ता गुड़
रज्ज रज्ज पीता रहु।

× ×

घुस-मुसे 'खाओ-पीओ' दे
हे - हो - हा - हे - हो - हा,
गए किण मिण करदिआँ ढोला
हे - हो - हा।

(गिआनी गुरदित्त सिंघ रचित बारांमाह किसानाँ दा)

गुरदासपुर नगर और इसी ज़िले कें गाँवों में मैदे से एक विशेष मिष्टान्न तैयार किया जाता है; खजूर की शक्ल होने के कारण इस पकवान को 'खजूर' ही कहते हैं। संधारे में बेटी को खजूरें भेजना अनिवार्य होता है। तिल और गुड़ से बनी रेवड़ियाँ, गज़क और तिलुए (तिल के लड्डू) के सेवन तथा महत्व के बारे में एक पंजाबी कवि ने लिखा है:


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चढ़िआ पोह पाला हुण देवर, गरम बनाईआँ पिन्नीआँ वे।
होर मसाला थोड़ा पाईए, घिओ पाईए अणमिणिआ वे।
रातीं तिल लोंहडी विच पाईए, माघ महीना आइआ ई।
जावीं दिओरा! तिल तूँ लिआवीं माघ महातम लिआइआ ई।
तिल ही खाणा, तिल ही पीणा, तिल ही दान कराइआ ई।
गोपाल सिंघ तिल न्हाईए, तिल ही हेठ विछाइआ ई।

(बारांमाह दिउर भाभी)

## लोहड़ी के हास्य-विनोद

बालक और किशोर लोहड़ी की धधकती आग में गन्ने डाल देते हैं। जब उनका रस गर्म हो जाता है तो वे उसे ज़मीन पर झटक-पटक करते हैं, जिससे छोटे से पटाखे जैसी आवाज़ होने से लोग हँस पड़ते हैं। कुछ लोग गन्ने को गर्म करके चूसते भी हैं। कहते हैं कि भुना हुआ गन्ना खाँसी के लिए लाभदायक होता है।[48]

पटियाला नगर में कुछ वर्षों पूर्व कंजूस 'टाल (लकड़ी बेचने वाले) मालिक' से लोहड़ी के लिए लकड़ियाँ न मिलने पर बालक लोहड़ी की रात्रि को उसकी दुकान लूटने चले जाते थे, जिसे 'धाड़ा मारना' कहा जाता था। कई बार वे शरारती बालक सूम प्रकृति के दुकानदारों के तख्तपोश उठाकर भी लोहड़ी में झोंक देते थे। किस मुहल्ले की 'लोहड़ी' अधिक ऊँची है, यह देखने के लिए लड़कों की टोलियाँ आस-पास के मुहल्लों में जाया करती हैं। कुछ शरारती बालक दूसरे मुहल्लों की जलती हुई लोहड़ी में से एकाध अधजली लकड़ी खींच लाते हैं, जिसे 'लोहड़ी ब्याहना' कहा जाता है। यह रिवाज संभवत: आश्वलायन गृह्य सूत्र (1/8/5) के उस कथन पर आधारित है कि विवाह की वेदि की अग्नि बेटी की विदायगी के पश्चात् नवयुगल के साथ ही लड़की के ससुराल ले जाई जाए। हँसी-विनोद में बदली यही 'लोहड़ी ब्याहने' की अर्वाचीन परंपरा विपक्ष वालों के स्वाभिमान के लिए कई बार चुनौती का कारण बन जाती है। फलत: हँसी-मज़ाक की बात थुक्का-फ़ज़ीहत, छीना-झपटी और हाथा-पाई तक बढ़ जाती है।[49]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमाचल प्रदेश में 'लोहड़ी' की रात्रि को 'मुसाहरों' (विशिष्ट आकृतियों वाली मशालें) जलाने-बुझाने की प्रतियोगिताएँ बहुत-से स्थानों पर आयोजित होती हैं। किन्तु चंबा नगर का 'मुसाहरों का खेल' अत्यन्त दर्शनीय होता है। प्रतियोगिता में भाग लेने वाली प्रत्येक टोली को 'मढ़ी' कहा जाता है और इनकी संख्या एक दर्जन से भी अधिक होती है। 'मुसाहरा' दस-बारह फुट ऊँची मशाल होती है, जिसे चार बलिष्ठ पुरुष उठाकर चलते हैं और हाथों में लाठियाँ थामे दस व्यक्ति भी रक्षा हेतु उनके साथ-साथ रहते हैं।

ढोल, नगाड़े और रणसिंहा बजाते हुए वादकगणों के पीछे मुहल्ले के लोग होते हैं और उसके पीछे 'मुसाहरा' उठाने वाले और उनके रक्षक रहते हैं। इस प्रकार यह जुलूस चौगान मैदान की ओर बढ़ता है। रास्ते में दूसरे मुहल्लों की मढ़ियों से टकरातीं तथा संधि (मिलणी) करती सभी 'मढ़ियाँ' चौगान में एकत्र हो जाती हैं। कुछ ही समय के बाद राजमहल से 'राजा का मुसाहरा' आ जाता है, जिसका स्वागत चौगान में विद्यमान अन्य मढ़ियों वाले करते हैं।

चंबा की 'लोहड़ी' का यह आवश्यक नियम है कि प्रत्येक 'मढ़ी' अपने मुसाहरे को चौगान में तीन बार डुबोएगी। वस्तुतः एक मुसाहरे का दूसरे मुसाहरे को बुझाने तथा जलाने का खेल ही 'डुबोना' कहलाता है। राजा के मुसाहरे की इस क्रिया का विरोध नहीं किया जाता और उसे उठाने वाले मशाल को तीन बार बुझा कर जला लेते हैं। किन्तु अन्य मढ़ियाँ आपस में एक-दूसरे का विरोध करती हुई प्रतिद्वन्द्वियों को नीचा दिखाने पर तुली रहती हैं। दोनों पक्ष अपनी सफलता के लिए जी-जान से कोशिश करते हैं। कई बार ज़ोर-ज़बर्दस्ती के कारण संघर्ष बहुत बढ़ जाता हैं। मुसाहरों के इस खेल के बारे में हिमाचली संस्कृति के एक विशेषज्ञ का विवरण इस दृश्य को पूर्णतया स्पष्ट करने हेतु प्रस्तुत है:

"चम्बा नगर के प्रत्येक मुहल्ले में एक-एक मढ़ी (दल अथवा टोली) है और कुल चौदह मढ़ियाँ लोहड़ी मनाने की तैयारी में कई दिन पूर्व से तत्पर रहती हैं। प्रत्येक मढ़ी आस-पास के गाँवों में जा कर लकड़ी, चावल, मक्की, दाल, घी आदि इकट्ठा करती है। सभी मढ़ियों के पास अपने नगारे-ढोल आदि भी होते हैं। लोहड़ी पर्व से तीन-चार दिन पहले से इन मढ़ियों पर रात भर नाच-गाने और खाने के


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यक्रम आयोजित होते हैं। लोहड़ी की रात्रि को विशेष प्रकार की बड़ी-बड़ी मशालें (मुसाहरा) सभी मढ़ियों में तैयार किया जाता हैं।••• विभिन्न मुहल्लों की मढ़ी वाले अपने मुसाहरे के जलते सिर चौगान की मढ़ी में डुबोने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु चौगान मढ़ी वाले उनसे मुसाहरे छीन कर अपनी जलती मढ़ी में फेंकने की कोशिश करते हैं। खेल-खेल में यह संघर्ष पूरी लड़ाई का रूप धारण कर लेता है। रात्रि के अंधकार में जलती मसालों का बाक़ायदा युद्ध होता है। मशालों के बुझने पर उनके डंडों से लड़ाई लड़ी जाती हैं। आखिरकार 'राज-मुसाहरे' के अलावा शेष मुसाहरे छीन कर जला दिए जाते हैं। जो मढ़ी सभी मढ़ियों में अपना मुसाहरा डुबाकर सकुशल अपनी मढ़ी में लौट आती हैं, वह विजयी घोषित होती है।

लोहड़ी का मुसाहरा खेल, मनुष्य के अद्भुत साहस और शौर्य का प्रतीक है। "मढ़ी" शब्द राजस्थान में प्राय: छोटे-छोटे क़िलों के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अत: इस परपंरा को राजपूतों के शौर्य एवं अभिमान से संबंधित माना जा सकता है।"[50]

किन्नौर और चंबा ज़िले के कुछ भागों में इस पर्व को 'कोली-री-दियाली' कहा जाता है। इसी उपलक्ष्य में पौष के अंत तथा माघ के आरंभ में आठ-दस दिन तक लोग अपने घरों से जलती हुई मशालें लेकर गाँव के एक प्रमुख स्थान पर एकत्र होते हैं। फिर वहाँ लकड़ी के ढेर में आग लगा कर देवी हिडिम्बा के नाम पर अश्लील गीत गाते हैं।

## पंजाब में "लोहड़ी" का एकमात्र मेला

हिमाचल प्रदेश की तरह पंजाब में "लोहड़ी" के अवसर पर बड़े मेले सर्वत्र नहीं लगते। वहाँ पर गाँव अथवा नगर के मुहल्ले की सामूहिक 'लोहड़ी' का पूजन ही होता है। किन्तु रोपड़ नगर से लगभग 15 किलोमीटर की दूरी पर 'बिन्दरख' नामक गाँव में लोहड़ी का मेला भरता हैं। कहते हैं कि यहाँ पर दसवें सिक्ख गुरु श्री गोविन्द सिंह जी पधारे थे और उसी पावन स्मृति में एक गुरुद्वारा विद्यमान है।

इस गाँव की "लोहड़ी" अग्नि-प्रज्वलन के कारण नहीं, बल्कि वृक्षों की रक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेतु प्रचलित लोक कथाओं के फलस्वरूप प्रसिद्ध है। बिंदरख का यह मेला 'लोहड़ी' से दो दिन पहले आरंभ हो जाता है और लोहड़ी के दिन श्री गुरु ग्रंथ साहिब के अखंड पाठ के भोग के साथ समाप्त होता है। इसी गाँव में विद्यमान बाबा अमरनाथ की समाधि और बाबा खिताब सिंह का डेरा भी मेले के समय रौनक़ की जगह बन जाते हैं।

इन दोनों स्थलों के संबंध में एक दंत कथा है। सन् 1917 में रोपड़ ज़िले के सिस्वाँ गाँव के एक साहूकार ने बिंदरख के गाँव वालों के सामने यह प्रस्ताव रखा कि यदि वे अपने गाँव में एक कुआँ खुदवाना चाहें तो खुदवाई का सारा ख़र्च वह अदा करेगा। लोगों ने यह पेशकश मानकर गाँव के बाहर एक जंगल में खुदाई आरंभ कर दी। खोदते समय एक मोटी गेली (पेड़ की जड़) की आवश्यकता पड़ी। कुआँ खोदने वालों ने पास के एक वृक्ष की मोटी शाखा काट ली और कुआँ खोदने लगे। कुआँ काफ़ी गहरा खुद चुका था। एक आदमी ग़लती से गेली पर बैठ गया। किन्तु वह बीच से टूट गई और वह व्यक्ति धड़ाम से कुएँ में जा गिरा, फिर भी उसे कोई चोट न आई।

जैसे ही वह व्यक्ति कुएँ में गिरा तो नीचे से आवाज़ आई कि तुम लोगों ने मेरी झोंपड़ी की लकड़ी काटी थी, उसी का यह परिणाम है। यदि तुम लोग अपना भला चाहते हो तो पहले मेरी समाधि बनवाओ, फिर कुएँ की खुदाई पूरी करना। तभी खोदने वालों को ध्यान आया कि खुदाई का काम शुरू करते समय उन्हें उस स्थल पर कुछ जलते हुए कोयले और राख दिखाई पड़ी थी। गाँव के वयोवृद्धों को स्मरण हो आया कि वहाँ तो बाबा अमरनाथ का डेरा था, जो कि एक सिद्ध पुरुष थे और सदा धूनी रमाए रहते थे। अत: जंगल में जिस पेड़ से लकड़ी काटी गई थी, उसी के पास बाबा अमरनाथ की समाधि बनवा दी गई। यह कार्य सौर वर्ष के पौष मास के अंतिम दिन संपन्न हुआ था। इसी लिए "लोहड़ी" के साथ यह स्थानीय चामत्कारिक घटना जुड़ जाने के कारण समाधि पर मेला लगता है।

ढोर पालने वालों की इस समाधि के प्रति विशेष आस्था है। लोक विश्वास है कि यदि किसी पशु का गर्भपात हो जाए या उसका बच्चा पैदा होने के कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय बाद मर जाए तो वे लोग यहाँ आकर मनौती करते हैं। बाबा अमरनाथ की समाधि पर बनाई गई रस्सी वे पशु के गले में बाँध देते हैं। इस प्रकार पशु के संतान होने और बचने भी लगती है। मन्नत पूरी होने पर वे यहाँ पर आकर ब्याए हुए पशु का दूध-घी समाधि को अर्पित करते हैं। ऐसे श्रद्धालुओं में स्त्रियों की भीड़ अधिक दिखाई पड़ती है।[51]

## भावात्मक समन्वय का लोकपर्व

लोहड़ी-याचना संबंधी लड़कों तथा लड़कियों के गीतों में पर्याप्त अन्तर रहता हैं। लड़कों के अधिकांश लोकगीत कथा-परक होते हैं, जो सदियों से चले आ रहे हैं। इनमें स्थानीय बोली का प्रभाव ही कुछ पार्थक्य प्रकट करता है, अन्यथा लोक गीत का ताना-बाना और मूल भाव एक ही रहता है। दुल्ला भट्टी संबंधी लोकगीत उत्तर भारत के मैदानी एवं पहाड़ी इलाकों में एक-समान लोक प्रिय है। लोक गीत का नायक दुल्ला भट्टी एक मुसलमान और मुग़ल बादशाह अकबर का समकालीन था। दुल्ला भट्टी ने अपने इलाक़े के कामुक और अत्याचारी ज़मींदारों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया था। उसने एक ज़मींदार की वासनामयी कुप्रवृति से बचाने के लिए दो ब्राह्मण कन्याओं का धर्म पिता बन कर जंगल में आग जलाई और सुंदर तथा मुंदर नामक ब्राह्मण पुत्रियों का विवाह रचाया था। बालकगण इस उदारता भरपूर प्रसंग को अपने शब्दों में काव्य-निबद्ध करके प्रस्तुत करते हैं। मैदानी इलाक़ों के इस लोकगीत की कड़ियाँ इस प्रकार हैं:

| | |
|---|---|
| टोली का नेता | अन्य साथी |
| सुंदर मुंदरीए | हो |
| तेरा कौण विचारा | हो |
| दुल्ला भट्टी वाला | हो |
| दुल्ले ने धी विआही | हो |
| सेर शक्कर आई | हो |


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुड़ी दे बोझे पाई हो
कुड़ी ता लाल पटाका हो
कुड़ी दा सालू पाटा हो
कुड़ी दा जीवे चाचा हो
चाचा चूरी कुट्टी हो
ज़िमींदाराँ लुट्टी हो
जिमींदार सदाऊ हो
गिन गिन षोल्ले लाऊ हो
इक पोला खुस गिआ हो
ज़िमींदार वहुटी लै के नस्स गिआ हो-हो-हो।

इसी लोकगीत का पहाड़ी रूपांतर देखिए :

सुंदर मुंदरीऐ हो,
तेरा कुण बचारा हो,
दुल्ला भट्टी बाला हो,
दुल्लै ने धी ब्याही हो,
सेर सक्कर पाइ हो,
कुड़ीए दे वोज्जे पाई हो,
कुड़ीए दा सालू पाट्टा हो।
सालू कुण समेटे हो।
चाचू गाली देसै हो,
सुंदर मुंदरीऐ हो,
तेरा कुण बचारा हो,
चाचूए चूरी कुट्टी हो,
ज़िमीदारी लुट्टी हो
ज़िमीदार सद्धाए हो।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिण-गिण हार पोआए हो। .....सुंदर बचारा हो

लड़कियाँ जिस दरवाज़े पर पहुँचती हैं, उस परिवार के कँवारे बेटे की शादी और विवाहिता बहू को 'भाभी' मानकर उसके पुत्रवती होने की शुभ कामनाएँ अपने लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। एक लोकगीत की वियोगिनी नायिका तो पति-विछोह को भूल कर गा-बजा कर दूसरों की लोहड़ी में भरपूर योगदान करती हुई दृष्टिगोचर होती है, यथा:

लोहड़ी वाली रात लोकी बालदे ने लोहड़ीआँ
साडी वारी आई, अक्खां सजनां ने मोड़ीआँ
लोहड़ी माता दिन्दी ए, पुत्तराँ दीआँ जोड़ीआँ
जिह्दे घर हुंदे ने, वंडदे ने लोहड़ीआँ। ••• लोहड़ी वाली
रात नूँ मैं ढोलकी ते चुमरा बजाया सी।
सजनां ते दोस्तां नूँ आप बुलाया सी।
रल मिल लोहड़ी दा सगन मनाया सी। ••• लोहड़ी वाली
पुत्तरां दा विआह होवे तांही लोहड़ी पाँवदे
झट पट फेरे लै के मिट्ठा मुँह करांवदे
रल मिल सारे जने भंगड़ा हैं पाँवदे। ••• लोहड़ी वाली

हिमाचल प्रदेश की कोई वियोगिनी पुत्रवधू पति के न पहुँचने के कारण सास-ननद के उलाहनों से परेशान होकर सभी के साथ 'लोहड़ी' की खुशियाँ नहीं बाँट पाती। तभी इस लोकगीत के रूपांतर में उस की हृदय की टीस झलकती है।

लोह्ड़िया आली रात लोकी गांदे लोहड़िया।
साहड़ी कैद्दी लोहड़ी, हाक्खीं सजणै मोड़ियां।
दूर ग्राएं च ढ़ोलकी बज्जदी,
तिस दी ऊयाज मेरे दिले च रड़कदी। ••• लोह्डिया आली

फिर भी जिस घर में 'सुभे दा कम्म' (शुभ कार्य) संपन्न हुआ हो, पहाड़ी प्रदेश में वहाँ 'चोरस गीठ्ठा' (चौरस आकार का अग्निकुंड) खोदते हैं और उसे लीप पोत कर सजाते और अग्नि जलाते हैं। अग्नि जलाने के बाद लोक गीत गायकों


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भुने हुए मक्की के भुट्टे, तिल चौली (तिल-चावल) तथा रेवड़ियाँ भेंट किए जाते हैं। 'लोहड़ी' के अवसर पर लकड़ी, उपलों एवं धन-राशि द्वारा आनंदमय वातावरण-निर्माण में सभी का योगदान होता है। अत: सभी लोग अपने घर की ओर विदा होते समय अग्नि के ढेर से दो चार कोयले ले जाते हैं। लोहड़ी का यह 'प्रसाद' परस्पर साँझ की गरिमा को और बढ़ा देता है।

राजस्थान में "लोहड़ी" को "सरसों की कटाई" का त्योहार कहा जाता है। किन्तु राजस्थान के मूल निवासी इसे अग्नि-पूजा के रूप में नहीं मनाते। राजस्थान में स्थायी अथवा नौकरी-चाकरी के कारण बसे पंजाबी एवं सिंधी परिवार इसे परंपरागत रूप में अपनी-अपनी बस्तियों में मनाते हैं। इस अवसर पर चौराहों पर अग्नि-परिक्रमा के बाद रेवड़ी, मूँगफली तथा मक्की के भुने हुए दाने बाँटे जाते हैं। दो-एक लोहड़ी के लोकगीत भी तभी गा लिए जाते हैं। जिस परिवार में वर्ष में बेटे का विवाह हुआ हो अथवा नए बालक का जन्म हुआ हो, वे लोग बंधु-बांधवों को रेवड़ी, गज़क, तिलवों का उपहार भेजते हैं। किसी राजस्थानी बस्ती में अकेले-दुकेले बसे पंजाबी परिवार गत्ते और पुराने अख्बार जलाकर 'लोहड़ी' का शगुन मना लेते हैं।

## मकर-संक्रांति

राजस्थानी परम्पराएँ : दान एवं सम्मान का लोकपर्व

राजस्थान में लोहड़ी की अपेक्षा अगली सुबह, माघ मास की पहली तारीख को मनाए जानें वाले 'मकर संक्रांति' लोकपर्व का विशेष महत्व है। राजस्थान के विद्वान इसे भी कृषि-पर्व ही मानते हैं, यथा:

"सूर्य की उत्तर गति होने पर उत्तरी गोलार्द्ध में आने के संक्रमण-काल का दिन 'मकर-संक्रांति' है। यद्यपि अब पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते, किन्तु कहते हैं किसी समय में संवत्सर का प्रारंभ ही इस दिन से माना जाता था। शीतकालीन नया धान्य इसी समय आता है। यज्ञीय धान्य तिल की इस पर्व में प्रधानता रहती है••• मकर-संक्रमण ऋतु बदलने की मध्य श्रेणी है।"[52]

कड़ाके की सर्दी के बावजूद इस दिन तीर्थ-स्नान के पश्चात् दान-पुण्य का विधान है। एतदर्थ राजस्थान के विद्वानों का विचार है:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मकर-संक्रमण में तीर्थ-स्नान का बहुत महत्व माना जाता रहा है। इस दिन प्रातः काल स्नान कर अग्नि में तिल द्वारा यज्ञ करने का भी विधान है। ••• मकर-संक्रमण काल में दान-कार्य अत्यधिक प्रशस्त माना जाता है। इस समय तिल, वस्त्र, पंचांग के दान प्रमुख रूप में किए जाते हैं। इस दिन धर्मराज के पूजन एवं कथा कहने का भी विधान है। यम की शरण में यातनाएँ नहीं सहनी पड़ें, इसके पीछे यही भावना निहित है। यह भी कहा जाता है कि यदि उत्तरायण में शरीर छोड़ें तो सूर्य-गति होती है, मोक्ष प्राप्त होता हैं।"[53]

इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर बहुत से राजस्थानी परिवार धर्मराज की पूजा करते हैं। कुछ परिवारों में धर्मराज का उजारण (उद्यापन) भी किया जाता है। एतदर्थ ब्राह्मण यजमान के घर सपत्नीक पधार कर यमराज की कथा सुनाता है और पूजा-अर्चना करवाता है। तदुपरांत उजारण करने वाला व्यक्ति ब्राह्मण एंव ब्राह्मणी को भोजन करवाता है। विदा होते समय दक्षिणा के रूप में पंडित जी को पूरी पोशाक, लोटा-डोर, छतरी, खड़ाऊँ, पाँच बर्तन, माला, गऊमुखी (फेरने वाली माला की थैली), बाँस की छाबड़ी, ऊनी और सूती आसन, चाँदी का दरवाज़ा, चाँदी की सीढ़ी, चाँदी की बनी हुई धर्मराज की मूर्ति, तेरह सेर अनाज, तेरह लड्डू और धर्मराज की कथा की एक पुस्तक भेंट की जाती है। पंडिताइन जी के लिए पूरी पोशाक, चप्पल और पाँच बर्तनों के अतिरिक्त सिन्दूर, बिंदी, मेहन्दी, काजल, चूड़ा एवं बिछुए भी रखे जाते हैं। "पूरी पोशाक में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि पंडित जी तथा पंडिताइन जी दोनों को पाँच-पाँच कपड़े अवश्य दिए जाएँ।

मकर संक्रांति पर सास, ससुर एवं देवर-ननद को दान देने का भी रिवाज है। इस दिन नव विवाहिता के पीहर से ससुराल के सभी सदस्यों के लिए उपहार भेजे जाते हैं। इन उपहारों में सभी के लिए कपड़ों के अतिरिक्त स्त्रियों के लिए कोई-न-कोई गहना भी आता है। मिष्टान्न में तिल के लड्डू, घेवर तथा मीठी फीणी भेजने का रिवाज भी है। पुत्रवधू अपने माता-पिता अथवा भाई द्वारा लाया गया यह सारा सामान स्वयं सास, ससुर और ननद को भेंट करती है। इस अवसर पर देवर को 'खोपरे की पाली' दी जाती है। आधे नारियल में शक्कर, लड्डू और घेवर भर कर देना ही 'खोपरे की पाली' कहलाता है। पत्नी अपने पति को वस्त्रों


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के अलावा पेड़े, जलेबी और पान के साथ कुछ रुपए रखकर भेंट करती है।

अगले वर्षों में बहुएँ सुहाग कुंडा 'मनस' कर सास को अर्पण करती हैं। मिट्टी के एक कुंडे में चूड़ा, बिछिए, सिंदूर, मेहन्दी, गुड़, घी, मौली, तिल के लड्डू और फीणी रखे जाते हैं। इसी सामग्री को 'सुहाग कुंडा कलपना' कहते हैं। इसके साथ ही स्टील अथवा किसी अन्य धातु के तसले में चावल और मूँग की दाल पर ब्लाउज बनवाने के लिए कपड़ा भी रखकर भेंट किया जाता है। यदि सास विधवा हो गई हो अथवा उसका देहावसान हो गया हो तो 'सुहाग कुंडा' जेठानी को देने की प्रथा है। यदि जेठानी न हो तो परिवार की ऐसी स्त्री को भेंट कर दिया जाता है, जो सधवा हो और उसका पति अवस्था में 'कलप' करने वाली महिला के पति से अवस्था में बड़ा हो।

शेखावटी क्षेत्र में सास-ससुर को 'सूती-सेज' जगाने का आयोजन पुत्रवधू द्वारा जीवन में एक बार अवश्यमेव किया जाता है। इस अवसर पर वधू को मायके से सास-ससुर के लिए पाँच पाँच कपड़े, फल, मिठाई आदि प्राप्त होते हैं। सास के लिए कोई-न-कोई आभूषण भी इस उपहार में अवश्य रखा जाता है। परिपाटी के अनुसार बहू मकर संक्रांति को प्रातः उठकर स्नान करने के बाद सास-ससुर को जगाकर पाँचों कपड़े और कुछ धन-राशि भेंट करती है। सास-ससुर प्रसन्न होकर पुत्रवधू को आशीर्वाद देते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ समय बाद सास को "सीढ़ी चढ़ाने और उतारने" की रस्म निभाई जाती है। ज्यों-ज्यों सास पहली सीढ़ी से आगे की सीढ़ियों पर पैर धरती है तो पुत्रवधू हर बार प्रत्येक सीढ़ी पर दो-एक रुपए रखती जाती है और सास ऊपर जाते समय वह धन-राशि उठा लेती है। जब सास सब से ऊपर की सीढ़ी से नीचे की ओर आती है, तब प्रत्येक सीढ़ी पर एक घेवर और श्रद्धानुसार धन-राशि पुत्रवधू की ओर से रख दी जाती है। इस प्रकार सासू-अम्माँ घेवरों और रुपयों से झोली भरकर नीचे उतरती है। यदि "सूती-सेज जगाने" के समय सास को पाँच कपड़े भेंट न किए गए हों तो इस समय इनके साथ कुछ बर्तन और रुपए अर्पण किए जाते हैं। इस शुभ अवसर पर निकटस्थ संबंधी भी सास जी का सम्मान समारोह देखने के लिए एकत्र होते हैं और स्त्रियाँ मंगलगीत गाती हैं।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकतर स्त्रियाँ इस दिन प्रात: स्नान के पश्चात् मिठाई, रेवड़ी और फल आदि दो-चार चीज़ें अलग-अलग तेरह कटोरियों या छोटी रकाबियों में कलप कर और जल की चूली दे कर रखती हैं। यह सामान तेरह सधवा स्त्रियों को ही भेंट किया जाता है। घर के आसपास रहने वाले परिजनों के अतिरिक्त कई बार यह नगर अथवा ग्राम से बाहर रहने वाली अपनी उम्र से बड़ी महिलाओं को भेजा जाता हैं। तेरह की यह गिनती साल भर में पड़ने वाली बारह संक्रांतियों में पुरुषोत्तम (अधिक मास; मलमास; लौंद) मास जोड़ लेने के कारण ही निश्चित की जाती है। किन्तु कुछ स्त्रियाँ चौदह जगह ये वस्तुएँ मनसती है, क्योंकि 'लोहड़ी' 13 जनवरी को होती है और उस हिसाब से मकर-संक्रांति 14 जनवरी को मानी जाती है। इस दिन के भोज्य पदार्थों के बारे में एक विदुषी का कथन है : "राजस्थान में इस दिन दोपहर के भोजन में तिल के लड्डू, पूए, चौले की दाल के पकौड़े, खीर, खिचड़ी प्रमुख रूप से बनाए जाते हैं और इन वस्तुओं का आस्वादन करते हुए छतों पर पंतग उड़ाने का आनंद लिया जाता है। बेटी तथा दामाद को भोजन के लिए आंमत्रित किया जाता है और उन्हें भी लड्डू, रुपए, सुहाग की चीज़ें दी जाती हैं।"[54]

## अवाड़ा लुटाना एवं पतंगबाज़ी

राजस्थान के उदयपुर ज़िले की वल्लभनगर तहसील में 'अवाड़ा लुटाने की प्रथा प्रचलित है। वस्तुत: 'अवाड़ा' शब्द कुम्हार के 'आवे' (मिट्टी के बर्तन पकाने वाला अग्नि-स्थल) से बना हैं। इस रीति को निभाने के लिए फ़सल के समय कुम्हार से अनुबंध कर लिया जाता था कि उसे जो अनाज दिया जाएगा, उसी अनुपात में उसे खेतिहर परिवार को आवश्यकतानुसार बर्तन देने पड़ेंगे। लोहार तथा सुथार से भी यही मौखिक अनुबंध कर लिया जाता था।

आजकल मकर संक्रांति से एक माह पूर्व प्रजापत (कुम्हार) को 'आवाड़ा लुटाने' के बारे में बता दिया जाता है। वह अपने यजमान की ज़रूरत के अनुसार मिट्टी का तवा, ढक्कन, हांडी, मटकी, बुझारा आदि आवे में पका रखता है। मकर संक्रांति को सूर्योदय से पहले 'अवाड़ा लुटाने' का इच्छुक परिवार अपने-अपने घर से कुछ दूर तक हरी घास तथा ज्वार-मक्की आदि के कड़प पशुओं के चारे के रूप में बिखेर देता है। तत्पश्चात घर में लड्डू बनाए जाते हैं और अवाड़ा लुटाने


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वाले परिवार की नव-विवाहिता वधू के न्यौते को स्वीकार करके संबंधी और पड़ोसी परिवारों की महिलाएँ गीत गाती हुई प्रजापत के घर जाती हैं। वहाँ पर अवाड़ा लुटाने वाले परिवार की ओर से आवे पर 'चुनड़ी' चढ़ाई जाती है और कुम्हार तथा कुम्हारिन को पाँच कपड़े भेंट किए जाते हैं। इसके बाद ढोल के स्वर के साथ औरतें इच्छानुसार बर्तन लेने दौड़ती हैं। छीना-झपटी में कई बार झगड़ा भी हो जाता हैं और बड़ी-बूढ़ियाँ उन्हें समझा-बुझा कर शांत करती हैं। यह खींचतान का नाटक घर लौटते समय मंगलगीतों के साथ संपन्न होता है।[55]

राजस्थान में और विशेषत: जयपुर में लोग मकर-संक्रांति के दिन अपनी पंतगबाज़ी के करतब दिखाते हैं। उस दिन छह इंच से लेकर पाँच फुट लंबी पंतगें उड़ाई जाती हैं। कभी एक ही डोर में छह-सात पतंगें और कभी विभिन्न पशुओं-पक्षियों, देवी-देवताओं की आकृतियों वाली पतंगों से आकाश अट जाता है। विदेशी लोग भी इस दिन पतंगबाज़ी के दाँव-पेंच सीखने राजस्थान में आते हैं। फ्रांस के शौकीन पतंगबाज़ों ने तो ऐसी प्रतियोगिताओं के लिए 'माँझा इंटरनैशनल क्लब' भी बनाया हुआ है।

## हरियाणा और पंजाब की मकर संक्रांति

### माघी

उत्तर भारत के अधिकांश लोग 'लोहड़ी' के आमोद-प्रमोद एवं पूजा-अर्चना में भाग लेने के कारण देर रात तक जागते रहते हैं। लोहड़ी के अनुष्ठानों की पूर्ति अगली सुबह किसी पवित्र सरोवर में स्नान एवं दान के साथ संपन्न होती है। मानो यह पुराने "सविता यज्ञ" की पूर्णाहुति का संशोधित रूप हो। हरियाणा में 'मकर-संक्रांति' (माघी) के दिन नववधू अपने ससुराल के प्रत्येक संबंधी को कुछ-न-कुछ उपहार अवश्य भेंट करती है। देवर को पगड़ी, धोती और कुर्ता भेंट किया जाता है। तीन कपड़ों के इस उपहार को लोक भाषा में 'तेवर' कहते हैं। ससुर को पगड़ी, सास को चोली-घाघरा और चुनरी का तेवर भेंट किया जाता हैं। काँसी के कटोरे में दूध-जलेबी और थाली में एक रुपया रख कर पति को अर्पण किया जाता है। ननद की गोझ (जेब) सूखे मेवों से भरी जाती है। बंधु-बांधवों


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के यहाँ तिल के लड्डुओं को हरियाणवी भाषा में 'तिलोए' और मक्की के मिष्टान्न को 'मरुण्डे' कहा जाता है।[56] कुछ लोग इन लड्डुओं के साथ दाल, चावल, आटा और गुड़ भी भाई-बहनों के घर भेजते हैं, जिसे 'सीद्धा' कहा जाता है। इस दिन गाँव के हर परिवार में मन-भाता घी भी खाना खाने के समय दिया जाता है।

"मकर-संक्रांति" को हरियाणवी भाषा में 'सँक्राँत' अथवा 'संकरांत' भी बोला जाता है। 'लोहड़ी' की तरह अगली रात्रि के तीसरे पहर में हरियाणा के कुछ गाँवों में 'जगरे' प्रज्वलित किए जाते हैं। 'जगरा' का ईंधन युवक-मंडलियाँ गाँव के घर-घर से एकत्र करती हैं। इसके लिए लकड़ी और उपलों की याचना एक पखवाड़े पहले आरंभ हो जाती है। वस्तुत: ये 'जगरे' पौष की अंतिम रात्रि को 'लोहड़ी' के उपलक्ष्य में नहीं जलाए जाते, प्रत्युत् माघ संक्रांति की रात को प्रज्वलित किए जाते हैं।

'जगरा' प्रज्वलित होने तक लोग समीप के किसी सरोवर, कुएँ अथवा नदी में स्नान करने के बाद वहाँ आ बैठते हैं। ज्यों-ज्यों भोर निकट आती है, गाँव के लोग बिस्तर छोड़ कर किसी जल स्रोत में स्नान करते हैं और 'जगरा' तापने हेतु वहाँ आ विराजते हैं। सूर्योदय तक जगरा-स्थल पर एक भारी मेला लग जाता है। थोड़ी-सी धूप खिलते ही जगरे से संबद्ध युवक अपने-अपने घर लौट कर हलवा, पूरी और खीर जैसे स्वादिष्ट पदार्थों का सेवन करते हैं तथा कुछ समय पश्चात् फिर जगरे पर आ बैठते हैं। आने-जाने वालों का यह क्रम 'जगरे' के शांत होने, प्राय: शाम तक चलता रहता है। 'सँकराँत' के अवसर पर प्रात: स्नान की महत्ता के विषय में एक विद्वान का कथन है: "लोगों की धारणा है कि संक्रांति को सूर्योदय से पहले किया गया स्नान वर्ष भर 'तामसी प्रवृत्तियों' पर अंकुश रखता है।"[57]

हिमाचल प्रदेश की मकर संक्रांति माघ मास के पहले दिन सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है। 'मकर-संक्रांति' की महिमा हिमाचल प्रदेश में भी मानी जाती है। इस दिन गद्दी जन-जाति के लोग 'बासबारों' द्वारा इस मास का नाम सुनते हैं। भाटड़े की वेशभूषा धारण किए हुए "बासबारे" घर-घर जाकर माघ मास का नाम सुना कर दान-दक्षिणा प्राप्त करते हैं। दक्षिणा में अन्न के दाने, नमक, घी तथा माश की दाल अवश्य सम्मिलित रहते हैं।

"बासबारे" प्रसंग को रोचक बनाने के लिए मातृ-पितृ भक्त श्रवण कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कथा सुनाते हैं। अंधे माता-पिता को काँवर में बैठा कर तीर्थ-यात्रा करते हुए उनकी प्यास बुझाने के लिए सरोवर से जल लेने गए श्रवण कुमार को देखे बिना ही हाथी समझ कर अयोध्या नरेश राजा दशरथ ने तीर चलाकर मार डाला था। इस कथा को इस प्रकार हिमाचली भाषा में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे यह प्रकट हो जाए कि घोर से घोर पाप का निवारण भी मकर-संक्रांति के स्नान एवं दान से हो सकता है। घर-घर घूम कर कथा एवं माघ मास का नाम सुनाने का यह क्रम लगभग आठ दिन चलता है। वस्तुत: इन दिनों में एक-एक यजमान की चौखट पर पहुँच कर बासबारे दान एकत्र करने में सफल होते हैं। गद्दी जनजाति के लोग अपने मृतक जनों की अस्थियाँ भी 'मकर संक्रांति' के दिन हरिद्वार के गंगा जल में प्रवाहित करने के बाद स्नान-दान में विशेष आस्था रखते हैं।[58] हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों में यह पर्व 28 पौष (अर्थात् मकर संक्रांति से तीन दिन पहले) से आरंभ हो जाता है। पहले दिन को 'असकलौती'; दूसरे को 'दवलौती', तीसरे को 'अल्लरेंती' और चौथे को 'माघा' अथवा 'साज़' कहते हैं। वस्तुत: यह चौथा दिन ही मकर-संक्रांति है। इस अवसर पर बकरे की बलि दी जाती है।

पंजाब में मकर संक्रांति को 'माघी' कहा जाता है। इस के लिए 'संगरांद' शब्द भी प्रचलित है, जो कि 'संक्रांति' का अपभ्रंश रूप है। उस दिन सुबह थाली में मूँग की दाल और चावल मिला कर खिचड़ी, पापड़, नारंगी, नमक, घी तथा श्रद्धानुसार धन-राशि रखकर मनसने का रिवाज है। 'मनसी' हुई सामग्री तो ब्राह्मण को ही भेंट की जाती है। किन्तु अलग से ये वस्तुएँ घर में काम-काज करने के लिए आने वाले छोटी जाति के लोगों को भी भेंट की जाती हैं। निम्नवर्गीय लोगों के लिए पंजाबी शब्द है 'लागी' और इस दान को कहते हैं 'लाग'।

ब्राह्मण को भेंट की जाने वाली सामग्री परिवार का प्रत्येक सदस्य थोड़ा-थोड़ा करके बारी-बारी से मनसता हैं। कई बार एक बड़ी थाली में भरी इस सामग्री को हाथ लगा कर ही पूरा परिवार यह औपचारिकता निभा लेता हैं। मनसने के बाद मूली के साथ तिल लगा कर खाने का भी कई जगह रिवाज है। बहुत-से लोग गन्ने के रस की खीर 'लोहड़ी' के दिन बना कर रख लेते हैं और अगले दिन ये शब्द कह कर खाते हैं – पोह रिद्धी माघ खाधी' (पौष में तैयार की और माघ में खाई)। वस्तुत: यह रिवाज 'सविता यज्ञ' के प्रतीक "लोहड़ी-आराधना"


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पूर्णाहुति का सूचक ही कहा जा सकता हैं। पंजाबी परिवारों में दोपहर का भोजन अनिवार्यत: नमक और घी मिली खिचड़ी ही होती है।

## माघी के मेले

पंजाब के सभी ऐतिहासिक सिक्ख गुरुद्वारों में माघी का मेला भरता है। इनमें से मुक्तसर (ज़िला फिरोज़पुर) की माघी विशेष रूपेण प्रसिद्ध है। आनंदपुर साहिब (ज़िला रोपड़) में मुग़ल सेनाओं ने गुरु गोविंद सिंह जी और उनके साथियों को घेर कर रसद आने के सभी रास्ते बंद कर दिए थे। चालीस योद्धा सिक्ख चाहते थे कि क़िले से बाहर आ कर मुग़लों का विरोध किया जाए। किन्तु गुरु साहिब जानते थे कि मुट्ठी भर सिक्ख मुग़ल सिपाहियों के सामने टिक नहीं पाएँगे। अत: चालीस योद्धा गुरु साहिब से संबंध-विच्छेद करते हुए यह लिखकर दे गए – "गुरु जी हमारे गुरु नहीं और हम गुरु के सिक्ख नहीं हैं।" इस कथन को सिक्ख इतिहास में 'बे-दावा लिखना' कहा जाता है और बेदावा लिखने वालों को "चालीस मुक्ते" पुकार जाता है।

कुछ दिनों के बाद गुरु साहिब आनन्दपुर से निकलकर वहाँ पहुँचे जहाँ ये सिक्ख सूरमा चले गए थे। वहाँ पर फिर मुग़लों से युद्ध करते हुए उन चालीस मुक्तों का नेता महां सिंह अपने कुछ साथियों के साथ आहत हो गया। किन्तु 'बे-दावा लिखने' के पश्चाताप के कारण वह बड़ा बेचैन था। गुरु साहिब ने उसका लिखा दस्तावेज़ फाड़ डाला और तुरंत महां सिंह संसार से मुक्त हो गया। उसी स्थान के समीपस्थ सरोवर पर बने गुरुद्वारे का नाम 'मुक्तसर' प्रसिद्ध है।[59] कालांतर में उस कस्बे का नाम ही "मुक्तसर" पड़ गया। इसी ऐतिहासिक गाथा की स्मृति में मुक्तसर के अतिरिक्त गुरुद्वारा गुरुगढ़ (रोपड़ नगर से लगभग दो किलोमीटर दूर) में भी 'माघी का मेला' लगता है।[60]

रोपड़ ज़िले की तहसील खरड़ के गाँव 'दाऊँ', जांलधर ज़िले के डेरा संत सरवण दास और बठिंडा ज़िले के गाँव 'बग्गसर' के 'माघी-मेले' भी बहुत प्रसिद्ध हैं। 'बग्गसर' में स्वामी रामानंद नामक एक महात्मा की समाधि है। प्रचलित लोक विश्वास के अनुसार ये स्वामी जी भक्त कबीर और भक्त तुलसी दास के गुरु 'काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रामानंद' माने जाते हैं। मकर-संक्रांति मनाने के लिए सिक्ख गुरुद्वारे में आने वाले यात्री अगले दिन स्वामी रामानंद की समाधि के दर्शन भी करते हैं। नव दम्पति विवाह-रीति के अवसर की भाँति गठ-बंधन करके समाधि से थोड़ी दूर पर मिट्टी खोदते हैं। जिन लोगों की पुरानी मन्नत पूरी हो जाती है, वे भी मृतिका-खनन का कार्य करते हैं। उनका यह कार्य पुरानी यादों को ताज़ा करने की सूचक 'गड़े मुर्दे खोदना' वाली लोकोक्ति को चरितार्थ करता है। तदनंतर सभी आगंतुक अपने श्रद्धानुसार पैसे, पकवान, मिठाई, अनाज आदि समाधि पर चढ़ाते हैं। इस चढ़ावे में स्त्रियों की पहनने वाली चूड़ियाँ भेंट करना आवश्यक माना जाता है।[61]

## काश्मीरी लोकाचार

काश्मीर में यह त्योहार सौर वर्ष के माघ मास के पहले दिन (संक्रांति) को नहीं मनाया जाता। 'खिचड़ी अमावस' के नाम से विख्यात यह लोक पर्व पौष मास की अमावस्या को आयोजित होता है। काश्मीरियों के 'नीलमत पुराण' के अनुसार काश्मीर वादी किसी समय एक बड़ी झील थी, जिसे कश्यप ऋषि ने सुखाया था। उस झील के आस-पास रहने वाले यक्ष एवं पिशाच काश्मीर में आ कर बसने वाले लोगों को बहुत परेशान करते थे। किन्तु नागराज नील के समझाने पर वे लोग यक्षों तथा पिशाचों को भोजन और कपड़े भेंट करके संतुष्ट करने लगे। उसी की याद में आज भी "पौष-अमावस्या" को काश्मीरी पंडित यक्षों और पिशाचों को खिचड़ी अर्पण करते हैं। प्रत्येक काश्मीरी परिवार अपने घर में खिचड़ी पका कर उसे मिट्टी की नई तश्तरी (थाली नुमा छोटा पात्र) अथवा ताज़ी घास से बने गिलासनुमा बर्तन में भर कर आंगन में पिशाचों एवं यक्षों के सेवन हेतु रख देता है।[62] इस नमकीन पदार्थ का रसास्वादन पक्षी ही कर लेते हैं। 'प' (पिशाच)+(य)'क्ष' ('पंखों' वाले 'पक्षी') रूपी आकाशचारियों के पधार जाने पर ही काश्मीरी बंधु अपनी भेंट-स्वीकृति से मानो संतुष्ट हो जाते हैं।

काश्मीरी खिचड़ी में मछली भी अवश्य पकाई जाती है और कुछ लोग इसे रात्रि को आंगन में रख देते हैं। उनका विश्वास है कि यक्ष और पिशाच रात में ही घूमते हैं। कुछ भी हो चूहे, बिल्ली और पक्षी सुबह होने तक मिट्टी और घास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बर्तनों में धरा सामान चट कर जाते हैं, जो श्रद्धालुओं के लिए अत्यंत तुष्टिकारक होता है।

## पाद टिप्पणियाँ

1 संख्या की पराकाष्ठा: आधुनिक गणना के अनुसार 'शंख' या 'महाशंख'।

2 खेती उत्तम व्यवसाय है और व्यापार मध्यम। नौकरी-चाकरी निम्न व्यवसाय है तथा भीख माँगना निकृष्टतम कार्य है।

3 रमेश चन्द्र दत्त: प्राचीन भारत में सभ्यता का इतिहास, पृष्ठ 128।

4 वणजारा बेदी: लोक आखदे हण।

5 The Tribune, Chandigarh; 13th April, 1979 (Baisakhi in Punjabi Culture by Sant Singh Sekhon).

6(a) The Vikrama Era.... dates from 57 B.C... The era came to be known as the Vikrama era after the sixth Century A.D.

— Dr. Ishwari Prasad: A New History of India, Page 106.

(b) डॉ॰ नवरत्न कपूर: पंजाबी लोक-चिंतन और पर्वोत्सव, पृष्ठ 51।

7 Dr. Bhagat Singh: Sikh Polity in the Eighteenth and Nineteenth Centuries, Page 109-110.

8 Dr. Bhagat Singh: Maharaja Ranjit Singh and His Times, Page 27 (Manuscript).

9. Dr. Bikramjit Hasrat: Life & Times of Ranjit Singh, Page 407.

10(a) Nihal Singh: Ruling India by Bullets and Bombs. Page 13.

(b) V.N. Datta: Jallianwala Bagh, Page 169.

11 जन साहित्त (मेला विशेषांक), अप्रैल-मई, 1989 (प्रकाश कौर: विसाखी तलवंडी साबो), पृष्ठ 86।

12 उपर्युक्त, पृष्ठ 89।

13 उपर्युक्त (अमरजीत सिंह: ज़िला जलंधर दे मेले), पृष्ठ 128।

14 The Tribune, 13th April, 1994 (Satish K. Kapoor: Baisakhi through the ages).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15 सोमसी: जनवरी-मार्च, 1995 (डॉ॰ श्याम लाल डोगरा: ब्रह्मपुरी (भरमौरी) बोली का सांस्कृतिक एवं भाषा वैज्ञानिक महत्व), पृष्ठ 69।

16-17 डॉ॰ बंशी राम शर्मा: (संपादक) पहाड़ी-हिन्दी शब्द कोष, पृष्ठ 380।

18 उपर्युक्त, पृष्ठ 377।

19 मौलू राम ठाकुर: हिमाचल में पूजित देवी-देवता, पृष्ठ 47-48।

20 वीर प्रताप, जालंधर; 9 अगस्त, 1995।

21 एन॰डी॰ पुरोहित: हिमाचली लोकरंग, पृष्ठ 82-83।

22 सोमसी; जनवरी-मार्च, 1995, पृष्ठ 67।

23 शरण: हिमाचल की धार्मिक परंपरा, पृष्ठ 35।

24 डॉ॰ हरिराम जसटा: हिमाचल प्रदेश के लोक नृत्य, पृष्ठ 85।

25 The Tribune; 6th May, 1994 (B.C. Kashyap:Bishu Fair).

26 एन॰डी॰पुरोहित: हिमाचली लोकरंग, पृष्ठ 101-102।

27 उपर्युक्त, पृष्ठ 108-109।

28 G.M. Rabbani: Ancient Kashmir—A Historical perspective Page 52

29 वसंत की सुहावनी धूप में अपने कोमल शरीर को नहला कर नायिका सो गई है। उसके प्रियतम को जल क्रीड़ा एवं शिकार का नशा चढ़ा हुआ है। अत: वह प्रेमिका को जगा कर उसे ऋतु की मादकता देखने के लिए प्रेरित करता है। 'ड़ल' की सैर तथा शिकार के मोह में प्रेमिका तुरंत तैयार हो जाती है।

30(क) डॉ. जवाहर लाल हंडू: कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत—एक तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 178।

(ख) Keys to Kashmir, Page 165.

31(a) H.A. Rose: A Glossary of the Tribes & castes of the Punjab and North-West Frontier Provice, Volume1, Page 135.

(b) कुछ विद्वान इस प्रसंग को चंबा के राजा प्रताप सिंह वर्मन के साथ जोड़ते हैं।

32 मौलू राम ठाकुर: हिमाचल में पूजित देवी-देवता, पृष्ठ 21।

33 H.A.Rose: A Glossary of the Tribes & castes of the Punjab and North-West Frontier Province, Volume1, Page 135.

34 डॉ॰ बंशी राम शर्मा (संपा0): पहाड़ी-हिंदी शब्द कोश, पृष्ठ 501.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) 'सैर' आश्विन मास का भी बोधक है– सोमसी; जनवरी-मार्च, 1995. पृष्ठ 69।

35 गुर कोठा (ज़िला मंडी) के श्री मोती लाल घई का पत्र।

36 शरण : हिमाचल की धार्मिक परंपरा, पृष्ठ 37।

37 मौलू राम ठाकुर: हिमाचल में पूजित देवी-देवता पृष्ठ 37।

38 भाई काह्न सिंह: महान कोश, पृष्ठ 805।

39(क) डॉ॰ नवरत्न कपूर: लोहड़ी–समन्वयात्मक लोकपर्व, पृष्ठ 21।

(ख) डॉ॰ नवरतन कपूर: पंजाब दे लोक तिउहार–इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 209।

40 H.A. Rose: A Glossary of the Tribes & castes of the Punjab & North West Frontier, Province, Vol.1,Page 30.

41(क) डॉ॰ नवरत्न कपूर: लोहड़ी–समन्वयात्मक लोकपर्व, पृष्ठ 22-25।

(ख) डॉ॰ नवरतन कपूर: पंजाब दे लोक तिउहार–इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 209-211।

42 Govinda Krishna Pillai : Hindu Gods Hidden Mysteries Page 49.

43 डॉ॰ नवरतन कपूर: पंजाब दे लोक तिउहार–इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 211-221।

44(क) डॉ॰ नवरत्न कपूर: लोहड़ी–समन्वयात्मक लोकपर्व, पृष्ठ 11।

(ख) संस्कृति, वर्ष 3, अंक 3, सितंबर-अक्तूबर, 1961 (डॉ. नवरत्न कपूर: लोहड़ी-एक मनोरंजक पर्व) पृष्ठ 53-54।

(ग) पंजाब सौरभ: जनवरी, 1995 (डॉ. नवरत्न कपूर: लोहड़ी और पोंगल - विचित्र पारंपरिक साम्य), पृष्ठ 8।

45 हिम भारती, वर्ष 26(1993), अंक 97 (पवन कुमार शर्मा:लोहड़िया दी खिचड़ी), पृष्ठ 35।

46 डॉ नवरत्न कपूर: लोहड़ी–समन्वयात्मक लोकपर्व, पृष्ठ 30।

47 शरण : हिमाचल की धार्मिक परंपरा, पृष्ठ 37।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

48 डॉ. ब्रज मोहन : हमारे त्योहार, पृष्ठ 68।

49 डॉ॰ नवरतन कपूर: पंजाब दे लोक तिउहार–इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 215-216।

50 एन.डी. पुरोहित: हिमाचली लोकरंग, पृष्ठ 91-92।

51 जन साहित्त (मेला विशेषांक), अप्रैल-मई,1989 (बलदेव सिंह कोरे: बिंदरख दा मेला), पृष्ठ 151-152।

52-55 राजस्थान पत्रिका (मकर संक्रांति विशेषांक), 14 जनवरी, 1996।

56 डॉ. साधु राम शारदा (संपादक): हरियाणा-एक सांस्कृति अध्ययन, पृष्ठ 143।

57 देवी शंकर प्रभाकर: हरियाणा–एक सांस्कृति अध्ययन, पृष्ठ 141

58 शरण : हिमाचल की धार्मिक पंरपरा, पृष्ठ 38।

59 अजीत, जालंधर; 14 जनवरी, 1983 (डॉ. साधू सिंघ हमदरद: खिदराणे दी ढाब दे शहीद)।

60 जन साहित्त (मेला विशेषांक), अप्रैल-मई, 1989 (गुरइंदर सिंघ प्रीत: ज़िला रोपड़ दे मेले), पृष्ठ 144।

61 उपर्युक्त (गिआनी करतार सिंघ जस्सी:मेला माघी बग्गसर), पृष्ठ 195 तथा 197।

62 (a) G.M. Rabbani: Ancient Kashmir—A Historical perspective, Page 54.

(b) Som Nath Dhar: Jammu & Kashmir—The Land and the people, Page 26।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तर भारत के देवी तथा देवोत्सव

## देवी माहात्मय और नवरात्र

जब हम साधारण बोलचाल में भारत के भौगोलिक विस्तार की चर्चा करते हैं तो 'काश्मीर से कन्या कुमारी तक' पद का प्रयोग करके अपने महान देश की व्यापकता का सीमांकन कर देते हैं। संयोग की बात है कि भारत के निम्नतम छोर 'कन्या कुमारी' के सदृश भारत के ऊपरी छोर 'काश्मीर' के नामकरण का मूलस्त्रोत भी स्त्रीवाचक है। इस से भारतीय ज़न-मानस में अवस्थित मातृ-महिमा एवं शक्ति-साधना का रहस्योद्घाटन होता है।

काश्मीरी विद्वानों का मत है कि "नीलमत पुराण" के अनुसार उनकी वादी (valley) की प्राचीनतम संज्ञा 'सती सर' थी। पिशाचों, यक्षों और नागों से घिरे इस सरोवर को ऋषि कश्यप ने सुखा दिया था। तभी से इस क्षेत्र का नाम 'काश्मीर' पड़ गया।[1] माँ सती भगवान शिव की पत्नी थीं और उन्हीं के नाम पर काश्मीर का पुराना नाम 'सती सर' पड़ा था। अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञ में भगवान शिव का होमांश न निकाले जाने के कारण देवी सती ने योगाग्नि द्वारा अपनी सांसारिक देह का परित्याग कर दिया था।

धर्मपत्नी सती की जीवनाहुति पर अपने श्वसुर दक्ष-प्रजापति से रुष्ट भगवान शिव ने सृष्टि-नाश का निश्चय किया। उन्होंने देवी सती का मृतक शरीर अपने कंधे पर उठा लिया और क्रोधाभिभूत होकर ब्रह्मांड में विचरने लगे। शिव जी का मोह भंग करने के लिए भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र से सती की मृतक देह के बावन टुकड़े कर दिए। जहाँ झड़ कर नेत्र गिरे, वह स्थल 'नयना देवी' के नाम से जाना जाने लगा। जिह्वा वाला स्थल 'ज्वालामुखी' के नाम से विभूषित है। बायाँ स्तन कांगड़ा में गिरा और वहाँ पर ब्रजेश्वरी देवी मंदिर निर्मित हो गया।[2] जहाँ आज चिन्तपुरणी मंदिर (ज़िला क़ाँगड़ा) है, वहाँ माँ सती के शव से चरण गिरे थे।

अगले जन्म में माता सती का जन्म पार्वती जी के रूप में हुआ। हिमालय पर्वत की पुत्री के रूप में सुविख्यात "पार्वती जी" की तपस्या सफल हुई और उन्हें भगवान शिव पुन: पतिदेव के रूप में प्राप्त हुए। शाक्त मत के प्रचलन के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पार्वती जी उसकी सर्व पूज्या देवी बन गई। गौरी, भवानी, भद्रकाली, दुर्गा जैसे अनेक नाम स्तोत्र-रचनाओं में उन्हें प्रदान किए गए और इन्हीं विभिन्न नामों से देवी-मंदिरों का उत्तर भारत के क्या गाँव और क्या शहर, सर्वत्र जाल बिछ गया। पूर्व जन्म की माता सती के नए ज़न्म के बाद पार्वती कहलाने वाली शाक्त मत की परमाराध्या के साथ सती-शव के अंगों से संबद्ध सभी स्थल कालांतर में "शक्तिपीठ" कहलाने लगे।

चान्द्रवर्ष के प्रथम मास के पहले नौ दिनों को "चैत्र के नवरात्र' कहा जाता है। श्रावण शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक की अवधि को भी 'नवरात्र' पुकारा जाता है। इसी प्रकार आश्विन शुक्ला प्रथमा से नवमी तक के नौ दिनों को भी 'नवरात्र' संज्ञा प्रदान की जाती है। इन सभी नवरात्रों में शक्ति-पूजन 'नवदुर्गा' के नाम से होता है, जिसमें पार्वती जी के विभिन्न-नामा नौ विग्रहों के स्मरण, कीर्तन एवं नैवेद्य-अर्पण का विधि-विधान लगभग समूचे भारत में विद्यमान है।

भक्तजन, चाहे शाक्तमतावलंबी हों या वैष्णव, वे अपने जीवनकाल में कम-से-कम एक बार हिमाचल प्रदेश के शक्तिपीठों की यात्रा करना अपना परम धर्म मानते हैं। जम्मू क्षेत्र के वैष्णव देवी माता के नवरात्रों में दर्शन का पुण्य भी हिमाचल प्रदेश के शक्तिपीठों के बराबर ही आँका जाता है। दुर्गम पहाड़ी मार्गों, परिवारिक व्यस्तताओं अथवा धनाभाव जैसे सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से विवश जन-मानस "मन चंगा कठौती में गंगा" सूक्ति को अपना कर अपने घर में ही देवी भगवती की अवतारणा की परिकल्पना कर लेता है। उत्तर भारत का प्रबुद्ध स्त्री समाज अपने उर्वर लोक मानस में घर बैठे ही शक्तिपीठों का मानचित्र संजो कर उसे अपनी रुचि के अनुकूल रंगों द्वारा अपने कक्ष की दीवारों को चित्रित करने का प्रयास करता है। बालक-बालिकाओं द्वारा मिट्टी से बनाई मूर्तियाँ या भित्ति चित्र ही घर-बाहर की शोभा बन जाते हैं और देवी-अवतारणा एवं प्राण-प्रतिष्ठा का सारा विधि-विधान भी उन्हीं के नन्हे-मुन्ने हाथों से होता है। 'रली', 'गणगौर', 'साँझी', 'अहोई' आदि अनेक नामों से शक्ति-पूजन की यह लोक-परंपरा उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों के श्रद्धालुजन के भक्ति-भाव को विचित्र ढंग से दर्शाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) रली : शिव-पार्वती पूजन का यह लोकपर्व हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा, चम्बा, हमीरपुर, ऊना ज़िलों में बड़ी धूमधाम के साथ मनाया जाता है।[3] फागुन मास के अंतिम सप्ताह में रली-पूजन के उद्देश्य से गाँव का कोई एक मकान चुन लिया जाता है और उसका कोई कक्ष गोबर तथा मिट्टी से लीप-पोत कर साफ़ कर लिया जाता है। चैत्र संक्रांति को प्रात: उठ कर अविवाहिता लड़कियाँ अपनी सखियों एवं सगी-संबंधी स्त्रियों के साथ धरती–पूजन के लिए जाती हैं। वे भजन गा कर धरती माता की पूजा करती हुई उसे रली की मूर्तियाँ बनाने के लिए मिट्टी देने की प्रार्थना करती हैं। वे मिट्टी खोदने के बदले में एक कौड़ी उस स्थान पर दबा देती हैं।[4]

अगले दिन से वे उसी तरह एक सप्ताह तक भजन गाती हुई उसी स्थल पर पहुँच कर मिट्टी खोदती हैं। फिर मिट्टी को कूट-छानकर पत्थर-रोड़े साफ़ करके उसे आटे की तरह गूँध कर उसमें रूई मिला लेती हैं। रूई मिली इसी मिट्टी से रली (पार्वती) तथा उसके पति शिव की मूर्तियाँ बना-बना कर पूजा-स्थल पर धर दी जाती हैं। मूर्तियों को एक छोटे से चबूतरे पर रखा जाता है। चौकोना होने के कारण उसे 'चौकड़ू' कहा जाता है।

कई जगह मूर्तियों को चौकड़ू पर धरने से पहले आंगन और चौकड़ू को गोबर में हरा रंग मिला कर भली प्रकार लीप दिया जाता हैं। तदनंतर उस पर सफ़ेद मिट्टी अथवा चावल के आटे के घोल से अत्यन्त सुंदर फूल-पत्तियाँ और पशु-पक्षी चित्रित किए जाते हैं। सारा पूजा-स्थल फूल-पत्तियों से ढक दिया जाता है। ताज़े फूलों से सजा 'चौकड़ू' एक मखमली गालीचे की तरह दिखाई पड़ने लगता है। चौकड़ू पर रखे जाने से पूर्व प्रतिमाओं को रंग-बिरंगे वस्त्रों, आभूषणों तथा फूल मालाओं से सुसज्जित कर लिया जाता है। तदनंतर किसी पुरोहित को बुला कर इन देव-विग्रहों में प्राण-प्रतिष्ठा करवाई जाती है।[5] बहुत-से स्थानों पर पौरोहित्य कर्मकांड को विशेष महत्व नहीं दिया जाता। वहाँ पर कुमारी बालिकाएं प्रतिदिन स्नान करके आस-पास के जंगलों से फूल चुनने के लिए जाती हैं। घर से निकलते ही मानो वे अन्य सहेलियों को इस कार्य के लिए आह्वान करती हुई


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह लोकगीत गाती हैं:

आओ ताँ मिल्लो मेरिओ सैयो सहेलदीओ
फूल दीआ चुगण जाणा हो
होरणाँ ताँ चुगीआ गोडा दो गोडा
रलियाँ चुगीआ चढ़ सारी।

फूलों के साथ-साथ वे "दूब" घास भी चुन लेती हैं। इसके बाद वे स्नान करने और फूल तथा दूब को धोने के लिए किसी जल स्रोत पर पहुँचती हैं। ऐसा करते समय भी वे पहाड़ी लोकगीत गाती रहती हैं। फिर यह सामग्री रली, शिव एवं रली के भाई को अर्पण कर दी जाती है। "रली-पूजन" के उपरांत दरेक वृक्ष की पूजा भी आवश्यक मानी जाती है। शाम को फिर यही लड़कियाँ रली की आरती उतारने के लिए अपने-अपने घरों से आती हैं। आरती के उपरांत दिन भर में मुरझा गए फूलों को हटा कर एक कोने में रख दिया जाता है।[6] गाँव में प्रचलित परंपरा के अनुसार प्रात: होते ही नवीन पुष्पों के संचय, रली को अर्पण तथा संध्या काल में आरती के उपरांत सूखे फूलों को हटाने का क्रम दो-तीन सप्ताह तक चलता है।

पूरे चैत्र मास तक चलने वाले इस "रली-पूजन" के पहले पखवाड़े को "छोटी रली" और बाद के पंद्रह दिनों को 'बड़ी रली' कहा जाता है।[7] अंतिम पखवाड़े में 'शिव-पार्वती नाटक' के वर-वधू पात्रों की मूर्तियाँ बनाने के लिए लड़कियाँ मिट्टी खोदकर कुम्हार को दे आती हैं। इन नई प्रतिमाओं को भी रली, शिव और रली के भाई की मूर्तियों के साथ सजा दिया जाता है। तदनंतर कन्याएँ दो दलों में बँट जाती हैं। एक पक्ष वधू पार्वती की ओर होता है और दूसरा वर शिव जी का बाराती पक्ष बन जाता है। कहीं वैशाख-संक्रांति (वैशाखी) से एक दिन पहले[8] और कहीं दो दिन पहले शिव-पार्वती का विवाह रचाया जाता है।

पार्वती जी की प्रतिमा को चाँदी और सोने के आभूषणों तथा सुंदर वस्त्रों से दुलहिन की भाँति सजाया जाता है। शिव-पक्ष की कन्याएँ बाराती बन कर दुलहिन के घर जाती हैं और उनके प्रीति भोज का आयोजन किया जाता है। अनेक प्रकार के मिष्टान्न एवं पहाड़ी व्यंजनों से बारातियों का स्वागत किया जाता है। वैशाखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के दिन पालकी में शिव एवं पार्वती की मूर्तियाँ सजा दी जाती हैं। इस प्रकार भगवान शिव के साथ पार्वती की विदायगी के समय दोनों पक्षों की लड़कियाँ पालकी उठाने वालों के साथ नदी में सभी मूर्तियों के जल-प्रवाह हेतु जाती हैं। शिव-पार्वती की प्रतिमाओं के साथ रली के परिवार की मूर्तियों को ले जाते समय और उनके जल-प्रवाह के अवसर पर वे गीत गाती हैं। कई भावुक कन्याएँ तो रोने-सुबकने भी लगती हैं। ग़रीब लोग पानी में डुबकी लगा कर इन प्रतिमाओं के आभूषण उतार कर झोली भर लेते हैं। काँगड़ा के चामुंडा देवी के मंदिर के समीप मैदान में इस विदायगी-समारोह के उपलक्ष्य में एक मेला भी लगता हैं। पंजाब की वैशाखी के अवसर पर दो-तीन दिन चलने वाला यह समारोह 'रलीआँ दा मेला' कहलाता हैं। देवी-देव प्रतिमाओं के जल-प्रवाह के समय रली-पूजन हेतु संचित सभी मुरझाए हुए फूल भी पानी में बहा दिए जाते हैं। इस शुभ अवसर पर स्त्रियाँ नदी में स्नान करना भी नहीं भूलतीं।

एक हिमाचली जनश्रुति के अनुसार रली एक कुलीन ब्राह्मण कन्या थी। विवाह के पश्चात् विदायगी के समय उसे ज्ञात हुआ कि शिव नामक उसका पति एक बालक है। वह परिस्थितियों से समझौता न कर सकी और क्षुब्ध होकर उसने पालकी से कूद कर रास्ते में पड़ने वाली नदी में छलांग लगा दी। उसे बचाने के लिए उसका भाई वस्तु और पति भी नदी में कूद पड़े। किन्तु दुर्भाग्यवश तीनों ने जल-समाधि ग्रहण कर ली। कालांतर में संभवत: पति शिव के नाम-साम्य के कारण यह प्रसंग "शिव-पार्वती" के विवाह की घटना से जुड़ गया।

हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों में रली-पूजन के समापन से एक सप्ताह पूर्व 'हरियावल' नामक मनोरंजक स्वांग का अभिनय भी होता है।[9] एतदर्थ एक लड़की को वर के रूप में और दूसरी को वधू के रूप में सजा कर वैवाहिक गीत गाते हुए नदी की ओर ले जाया जाता है। नदी-तट पर पहुँचकर वर तथा वधू को नहलाया-धुलाया जाता है। फिर आस-पास की बालू एकत्र करके दोनों को गर्दन तक दबा दिया जाता है। इनके साथ आई लड़कियाँ उन दोनों को अपनी चुनरियों से ढक कर गोल दायरे में खड़ी हो कर यह गीत गाती हैं:

बालुआ रेता कुएँ पाणी सेता


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बछुआ लई देयां बाबा, बछियाँ लई देयां बाबा
घड़ी देयां सुन्यारा, मढ़ी दे सुन्यारा।

उपर्युक्त 'हरियावल गीत' के पूर्ण होने पर वर-वधू के आस-पास एकत्र रेत को हटा कर उन्हें बाहर निकाल लिया जाता है। इनके पैरों की रेत इकट्ठी कर ली जाती है। थाली या टोकरी में भरी इस बालू को उठाए हुए गीत गाती लड़कियाँ उसे ला कर रली-शिव आदि की प्रतिमाओं के नीचे और आस-पास बिछा देती हैं।

जहाँ पर 'हरियावल स्वांग' होते हैं, वहाँ पर चैत्र मास के अंतिम चार दिनों में लड़कियाँ घर-घर जा कर पैसे इकट्ठी करती हैं। यह सारी धन-राशि रली (पार्वती)-शिव के विवाह की रस्में पूरी करने के लिए व्यय होती है। सामान्य मानवों की तरह बटना लगाने, वैदिक मंत्रों द्वारा विवाह, रिश्ते-नातेदारों को न्यौता-भोज दहेज आदि के आयोजन के बाद दो अलग-अलग डोलियों में रली तथा शिव की प्रतिमाओं को बैठा कर विदा किया जाता है।

ढोल, नगाड़े, शहनाई और करनाल पर पहाड़ी धुनें बजाते हुए बाजे वालों के पीछे कहार डोलियाँ उठा कर नदी की ओर चल पड़ते हैं। उनके पीछे कन्याओं एवं विवाहिता स्त्रियों के साथ कुछ पुरुष बाराती भी चलते हैं। रास्ते भर रोती-सुबकती बालिकाएँ विदायगी गीत गाती रहती हैं। नदी तट पर शोभा-यात्रा के पहुँच जाने पर कुछ कन्याएँ डोली से रली की मूर्ति उतारने लगती हैं और साथ में आए हुए पुरुषों को थमा देती हैं। अन्य बालाएँ शिव की प्रतिमा को डोली से उतार कर दूसरे पुरुषों के हवाले कर देती हैं। ये पुरुष अत्यंत श्रद्धा पूर्वक दोनों मूर्तियों को जल-अर्पण कर देते हैं। रली-शंकर विवाह नाटक के संबंध में एक विद्वान की टिप्पणी बड़ी सटीक है, यथा:

"अभागी रली को उस के अनमोल विवाह की याद में आज की युवाएँ इस नाटक को खेल कर पार्वती की तरह शिव रूप में मनचाहा पति प्राप्त करने की आकांक्षा अभिव्यक्त करती हैं। सीता ने भी गौरी की कृपा से ही राम जैसा सुंदर, सुयोग्य वर प्राप्त कर लिया तो आज की कन्याओं का मनोरथ भी इस पूजा-पर्व से अवश्य ही पूरा होगा। रली-पूजा के ब्याज से लड़कियाँ अपने-आप को विवाह


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए मानसिक रूप से तैयार कर लेती हैं और वैवाहिक आयोजनों से हर्षोल्लास की पर्याप्त सामग्री भी जुटा लेती हैं।"[10]

## (ख) गणगौर

### राजस्थानी आयोजन :

"गणगौर" राजस्थान का प्रसिद्ध त्योहार है, जो कि माता पार्वती और भगवान् शिव की अराधना हेतु मनाया जाता है। 'होलिका-दहन' से दूसरे दिन 'होली' की राख ठंडी हो जाती हैं। अत: चैत्र कृष्ण पक्ष की द्वितीया को बड़े सवेरे स्त्रियाँ गीत गाती हुई होली की राख इकट्ठी कर लेती हैं। फिर पास के किसी तालाब से लाई हुई मिट्टी मिला कर सोलह पिंडियाँ (अंडाकार गोलियाँ) बना लेती हैं और गौरी के रूप में उनका पूजन आरंभ कर देती हैं। कई जगह उसी दिन ईसर (ईश्वर), गौराँ (गौरी) और मालिन की मूर्तियाँ भी बना ली जाती हैं और बराबर सोलह दिन तक इनकी पूजा की जाती है।[11] किन्तु कई जगह 'ईसर' और "गौराँ" की मूर्तियाँ आठ दिन पश्चात् शीतलाष्टमी को बनाई जाती हैं। इसके लिए तालाब से विशेष रूप से चिकनी मिट्टी लाई जाती है और उसमें आठ दिन तक पूजित राख की पिंडियाँ भी मिला दी जाती हैं।[12]

दोनों ही विधियों में कुम्हार के घर से एक फलसिया (छोटा गमला) खरीद कर उसमें मिट्टी भर कर जौं बो दिए जाते हैं। पानी देते रहने से तीसरे-चौथे दिन यवांकुर निकल आते हैं, जिन्हें "जुहारे" कहा जाता है। चैत्र शुक्ला तृतीया अथवा चतुर्थी को इन जुहारों का कुछ अंश स्त्रियाँ-पुरुष और बालक-बालिकाएँ अपने सिर पर रखते हैं। सोलह दिन तक की जाने वाली इस पूजा के लिए ताज़े फूलों और ताज़ी दूब का महत्व माना जाता है। यह कार्य किस कलात्मक ढंग से किया जाता है, उसके बारे में एक विद्ववान का कथन है:

"कुमारियाँ निरंतर सोलह दिन तक यह पूजन करती हैं। वे दस-बीस का समूह बनाकर पूजा के लिए फूल और दूब लेने के लिए जंगल अथवा बाग़ में जाती हैं। इन बालिकाओं के सिर पर एक के ऊपर एक कई लोटों का स्तंभ-सा सजा रहता है। कुछ के सिर पर कलात्मक पीतल के पात्र रहते हैं। कम-से-कम सात पात्र या लोटे एक-एक के सिर पर होते हैं और यह शृंखला कलात्मक होती है, नीचे बड़ा पात्र अथवा लोटा रहता है। फिर ज्यों ज्यों ऊपर बढ़िए पात्र अथवा लोटे


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आकार क्रमशः छोटा होता चला जाता हैं। जोधपुर एवं अजमेर के लोटे बहुत प्रसिद्ध हैं। सिर पर लोटों की मीनार लिए, रंग-बिरंगे वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर जब मधुर स्वर से गाती ये स्त्रियाँ, बालिकाएँ निकलती हैं तो बड़ा मनोहर दृश्य होता है।[13]"

मिट्टी से बनी गणगौर (गौराँ) की मूर्ति के नीचे रोली, काजल तथा मेहन्दी की सोलह बिंदियाँ लगाने के बाद हाथ में पकड़ी हुई दूब को लोटे के जल में डुबोकर प्रतिमाओं पर छींटे दिए जाते हैं। जब 'जुहारे' उग आते हैं तो उनका कुछ अंश दूब के साथ जोड़कर 'ईसर' एंव 'गौराँ' को नैवेद्य के रूप में अर्पित किया जाता है। वैसे तो इस प्रक्रिया के प्रत्येक अनुष्ठान पर कोई-न-कोई गीत गाया जाता है, फिर भी एक सामूहिक गान रसास्वादन हेतु प्रस्तुत है:

म्हारा हर्या ए जुंहरा ए, गोऊँडा सरस बध्या।
म्हारे ईसरदास बनाया ए, बहू गोराँ सींच लिया।
भाबी सींध न जाणूँ ए, जौ पीला पड़ जाय।
भाबी दोगड़ सींचो ए, लाम्बा तीखा सरस बधे।
गल मोतीडां रो हारा ए, बाई रोवां पहर लियो।
चौखी बरिंग चूनड ए, बाई चन्दर ओढ लई।

चैत्र शुक्ला तृतीया या चतुर्थी को 'गणगौर की सवारी' निकलती है। यह शोभा यात्रा किसी जलाशय अथवा नगर के किसी प्रमुख स्थान तक जाती है।[14] अधिकांश स्थानों पर पुराने सामंत-सरदार ही इस जुलूस में सम्मिलित होते हैं। कई जगह घोड़ो और ऊँटों की दौड़-प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की जाती हैं। 'गणगौर' के मेले के मौक़े पर ऐसी दौड़ें न हों तो और कब होंगी, इसी अर्थवत्ता युक्त एक राजस्थानी कहावत है।

"गणगोरियां इ घोड़ा न दौड़ेला तो दौड़ेला कद।"

कई जगह यह सवारी पूरें पन्द्रह दिन निकलती है और कहीं-कहीं यह आयोजन केवल दो-तीन दिन ही होता है। शीतलाष्टमी से अगले दिन 'बनौरी निकालने' की परंपरा भी है। इसके विषय में एक विदुषी का कथन है:

"शीतलाष्टमी के दूसरे दिन से सायंकाल को बनौरी निकलती है। प्रत्येक


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोली या झुंड में जितनी लड़कियाँ सम्मिलित रहती हैं, वे सभी बारी-बारी से अपने घर गणगौर ले जा कर 'बनौरी' (शोभा यात्रा) निकालती हैं। बनौरी में गेहूँ या जौ की गूगरी बनाकर, घी-खाण्ड डालकर 'गवर' (गणगौर) को जमाते (भोजन करवाते) हैं और मिठाई व बताशों से गवर का खोला (गोद) भर के सब लड़कियों को बाँटा जाता है।[15]"

बूँदी राज्य में तत्कालीन राव बुध सिंह के भाई राव जोधसिंह गणगौर पर्व के दिन नौका-यात्रा के समय तालाब में डूब गए थे। तभी से वहाँ पर गणगौर का यह सामूहिक उत्सव बंद हो गया है। "हाडो के डूब्यो गणगौर" कहावत इसी दुर्घटना की सूचक है।[16] खूब बन-ठनकर (सज-धज कर) गणगौर के जुलूस को देख कर ही किसी महानुभाव ने 'बनौरी' शब्द गढ़ा है, ऐसा प्रतीत होता है। 'बनौरी' के समय रात्रि में गाए जाने वाले गीत को "गौर वन्दौरा" (=गौर वंदना) कहते हैं। भाई-बहनों के नाम गिना कर "गौर" की सजधज की सामग्री का चित्रण ऐसे लोकगीतों में किया जाता है, यथा:

आज म्हारै गौर बन्दौरो नीसर्यो।
थारा घोड़लियाँ सिणगार ओ, जगदीस रा श्यामला

× ×

बाई सविता छै मोत्याँ बिचली लाल ओ।
माली का मरवा, आज बधावे म्हारी गौर को।।[17]

सोलहवें दिन सभी लोग अपनी साम्थर्यानुसार घर में लाप्सी तथा अन्य पकवान और व्यंजन बनाकर गणगौर माता को अर्पण करते हैं। 'तीज' (चैत्र शुक्ल तृतीया) के बाद शुभ मुहूर्त देखकर दोपहर में या सूर्यास्त से पूर्व किसी तालाब अथवा कुएँ में गणगौर के दरबार की मूर्तियों का विसर्जन कर दिया जाता है। इसे राजस्थानी भाषा में 'गणगौर-पधराना' कहा जाता है। पूजा के समय प्रयुक्त दूब और फूल भी 'दायजा' (दहेज) माने जाते हैं और उन्हें भी जल में विसर्जित कर दिया जाता है।[18]

राजस्थानी भाषा में 'गणगौर' के लिए कई शब्दों का प्रयोग होता है। उच्चारण-भिन्नता के कारण 'गणगौर', 'गिणगौर', 'गौरल', 'गवर' एवं 'गवरजा'


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द विभिन्न लोकगीतों में मिलते हैं। ये लोकगीत रात्रि के समय गाए जाते हैं और साथ में 'घूमर' नृत्य भी किया जाता है। कन्याओं के लोकगीतों में गुणवान वर की याचना और पेटू पति के उपहास के गीत भी रहते हैं, यथा:

मेड़ी बैठो मद पीवे ए, लीली केरो असवार
साँगी बाँधे पागड़ी ए, मथरी चाले चाल।
ऐसे वर से तो बचना –
चूल्हे केरो चांदणो ए, हांड़ी को हमीर
नौ थालां पीवै रावड़ी ए, सोलां रोटी खाय।
वो वर टालो माता गौरल ए, म्हें थांने पूजण आय।।

सधवाओं के लोकगीतों में सुहाग की दीर्घायु तथा गणगौर उत्सव मनाने के लिए पति के घर लौट आने का आग्रह किया जाता है। गणगौर पूजन में ये दोनों नारी-मनोभावनाएँ जुड़ी हुई हैं। पूजा हेतु कुम्हार से 'फलसियाँ' (छोटे गमले) खरीदना और 'गणगौर की सवारी' के समय एकत्र हुई भीड़ के बारे में यह विश्वास कि 'अछूतों के स्पर्श की छूत नहीं लगती' भावात्मक-एकता की सूचक धारणाएँ हैं। जयपुर में तो व्यापारिक क्षेत्र का नाम 'गणगौर बाज़ार' पड़ गया है और एक होटल का नाम भी 'गणगौर होटल' रखा गया है। जयपुर से बम्बई के लिए जाने-आने वाली सुपर फास्ट गाड़ी का नाम भी 'गणगौर एक्सप्रेस' धरा गया है।

## हरियाणवी परंपराएँ :

वस्तुत: 'गणगौर' राजस्थान का लोकपर्व है। फिर भी राजस्थान प्रदेश की सीमा से सटे हरियाणा के हिसार ज़िले के कई गाँवों में गणगौर-पूजन चैत्र शुक्ला द्वितीया को अत्यंत हर्षोल्लास के साथ संपन्न होता है। होलिका-दहन के दूसरे दिल होली की राख को जल में गूँध कर गणगौर तथा ईसर की छोटी-छोटी प्रतिमाएँ बना ली जाती हैं। गणगौर उत्सव मनाने के लिए गाँव में सब से बाद में पुत्रवधू बन कर आई लड़की को गणगौर की भाँति खूब सजा लिया जाता है। लगभग उसी अवस्था की एक ग्राम-कन्या को पुरुष की वेशभूषा पहना कर गणगौर का पति 'ईसर' बना लिया जाता है।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री पात्र राख से बनी गणगौर को और पुरुष पात्र उसी पदार्थ से निर्मित 'ईसर' की मूर्तियों को छोटी-छोटी चौकियों पर रखकर अपने-अपने सिर पर उठा लेते हैं। सिर पर रखी चौकियों का संतुलन बनाए रखकर 'गणगौर' और 'ईसर' बना युगल पूरे गाँव के सात चक्कर लगाता है। 'गाँव-फेरी' के दौरान वे दोनों नृत्य करते रहते हैं और उनकी पाज़ेबों तथा बिछुएओं की मंद्र सप्तक स्वर में झनझनाहट गाँव के शांत वातावरण को संगीतमय बना देती है। इस पूजा-नृत्य के लिए गणगौर-पूजन से पूर्व रात्रि को पैरों में महन्दी-रचाना अत्यावश्यक होता है।

ग्राम-भ्रमण में वस्तुत: गणगौर-पूजन के लिए कन्याओं को आह्वान करना ही उद्दिष्ट होता है। वे अपने-अपने घर से जल, दूध, पुष्प तथा नैवेद्यादि थालियों में सजा कर नाचती-गाती हुई उस स्थल पर पहुँचती हैं, जहाँ पर गणगौर-ईसर के सामूहिक-पूजन की व्यवस्था की जाती है। पूजा के समय नृत्य के साथ इस प्रकार के गीत गाए जाते हैं:

बनड़ी पूज रही गणगौर।
गुनगुनाती आई गणगौर।।
हरी-हरी दूब ल्यो।
गणगौर पूज ल्यो।।
राणी पूजे राज नै।
म्ह पूजे सुहाग नै।।
राणी को राज तपतो जाये।
म्ह को सुहाग बढ़तो जाये।।

इस प्रकार चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के पूरे पखवाड़े में इसी प्रकार संगीत-नृत्य चलता है। कभी चांद्र मास की तिथि में वृद्धि के कारण चैत्र का शुक्ल पक्ष सोलह दिन का हो गया होगा। दिन घटाना अशुभ माना जाता है और बढ़ाना 'शुभ'। इसी लिए यह लोकोत्सव सोलह दिन चलता है, जिसका संकेत भी इन तुकों में मिलता है:

म्हारों सोलह दिन को चालो रे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसर ले चाल्यो गणगौर।।

हरियाणा प्रदेश में इस अवसर पर किए जाने वाले नृत्य एवं पूजन को इन तथ्यों पर आधारित माना जाता है:

(i) 'ईसर' को 'शिव' और 'गणगौर' को पार्वती माना जाता है।

(ii) शिव को पौरुष का प्रतीक और गौरी को शक्ति स्वरूप में (मानने के कारण) इसमें वीर रस का पुट मिलता है। 'गणगौर' अमर सुहाग की दाता है, इसी लिए विवाह में 'भाँवरें' पड़ने से पहले कन्या से गणगौर का पूजन करवाया जाता है। उसकी सहेलियाँ इस गीत को गाकर नृत्य आरंभ करती हैं:

राईबर डोल रहा तोरण पर
बनड़ी पूज रही गणगौर।[9]

हिमाचल प्रदेश के रली-पूजन के समान हरियाणा की गणगौर से भी एक लोक कथा जुड़ी हुई है। यह बहुत कुछ राजस्थानी लोक कथा ही है। उदयपुर के राणा वीरमदास की पत्नी ने एक सुंदर बिटिया को जन्म दिया और उसका नाम 'गणगौर' रख दिया गया। ज्यों-ज्यों वह राज-कन्या आयु में बढ़ती गई, उसकी सुन्दरता की ख्याति भी पूरे देश में फैलती गई। बहुत से राज पुत्रों ने 'गणगौर' से विवाह हेतु राणा वीरमदास को प्रस्ताव भेजे। किन्तु पिता का मन तो अपनी बेटी को बूँदी नरेश ईसर सिंह के साथ ब्याहने का था। अत: विभिन्न राज्यों से विवाह का प्रस्ताव लाने वाले राजदूत निराश हो कर लौट जाते। इसी कारण गणगौर को वधू बनाने के इच्छुक युवक राजकुमार बहुत चिढ़े हुए थे।

राणा वीरमदास को विकट स्थिति में फँसा देखकर ईसर सिंह एक रात में उदयपुर के महलों में चोरी-छिपे पहुँच गए। उन्होंने गणगौर को अपना परिचय देकर बड़ी फुर्ती से घोड़े पर बैठाया और महल से भाग निकले। किन्तु वीरमदास से रुष्ट राजकुमार तो मौके की ताक में थे। जैसे ही उन्होंने बूँदी नरेश ईसर सिंह को गणगौर को ले जाते हुए देखा तो उन्होंने अपने घोड़े सरपट दौड़ाते हुए उनका पीछा किया।

रास्ते में चंबल नदी अपने पूर्ण वेग में बह रही थी। राजा ईसर सिंह घोड़े को अंधाधुंध भगाए जा रहे थे। अंधेरे में उन्हें नदी के जल की थाह न रही और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी पार करने के लिए घोड़े को चंबल नदी में ले गए। अथाह जल को घोड़ा झेल न सका और वह गणगौर तथा ईसर सिंह समेत बीच नदी में डूब गया।

कुछ लोगों का मत है कि भावी पति ईसर सिंह के साथ डूब जाने वाली गणगौर को सती मानकर ही "गणगौर लोकोत्सव" मनाया जाता है और नव विवाहिताओं के लिए चिर-सुहाग की कामना की जाती है।

(ग) चैत्र-नवरात्र के हरियाणवी मेले

चांद्र वर्ष के आरंभिक नौ दिनों में हरियाणा के बहुत से देवी-मंदिरों में मेले लगते हैं। किन्तु बनभौरी, गुड़गाँव, बेरी और थानेसर के भद्रकाली मंदिरों के मेले विशेष महत्वपूर्ण माने जाते हैं। पति और पत्नी गठजोड़ करके मंदिरो में पहुँचते हैं और अपनी मन्नत पूरी होने के उपलक्ष्य में चुनरी, मौली, पुष्पमाला, प्रसाद एवं धनराशि माता भगवती के चरणों मे भेंट करते हैं। बेरी (ज़िला रोहतक) में भीमेश्वरी माता का प्रसिद्ध मंदिर है। वहाँ पहुँचने वाले भक्त इस प्रकार की भेंट गाते सुने जाते हैं:

मुझ सेवक की लाज रख जगदम्बा बेरी आली हे।
मात संत हितकारी करी तन्नै सिंह सवारी हे।
मात सदा तेरे पै छत्र सुवर्ण साजै।
नगरकोट तज मेले के दिन बेरी आन बिराजै।।[20]

एक विद्वान ने इस धार्मिक स्थल एवं वहाँ लगने वाले नवरात्र मेले का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है:

"बेरी वाली देवी इस प्रदेश में बहुत प्रसिद्ध है। इस देवी के दो मंदिर हैं। रात्रि को शयन करने का मंदिर बस्ती के अंदर है तथा दिन के पूजन-पाठ का मंदिर बस्ती के बाहर एक तालाब के किनारे पर है। जनश्रुति के अनुसार ज्वालामुखी देवी की ही एक भीमा नाम की ज्वाला किसी भक्त के आग्रह करने पर बेरी आई थी और वही यह भीमादेवी है।.... यहाँ पर गधों का मेला भी देखने योग्य है। नवरात्रों के दिनों में देवी के मेले के साथ ही यह मेला भी यहाँ होता है। दूर से लोग गधे लेकर यहाँ आते हैं। अपने-अपने गधों को सजाते हैं और गधों की दौड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतियोगिता, भार-वहन प्रतियोगिता आदि करवा कर उनकी योग्यता का प्रदर्शन करते हैं। गधों के खरीदने-बेचने का व्यापार होता है। बढ़िया गधे का मूल्य हज़ार-पंद्रह सौ रुपए तक लग जाना सामान्य बात है।"[21]

बेरी वाली "भीमेश्वरी माता" की मूर्ति "चल" है। दिन में यह मूर्ति नगर से बाहर वाले मंदिर में पधारती है और सायंकाल में बस्ती में।[22]

तीनों नवरात्रों में चंडीगढ़ के समीप 'मनसा देवी' में भी यात्रियों का खूब जमघट होता है। प्राचीन मनसा देवी मंदिर के अतिरिक्त कुछ और ऊँचाई पर पटियाला के राजा द्वारा बनवाए देवी मंदिरों में भी श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ पड़ती है। थानेसर (ज़िला कुरुक्षेत्र) का भद्रकाली मंदिर भी शिव-सती प्रसंग से जुड़ा हुआ है। किन्तु जनश्रुतियों के कारण इसने सती संबंधी पौराणिक कथा से भिन्न रूप धारण कर लिया है। इस मंदिर के बारे में स्थानीय मान्यता का उल्लेख एक विद्वान ने इस प्रकार किया है:

"यहाँ युद्ध से पूर्व पाण्डवों ने विजय की कामना से काली माँ का पूजन एवं यज्ञ किया था। यह मंदिर देवी के 51 देवी पीठस्थलों में से एक है। कहते हैं कि विष्णु भगवान के सुदर्शन चक्र से कट कर माँ काली के दाहिने पैर की एड़ी यहाँ पर गिरी थी। यात्री देवी माँ के दर्शनों के साथ देवी-कूप में स्नान भी करते हैं।"[23]

## राजस्थान के नवरात्र-मेले

चैत्र और आश्विन के नवरात्रों में राजस्थान के गाँवों और नगरों में देवी-मेलों की धूम मची रहती है। किन्तु कुछ देवी-स्थलों के मेले अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनका विवरण प्रस्तुत है:

(क) **कैला देवी का मेला** : कैला देवी के मंदिर की स्थापना मीणा जाति के एक पटेल ने सन् 1114 ई0 में की थी। यह देवी यादववंशीय क्षत्रियों की कुलदेवी के रूप में पूजित है। मनौती पूरी होने पर अथवा कोई मनोकामना लेकर महिलाएँ पति का चरण स्पर्श करके पेट के बल यहाँ पहुँचकर देवी-स्मरण करती हुई 24 किलोमीटर का दुर्गम मार्ग तय करती हैं। देवी-भक्त माता का दर्शन कर 'कैला माता की जय' और 'लाँगुरिया बलवीर की जय' के उद्घोष से आकाश को भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुंजायमान कर देते हैं।

'लाँगुरिया' पवनसुत हनुमान का विकृत नाम है। कैलादेवी के मंदिर के सामने लांगुरिया भक्त की छतरी है। उन दोनों के बीच वाले चौक में 'चरखी चल रही बर के नीचे रस पी ले लांगुरिया' के मधुर गीत की टेक और अलगोजों की मस्त धुनें सुनकर युवक और युवतियों की टोलियाँ नाच उठती हैं।

कैला देवी का यह मेला करौली से 24 किलोमीटर दूर चैत्र कृष्ण अष्टमी से चैत्र शुक्ल अष्टमी तक लगभग एक पखवाड़े तक चलता है। यह मनोरम स्थल कालीसिल नदी के तट पर स्थित है। 'कैला देवी' भले ही 'लक्ष्मी-मंदिर' है, फिर भी यह एक शक्तिपीठ माना जाता है। इस विषय में एक विद्वान का कथन है:

"संगमरमर की सीढ़ियाँ चढ़ कर जैसे ही हम एक बड़े चौक में आते हैं तो प्रवेश-द्वार के ठीक सामने कैलादेवी और चामुंडा देवी की दो प्रतिमाएँ दिखाई देती हैं। कैला देवी वस्तुत: महालक्ष्मी की प्रतिमा है। अनेक धातुओं के मिश्रण से बनी कैलादेवी का सारा शरीर वस्त्रादि से ढका रहता है। दर्शकों को केवल मुखमंडल ही दिखाई देता है। कहा जाता है कि समूची प्रतिमा का दर्शन दुर्भाग्य का सूचक है। कहते हैं कि पुजारी के अलावा कोई भी व्यक्ति आज तक देवी का संपूर्ण रूप नहीं देख पाया।"[24]

(ख) **करणी माता का मेला** : 'करणी माता' वस्तुत: राजस्थान की एक लोकदेवी है। उसने मेहा जी पिता और देवल माई नामक माता के घर सन् 1387 में जन्म लिया था। किन्तु अनेक चमत्कारों के कारण यह कन्या एक लोकदेवी के रूप में पूजित है। कहते हैं कि जोधपुर एवं बीकानेर राज्यों की स्थापना करणी माता के आशीर्वाद से हुई थी। 'करणी माता' का मंदिर बीकानेर से 32 किलोमीटर की दूरी पर देशनोक (ज़िला बीकानेर) में स्थित है। यहाँ पर चैत्र एवं आश्विन के नवरात्रों में भारी मेला भरता है।

करणी (कर्णी) माता का मंदिर 'चूहों वाला मंदिर' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इसके निर्माण एवं विशेषता के संबंध में एक विद्वान का मत उद्धृत है:

"इस मंदिर का निर्माण बीकानेर के शासकों ने अपनी कुलदेवी करणी माता के आशीर्वाद से किया, जो स्वत: गणेश की भक्त नहीं थीं। लेकिन इस पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणपति के वाहन का अत्यधिक सम्मान यहाँ किया जाता है और कोई भक्त मंदिर में पूजा के समय किसी भी चूहे को हानि नहीं पहुँचा सकता। ..... इन चूहों को दूध और मिठाई खिलाने के लिए एक नियमित बजट होता है..... शत्रुओं से इनकी रक्षा करने के लिए परिसीमा में ताँबे के जाल भी बिछाए गए हैं। दर्शकों को मंदिर में घूमते समय सचेत रहने के लिए कहा जाता है। यदि किसी व्यक्ति से कोई चूहा मर जाए तो उसे इसके बदले में सोने का एक चूहा भेंट करना पड़ता है।"[25]

करणी माता के प्रति राजस्थान के जन समूह की आस्था का परिचय इस लोकोक्ति से अभिव्यक्त होता है:

मोती समो न ऊजलौ, चन्नण समो न काठ।
करणी समो न देवी, गीता समो न पाठ।।

(ग) **जीण माता का मेला** : 'जीण माता' भी 'करणी माता' की भाँति एक लोकदेवी है। वह अजमेर के राजा आनौजी की पुत्री थी और अपने चमत्कारों के कारण लोकदेवी के रूप में पूजित है। 'जीण माता' का मंदिर सीकर ज़िले में रेवासा गाँव के दक्षिण में आडाबाला गिरिमाला की उपत्यका में स्थित है। कहते हैं कि किसी बादशाह ने इस मंदिर को तोड़ने का प्रयास किया। किन्तु भौंरों ने शाही फ़ौज को बेहाल कर दिया। फलत: उन्होंने देवी को भेंट चढ़ाकर अपना पिंड छुड़वाया। चैत्र एवं आश्विन के नवरात्रों पर यहाँ भारी मेला लगता है।

## जम्मू कश्मीर के देवी-मेले

### (क) खीर भवानी

काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से लगभग 20 किलोमीटर की दूरी पर 'तुलमुला' नामक तीर्थ स्थान है। वहाँ के मंदिर में खीर भवानी (क्षीर भवानी) की पूजा हेतु ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी को एक मेला लगता है। लोक भाषा में 'खीर भवानी' को 'राज्ञन्या देवी' भी कहते हैं और यह मेला उसके जन्म दिवस के उपलक्ष्य में ही लगता है। इस मंदिर की मान्यता की पुष्टि हेतु कल्हण की 'राजतरंगिनी' में विद्यमान एक कथा का उल्लेख होता है। राजा जयपीड़ (सन् 753-784 ई॰) ने तुलमुला के पुजारी इत्तिला की जागीर ज़ब्त कर ली। इसी कारण इत्तिला पंडित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने राजा को शाप दे दिया। फलत: राजा के छत्र का सोने का बना खंभा गिर जाने से जयपीड़ बुरी तरह घायल हो गया और कुछ ही दिनों बाद संसार से विदा हो गया। इसी कथा द्वारा देवी राज्ञन्या के प्रति परम भक्ति को दृढ़ किया जाता है।

सत्रहवीं शताब्दी में कृष्ण पंडित्त टपलू नामक व्यक्ति ने इस मंदिर का पुनरुद्धार किया था। इसके समीप चश्मे को साफ़ करवाने पर एक विध्वस्त मंदिर का पता चला, जिसका पुनर्निमाण काश्मीर के महाराजा प्रताप सिंह (सन् 1885- 1925 ई॰) ने करवाया। भक्तजन देवी को दूध, चावल, चीनी, कुमकुम तथा 'मसवल' और 'यम्वरजल' नामक पुष्प अर्पित करते हैं। यह सारी पूजा-सामग्री समीपस्थ चश्में में फेंक कर 'जल' (क्षीर) की 'देवी' (भवानी) को भेंट की जाती है। चश्में की परिक्रमा करते हुए भक्तजन अपने भक्ति-परक लोकगीतों में माता क्षीर भवानी को सर्वगुण संपन्न एवं संसार रूपी महासागर से उद्धार करने वाली बताते हैं। उसकी सेवा करने से मनुष्य के समस्त दु:ख, दैन्य और भ्रम मिट जाते हैं। वह माता है और जीव उसकी संतान हैं। पथभ्रष्ट संतान को भी माता क्षमा करके अपने कटाक्ष मात्र से संसार से मुक्ति दिलवा देती है। इसी आश्य का एक लोकगीत प्रस्तुत है:

शुर छुस मअज्य भव अन्य चे रोस बअ खो॰ चान,
सअत्य-सअत्य आसतम मे रोज़अनी,
छुस बुछान संसार ज़्योठि खोत ज़्यूठुय,
यथ न अन्द, बुोठ तार, बेयि क्रुठुय,
सुय तीर यस करख कटाक्षुक बहानय,
सअत्य-सअत्य आसतम रोज़अनी।
योदवय बुलट्अ नेरि मअज्य काहं संतान,
घरि घरि तोति तस छि मअज्य बखशान।[26]

## (ख) खीव की ज्वाला देवी

श्रीनगर से लगभग 20 किलोमीटर की दूरी पर एक छोटा-सा गाँव खीव है। वहाँ के ज्वाला देवी मंदिर में हर वर्ष आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को एक बड़ा मेला लगता है। यात्री पहाड़ी के नीचे बहने वाले चश्में में स्नान करके देवी माता को अपनी-अपनी भेंट चढ़ाते हैं। छिलकेदार चावलों में बकरे के गुरदे तथा कलेजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का माँस मिला भोग ही श्रद्धालुओं को दिया जाता हैं।

### (ग) वैष्णो देवी

जम्मू (काश्मीर) नगर से 45 किलोमीटर की दूरी पर एक पहाड़ी पर माँ शक्ति का 'वैष्णो देवी' मंदिर स्थित है। भक्तजन हाथों में मौली, सिर पर गोटे वाली लाल चुनरी बाँधकर तथा गले में मालाएँ पहने और हाथों में लाठियाँ उठाए "जय माता की" गाते हुए चैत्र, सावन एवं आश्विन में देवी दर्शन के लिए आते हैं। वे इलायची दाना, परमल, नारियल आदि प्रसाद के रूप में लाते हैं।

## दूबड़ी

### नामकरण और उत्सव की तिथियाँ

"दूबड़ी" लोकपर्व हरियाणवी घरों में भाद्रपद शुक्ला अष्टमी और आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। नई उगी हुई मुलायम घास के लिए संस्कृत शब्द है 'दूर्वा'। उसका अपभ्रंश रूप 'दूब' (Panicum dactylon) हिन्दी में प्रचलित है। बालक के जन्म के समय, नववधू के सुसराल में प्रवेश के अवसर पर अथवा किसी भी मांगलिक मौके पर घर का बर्तन-चौका करने वाली मेहरियाँ या नाइनें यजमान परिवार को 'दूब' भेंट किया करती हैं। इस हरी-भरी घास को भेंट करने का यही आशय होता है कि भले ही हम इसकी तरह तुच्छ-से प्राणी हैं, फिर भी हम आपको जीवन में हरा-भरा (=सुखी संपन्न) देखने के लिए शुभकामनाएँ भेंट करती हैं।

भादों के शुक्ल पक्ष की आठवीं तिथि वाली पहली दूबड़ी मनाने के समय हरियाणा की महिलाएँ अपनी-अपनी कलाई पर पीले रंग के धागे बाँधने से पहले जो छंद सोलह बार पढ़ती हैं, उसमें नववधू को ससुराल में जा कर संपन्नता प्रदान करने एवं पुत्रवती होने की आशीष दी जाती है। यह चौपाई इस प्रकार होती है:

दूबो ए दूबड़िया
सौहरे जाये री घर भरिया
गोद खिलाये री घर भरिया
सासू जाये री घर भरिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में यह लोकपर्व केवल एक ही दिन मनाया जाता है और वह भी पितृपक्ष (श्राद्धों) की अष्टमी को। उस दिन आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी होती है। पंजाबी स्त्रियाँ इसे 'महालक्ष्मी के धागों का त्योहार' कहा करती हैं। किन्तु पूजा के समय मनसने तथा लक्ष्मी-आराधना में सम्मिलित होने वाले सदस्यों को जो मीठी रोटियाँ प्रसाद के रूप में बाँटी जाती हैं, उन्हें 'दूबड़ी' कहा जाता है।

पंजाब की यह दूबड़ी पतली रोटी होती है, जिसे गुड़ की चासनी में आटा गूँध कर बनाया जाता है। चकले पर आटा बेलकर बनाई गई रोटी पर चाकू से आड़ी-सीधी धारियाँ खींच दी जाती हैं ताकि तवे पर सेंकने से उसमें घी पूरी तरह रच जाए। इस रोटी को 'मीठा परांठा' अथवा 'मीठी परांठी' कहने की बजाय 'दूबड़ी' केवल इस लिए पुकारा जाता है, क्योंकि यह बहुत पतली (दुबली) होती है। मुख-सुख के कारण और 'दुब्ब' ('दूब' का पंजाबी उच्चारण) से शब्द-साम्य के नियमानुसार यह दुबली से 'दुबड़ी' ('दूबड़ी') बन गई तथा इस प्रकिया में 'ल' का परिवर्तन 'ड़' में हो गया है।[27]

## पुजापा :

हरियाणा में भाद्रपद शुक्ला अष्टमी को केवल पीले रंग के धागे ही बाँधे जाते हैं, जो कि लगभग पंद्रह-सोलह दिनों बाद आश्विन कृष्णा अष्टमी को खोल दिए जाते हैं। उस दिन पूजा हेतु चौके में हलवा-पूरी और फल-फलारे बनते हैं। मीठा मिले गेहूँ के आटे के छोटे-छोटे टुकड़े काट-काट कर कड़ाही में घी से तल लिए जाते हैं। इन्हें ही 'फल-फलारे' का नाम दिया जाता है, जिन्हें आम बोल चाल में 'शकर पारे' कहा जाता है। पंजाब में इसके स्थान पर 'दुबड़ी' बनाने का ही रिवाज है।

'दुबड़ी' शब्द ही उच्चारण में 'दूबड़ी' बन गया है, जो कि एक कौटुम्बिक लोकपर्व है। यह सूर्यास्त के बाद चौके में मनाया जाता है। कुटुम्ब की पुरोहिताइन दिन में किसी समय चिकनी मिट्टी के बने खिलौने दे जाती है। किश्तीनुमा आधार पर आधे-आधे इंच की दूरी पर चिकनी मिट्टी के दो चौकोर टुकड़े खड़े करके उनमें दो पतली तीलियाँ खोंस दी जाती हैं। एक-एक टुकड़े में धँसी इस तीली के ऊपर चिकनी मिट्टी की टिकिया में चार-छः जौ के दाने चारों


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर जड़ दिए जाते हैं। छतरी नुमा इन खिलौनों को 'घोड़े' कहा जाता है और इनका किश्तीनुमा आधार पालकी-जैसा लगता है। ये घोड़ा-पालकी के आकार के खिलौने गिनती में दो होते हैं। हरियाणा में भी पूजा-स्थल पर छत्रधारी घोड़े वाला खिलौना रखा जाता है।

संध्या तक हरियाणवी महिलाएँ 'फल-फलारे' और पंजाबी गृहस्वामिनियाँ 'दुबड़ीआँ' तैयार करके चौके में चकले पर 100 ग्राम के लगभग गेहूँ रख लेती हैं। इस पर इन घोड़ों के साथ पुरोहिताइन द्वारा लाए गए चिकनी मिट्टी के दीपक सरसों के तेल से भर कर जला दिए जाते हैं। इसके बाद पंजाब के परिवार का प्रत्येक सदस्य सूत के बने और हल्दी में रंगे पीले रंग के धागों में से एक-एक उठा कर अपनी-अपनी कलाई पर बाँध लेता है।

हरियाणा के जिन घरों की स्त्रियों ने पीले रंग का यह धागा भादों की शुक्ला अष्टमी को अपनी कलाई पर बाँधा था, वे आश्विन कृष्णा अष्टमी को 'घोड़ों' के सामने धागा खोलते समय यह छंद सोलह बार पढ़ती हैं:

अम्बोरी आम तलै,
नीम्बों री नीम तलै।
बूढ़ा ल्यावें बूढ़ी छाणै,
महा माई लच्छमी।

इसके बाद गेहूँ के सोलह-सोलह दाने हाथ में ले कर उपर्युक्त छंद हर बार बोल कर एक-एक दाना 'घोड़ो' पर छोड़ जाते हैं। पूजा के उपरांत फल-फलारों का भोग सभी को दिया जाता है। पंजाब में पूजा-स्थल पर उपस्थित लोगों को 'दुबड़ी' का प्रसाद दिया जाता है।

## पंजाबी पूजा विधि की भिन्नता

पंजाब में चकले पर घोड़ों और सरसों के तेल से भरे चिकनी मिट्टी के दीपकों तथा गेहूँ के साथ एक सुपारी मौली से लपेट कर रख दी जाती है। इसे विघ्न-विदारक गणेश जी का प्रतीक माना जाता है। जब सभी लोग सात गाँठों वाला हल्दी में रंगा धागा हाथ पर बाँध लेते हैं तो गृहस्वामिनी प्रत्येक व्यक्ति को गेहूँ के कुछ दाने पकड़ा देती है। पूजा करवाने वाली यह गृहस्वामिनी परिवार की


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब से बड़ी स्त्री होती है, चाहे वह सधवा हो या विधवा। वह वृद्धा भी हो सकती है और युवती भी। यह गृहस्वामिनी चकले से उठा कर एक दीपक कलुछी में रख लेती है और दूसरा गेहूँ के ढेर पर ही जलता रहता है।

गृहस्वामिनी कलुछी में रखा हुआ दीपक सात बार चकले से लेकर रसोई की नाली तक ले जाती और फिर लौटा लाती है। ऐसा करते समय परिवार के समस्त बालक उस की भुजा पकड़ कर कहते हैं: "माई! माई!! किआ टोलदी" (माता! हे माता!! क्या ढूँढ़ रही हो ?)।

उस देवी का उत्तर होता है: "दुद्घ पुत्त धन लच्छमी" (दूध, पुत्र और धन-लक्षमी)।

इस प्रकार के उत्तर-प्रत्युत्तर के साथ सातवें फेरे के बाद गृहस्वामिनी अपनी कलुछी में रखा दीपक रसोई की नाली पर धर देती है। तदनंतर सभी उपस्थित सदस्य अपने-अपने हाथ में रखे दाने चकले पर छोड़ देते हैं और कलाई में बँधा धागा खोलकर वहीं पर चढ़ा देते हैं। 'दुबड़ी' का प्रसाद प्राप्त होने पर सभी श्रद्धालुजन विदा होते हैं। मनसी हुई दुबड़ी और गेहूँ के दाने पुरोहिताइन को भेंट कर दिए जाते हैं। अगले दिन छत्रधारी घोड़े तथा धागे बच्चों को खेलने के लिए प्राप्त हो जाते हैं।

## लोकाचारों का वैज्ञानिक विश्लेषण

छत्र और पालकी वाले चिकनी मिट्टी के खिलौने विवाहिता स्त्री एवं माता को इस बात का स्मरण करवाते हैं कि वह इस प्रकार के शुभ-चिह्नों के साथ इस परिवार की "गृह लक्ष्मी" बनकर आई थी। एक सप्ताह में सात दिन होते हैं और पूरे वर्ष में यही कालचक्र घूमता है। सात गाँठों वाला कलाई पर बँधा पीला धागा और चौके में कलुछी पर दीपक रख कर सात फेरे लगाना कालचक्र की गति की ओर ध्यानाकृष्ट करते हैं।[28] भादों की पूर्णिमा समेत आश्विन के कृष्ण पक्ष के पन्द्रह दिनों को मिलाकर श्राद्धों के सोलह दिन होते हैं। चकले पर डाले जाने वाले गेहूँ के सोलह दाने इसी तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि पितृ पक्ष का यह सोलह दिनों का शोक काल भी इसी प्रकार समाप्त हो जाएगा।

'दूबड़ी' पितृ-पक्ष के आठवें दिन होती है। यह श्राद्ध-पक्ष का मध्यांतर होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उसी दिन से चिकनी मिट्टी के चाँद-तारे बनाने शुरू किए जाते हैं, जो कि आठ दिनों बाद 'साँझी' के दरबार में सजाए जाते हैं। कुछ घरों में दूबड़ी-पूजन के लिए लाए गए चिकनी मिट्टी के घोड़ों (छत्र-पालकी) से पूजा के बाद अगले दिन थोड़ी-सी मिट्टी लेकर ढेर-सी चिकनी मिट्टी में मिलाकर 'साँझी के दरबार' की सामग्री तैयार करने की परंपरा भी है।[29]

एक-एक करके गेहूँ के सोलह दाने चढ़ाने के पीछे एक और रहस्य छिपा है। किसान गेहूँ की खेती बोने के समय थोड़े-थोड़े दाने अपने खेत में बखेरता है। किन्तु वही दाने आगामी दिनों में भरपूर खेती बनकर फिर मानव-प्राणियों की खाद्य-सामग्री बन जाते हैं। इन दानों को बुवाई के लिए त्यागते समय किसान को कोई दर्द नहीं होता, क्योंकि कृषि-चक्र में यही प्रक्रिया अपनाना आवश्यक होता है। इसी बहाने परिवारजनों को यह शिक्षा दी जाती है कि वे जन्म-मरण के चक्र की वस्तु-स्थिति को समझकर सृष्टि के उत्पत्ति, विकास और ह्रास के रहस्य से अवगत हों और परलोकवासी प्रियजनों से वियोग के कारण शोकग्रस्त न हों।[30]

## पुणछी-भाषी क्षेत्र की "दरूबड़ी"

जम्मू-काश्मीर प्रांत के जम्मू एवं आस-पास के पुणछी-भाषी ज़िलों में 'दूबड़ी' शब्द केवल 'दरूबड़ी' ही नहीं बना है, बल्कि इस लोकपर्व को मनाने की तिथियों में भी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। पुणछी लोक साहित्य के एक अन्वेषक का कथन है :

"राखी से पंद्रह दिन बाद यह (दरूबड़ी) त्योहार आता है। जन्म अष्टमी के व्रत से 8 दिन बाद रक्षा बंधन और भादों मास भाव दुर्गा अष्टमी दिवस पर यह दिन (त्योहार) बड़े चाव के साथ मनाया जाता है।"

त्योहारों का यह काल-क्रम काफ़ी अटपटा है। 'रक्षा बंधन' सदैव कृष्ण जन्माष्टमी से आठ दिन पहले होती है। कृष्ण जन्माष्टमी से पन्द्रह दिन पश्चात् शुक्ल पक्ष की अष्टमी का संबंध दुर्गा भवानी से नहीं, प्रत्युत् भगवान कृष्णा की प्रिया राधा जी से जोडा जाता है।[31] वस्तुत: जम्मू क्षेत्र में श्री राधा जी के जन्म दिवस के अवसर पर ही भादों शुदि अष्टमी को 'दरूबड़ी' लोकपर्व मनाया जाता है। पंजाब और हरियाणा की 'दूबड़ी' से इस क्षेत्र की 'दरूबड़ी' पंद्रह दिन पहले


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनाई जाती है।

जिन घरों में 'दरूबड़ी' मनाई जाती है, वहाँ की लड़कियाँ उस दिन उपवास करती हैं। कुछ परिवारों में मीठा डाल कर बड़ी-बड़ी रोटियाँ बनाई जाती हैं, जिन्हें पुणछी भाषा में 'रोट' कहा जाता है। ये रोट परिजनों और बंधु-बाँधवों को उपहार के रूप में भी भेंट किए जाते हैं। कुछ घरों में इन रोटों को कूट कर चूरी बनाई जाती है। मोटी रोटियाँ होने के बावजूद इस पूजा-पर्व के लिए 'राधा अष्टमी' नाम की बजाय 'दरूबड़ी' संज्ञा का प्रचलन हरियाणा की 'दूबड़ी' के अनुरूप ही होता है। संभव है आधुनिक हरियाणा क्षेत्र के कुछ लोग पुणछी-क्षेत्र में जा बसे हों और तभी यह लोकपर्व वहाँ पहुँच गया हो।

नाम-साम्य के बावजूद पुणछी क्षेत्र में इस पर्व के लोकाचार 'दरूबड़ी' को स्वतंत्र सत्ता प्रदान करते हैं। उपवास करने वाली सभी स्त्रियाँ किसी जल स्रोत के समीप एकत्र हो जाती हैं। प्राथमिकता नदी अथवा कुएँ को दी जाती है। किन्तु यदि यह निकट न हों तो गली-मुहल्ले के चौक में लगे नल को ही मिलन-स्थल बना लिया जाता है। सभी स्त्रियाँ अपने-अपने घर में बना रोट अथवा चूरी थाली में सजा कर और मक्खियों तथा धूल से बचाने के लिए कपड़े से ढक कर पूजा-स्थल पर पहुँचती हैं।

निश्चित पूजा-स्थल पर मुहल्ले की सब से बड़ी अवस्था की महिला अन्य स्त्रियों द्वारा लाई गई थाली की सामग्री को जलस्रोत के ऊपर घुमाती है, जिसे 'लोक बोली में 'जल ते वारणा' (न्योछावर करना) कहा जाता है। 'दरूबड़ी' की महिमा उस परिवार में अधिक होती है, जहाँ उस वर्ष किसी बेटे का विवाह हुआ हो अथवा किसी पुत्रवधू ने नए बेटे को जन्म दिया हो। ऐसे सौभाग्यशाली परिवारों की चूरी जल-देवता को अर्पित करने को प्राथमिकता दी जाती है, यह एक अलिखित नियम होता है। चूरी की थाली जल-स्रोत पर घुमाते समय वयोवृद्धा तथा यह सामग्री जल-देवता को भेंट करने के लिए आने वाली स्त्रियाँ मिलकर निम्नलिखित लोकगीत गाती हैं:

दरूबड़ी दरूबा हे-हू
दरूबड़ी न विआह हूआ हे-हू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राणी मंगे राणे की
मैं मंगाँ सुअंग हे-हू
कोठार-कोठार बिंदी दा भंडार हे-हू
रत्ते पीड़े बैठीए गल फुल्लाँ हार हे-हू
तिल फुले बाड़ फुले हे-हू
अद्धी मैं सारी तूँ हे-हू
छलेरी गाँ, छलेरा बच्छा
लटकै गाँ, हिणके बच्छा हे-हू
कच्चा तूँ, पक्का मैं हे-हू
एक तूँ, एक मैं हे-हू
एक तूँ, एक मैं हे-हू।[32]

इस लोकगीत में गाय एवं बछड़े के प्रतीकों द्वारा सधवा को पुत्रवती होने की शुभ कामनाएँ भेंट की जाती हैं। जिनके परिवार में नया बालक जन्मा होता है, उनके हेतु भी मंगल कामनाएँ इन्हीं पंक्तियों में निबद्ध रहती है। गीत की पूर्ति के पश्चात् 1-16 तक की गिनती गिनी जाती है, मानो भविष्यवाणी हो रही हो कि तुम लोगों की प्रार्थना एवं शुभेच्छाएँ "सोलह आने सच" होंगी।

जिस परिवार में बेटे का जन्म उसी वर्ष हुआ हो, उनकी पूजा-सामग्री की थाली घुमाते हुए लोकगीत का आरंभ इस प्रकार होता है:

"दरूबड़ी दरूबा, हे-हू
दरूबड़ी के घर मुंडा होआ, हे-हू।"

शेषांश वही रहता है। सभी परिवारों में जो रोट सेंके जाते हैं, उनमें सब से पहले बनाया गया 'रब्ब दा' (भगवान को अर्पित) कहलाता है। यह रोट किसी ब्राह्मण को ही भेंट किया जाता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य के हिसाब से एक-एक रोट बनाना अत्यावश्यक होता है, भले ही वह कूट कर चूरी के रूप में खाया जाए अथवा रोटी की तरह तोड़-तोड़ कर। जल स्रोत पर पूजा के उपरांत पास में रखी बालटी में से अखरोट, खीरे आदि घुटने पर रखकर तोड़े जाते हैं। किन्तु यह एक ही बार में टूटना चाहिए। टूटे हुए अखरोट की गिरी या खीरे के टुकड़े प्रसाद के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में बाँट दिए जाते हैं।

## साँझी

नामकरण – बालक-बालिकाओं द्वारा अपने नन्हे-मुन्ने हाथों से बनाई गई मिट्टी की मूर्तियाँ को दीवार पर सजा कर "गौरी पूजन" किए जाने वाले लोकपर्व का नाम ही "साँझी" है। "साँझी" लोकपर्व के नामकरण और व्युत्पत्ति में निम्नलिखित धारणाएँ जुड़ी हुई हैं:

(क) "साँझी" के दरबार की सामग्री तैयार करने में परस्पर सहयोग की भावना निहित रहती है। सभी बच्चे मिलकर लोक मूर्तियाँ बनाते हैं।

(ख) इसमें स्त्रियों द्वारा कल्पित नवदुर्गा के "साँझे" (संयुक्त) रूप की अवतारणा होती है।

(ग) "साँझी" श्राद्धपक्ष (आश्विन) की अमावस्या की 'साँझ' को घर के आंगन अथवा किसी कमरे की दीवार पर सजाई जाती है। नवरात्र की प्रतिपदा से लेकर आश्विन की अष्टमी तक के नौ दिन में बालक-बालिकाएँ मिलकर इसका पूजन करते हैं। नौवें नवरात्र को सुबह पूजन करने के बाद इसे जल में प्रवाहित कर दिया जाता हैं। बालकों की तुकबाज़ी से इसका किंचित संकेत मिलता है, यथा:

साँझी आई साँझ नूँ,
गैल बसंता पूत।
वास करदी नौराते' च,
सिरांदी जल बहाते' च।।[33]

## साँझी के दरबार की सामग्री

श्राद्धपक्ष की अष्टमी को 'दुबड़ी' अथवा 'महालक्ष्मी के धागों' का पर्व मनाने के बाद हरियाणा और पंजाब की बालिकाएँ तथा बालक अपने-अपने घर में "साँझी" सजाने के लिए चिकनी मिट्टी से चिड़ियाँ, मोर,. सूरज, चाँद और चंदौवे बनाने लगते हैं। 'चदौवे' तारों को कहा जाता है और उनकी गिनती अन्य खिलौनों की अपेक्षा अधिक होती है। आश्विन बदि त्रयोदशी अथवा चतुर्दशी तक लगभग एक सप्ताह में ये खिलौने सूख जाते हैं और इन पर सफ़ेदी तथा वस्तु के सही रूप को उभारने वाले रंग पोत दिए जाते हैं। नीली-हरी रेखाओं एवं चित्तियों वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोर और गेरुए रंग का सूरज बाल-मनोकल्पना को अभिव्यक्त करता है। अर्द्धवृत्ताकार चन्द्रमा और पाँच-सात उभरे हुए कोनों वाला खिलौना 'चन्दौवा' (=चाँद का छोटा भाई 'तारा') बन जाता है।

मुहल्ले के मोड़ अथवा बाज़ार की चौमुहानी पर लगी कुम्हार की दुकान से "साँझी माई" की आकृति बनाने के लिए उसका चेहरा, हाथ एवं पैर खरीद लिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त 'पेडू', 'डूमणी' 'ब्राह्मणी' तथा 'काला-काना' चोर की पूर्ण आकृतियाँ भी खरीद ली जाती हैं। 'पेडू' वस्तुतः 'पेटू ब्राह्मण' या 'विदूषक' की व्यंग्यात्मक मूर्ति होती है और 'डूमणी' एक नर्तकी। 'ब्राह्मणी' की मूर्ति को साँझी का भोजन बनाने वाली स्त्री माना जाता है। उलटी टँगी मूर्ति 'काला-काना चोर' कहलाती है, जो 'साँझी' के आभूषण चुराने की इच्छा से आने के कारण पकड़ा जाने पर उलटा लटकाया होता है।

गोरे चहरे वाली साँझी माई के नाक में नथुनी, कानों में झुमके, हाथों में अंगूठियाँ, छोटे-छोटे बाजुओं में चूड़ियाँ तथा पैरों में छल्लियाँ और पाजेबें कुम्हार स्वतः ही पहले से चित्रित कर देता है। घाघरा, चोली और चुनरी ही 'साँझी' का मुख्य परिधान होता है, जो पंजाब एवं हरियाणा में एक समान चलता है। किन्तु पंजाब के गाँवों में कई जगह साँझी सलवार, कुर्ते तथा चुनरी में भी सुसज्जित देखी गई है। साँझी के ये सभी वस्त्र चमकीले रंगदार काग़ज़ के बने होते हैं। आधुनिक प्रभाव के कारण कहीं-कहीं खिलौना नुमा घड़ी भी उसकी कलाई में लटका दी जाती है। 'डूमणी' और 'ब्राह्मणी' के पुतले बहुत छोटे होते हैं और उन्हें भी रंगीन काग़ज़ के कपड़े पहनाए जाते हैं। कुछ ग्रामीण ब्राह्मण परिवारों में साँझी के सारे शरीर को केवल लाल कपड़े के एक बड़े टुकड़े से ढाँपने की प्रथा भी है।[34] दीवार को खूब लीप-पोत कर गाय के गोबर में साँझी का दरबार सजाने की प्रथा पंजाब, हरियाणा और इन प्रदेशों से सटे हिमाचल प्रदेश के कुछ गाँवों में समान रूप से दिखाई पड़ती है।

## पूजा-अराधना की विधि

साँझी का थापा आश्विन की अमावस्या की शाम को लगाने की प्रथा सर्वत्र एक-जैसी है। इसके लिए ब्राह्मण से मुहूर्त निकलवाने की आवश्यकता नहीं समझी


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती। आठ-नौ दिन के पूजन में भी ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणी की कोई भूमिका नहीं होती। साँझी-स्थापना के समय खेतों से मिट्टी ला कर तथा भूमि पर बिछाकर उसमें जौ बो दिए जाते हैं। इस सामग्री को आक अथवा एरंड के पत्तों से ढक दिया जाता है ताकि इनकी गर्मी से जौ शीघ्र उग आएँ। लगभग नौ दिनों में उगने वाले 'जवों' को 'गौरजा' कहा जाता है; जिसका अर्थ है गौरी की कृपा से उत्पन्न अर्थात् दुर्गा के गौर (गोरे) रूप की देन। अमावस्या की संध्या को 'साँझी' का गृह-प्रवेश होता है। बाल-पुजारिनें उस शाम को 'साँझी-पूजन' एवं नैवेद्य-अर्पण नहीं करतीं। उनकी बोली में उस समय साँझी का उपवास होता है। मानो मायके आकर अपने पति-विछोह के कारण साँझी को खाद्य-पदार्थों से अरुचि हो गई हो।

आश्विन प्रतिपदा को प्रात: सात-आठ बजे नहा-धो कर कन्याएँ साँझी-पूजन का श्री गणेश करती हैं। बहुधा वे अपने छोटे भाइयों को भी साथ ले कर अपने घर में पूजा करने के बाद दूसरे घरों में इस कार्य हेतु जाती हैं। इस प्रकार क्वार शुक्ला अष्टमी तक पूरे आठ दिन तक प्रात: एवं सायं कालों में प्रतिदिन साँझी की आराधना की जाती है। पूजा-अर्चना का आरंभ आरती से होता है। दीपकों से भरी थाली बारी-बारी से घुमाती हुई लड़कियाँ सात बार यह लोकगीत गाती हैं। पंजाब में बहु प्रचलित इस लोकगीत के अनेक रूपांतरों में से एक की बानगी देखिए:

पहली आरती धराँ कसार, जीवे मेरा वीर पिआर।
वीर पिआर दीआँ दो अड़ीआँ, दो जड़ीआँ, दो शिव
दवाले खड़ीआँ।
नरैण हटड़ी मैं पूजा तेरी पट्टड़ी, मैं पूजाँ तेरे पैर।
निरंजन तेरी काया, सड़प्पे लेंदी माइआ,
मैं हर दा भजन पाइआ।35

इसी प्रकार 'दूजी आरती', 'तीजी आरती' शब्द क्रमानुसार जोड़कर 'सातवीं आरती' कहकर यह लोकगीत सात बार गाया जाता है। 'आरती गीत' के बाद साँझी की माँगों की चर्चा होती है, जिसमें गोबर, चुनरी, गहने, चूड़ियाँ और सैंडल दिलाने तक का उल्लेख होता है। ऐसे लोकगीत में शुरू में कन्याओं की बेबसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बाद में इच्छा पूर्ति हेतु सूझ-बूझ का ज्ञान भी होता है, यथा:

मेरी साँझी तां मंगदी लाल पीलीआँ चुन्नीआँ[36]
मैं कहाँ से लाऊँ साँझी लाल पीलीआँ चुन्नीआँ
मेरा वीर बजाजे दा साथी[37]
मैं वहाँ से लाऊँ साँझी लाल पीलीआँ चुन्नीआँ

फिर एक लोकगीत में साँझी के आभूषणों की माप-तोल, भाई-भतीजों की गिनती तथा परिचय, पेडू एवं डूमणी संबंधी लोकगीतों का पंजाबीकरण केवल उन्हीं परिवारों में मिलता है, जिनके रिश्ते-नातेदार काँगड़ा (हिमाचल प्रदेश) में बसे होते हैं। इससे यह निर्णय किया जा सकता है कि गीत, संगीत और नृत्य के साथ प्रत्येक लोक पर्व को मनाने वाले हिमाचल वासियों की यह अनूठी देन 'साँझी' पूजन के अवसर पर पंजाबी रंग में झलकती है। 'पेडू' के साथ हास-परिहास मूलक प्रश्नोत्तरी सुनिए:

मैं तैनूँ पूछाँ पेडू !
सौहरे की करदा सी, की करदा सी?
सालीआँ कसीदा कड्ढन,
गब्भे पोत्थी पढ़दा सी।
पढ़दा सी, पढ़ांदा सी,
लाल बन्नो लिआंदा सी।[38]

'डूमणी' संबंधी 'कांगड़ा' का लोकगीत देखिए:

नी मुइए डूमणीए !
धरै नी जुड़दा सुक्का टुकडू, बाहर शकार पकाया।
नी मुइए डूमणीए !
धरै नी जुदड़ा टुट्टा मजोलू,[39] बाहर पलंघ ते सौंदे।
नी मुइए डूमणीए !
दे मुई दी नी नरेलू[40], तिस पर बाजे बजदे।
नी मुइए डूमणीए !
घरै नी जुड़दा सुक्का तंबाकू, बाहर सराबाँ पीदें। ..... नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नालागढ़ (हिमाचल प्रदेश) के लोकगीत से 'आरती' का एक नमूना प्रस्तुत है:

देवी दर्शन को जाना पड़ेगा,
ज़रूर देवी दर्शन !
भईया चढ़ावे धवजा नारियल
उसकी बुकड़ चड़ावे फुल्ल ..... देवी दर्शन।
जै भाई, जै भैने !
जै भाई, जै भैने !

हरियाणा में "साँझी-पूजन" के अनेक लोकगीत मिलते हैं। सभी बानगियों का सामूहिक रूप इस लोकगीत में बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है, यथा:

नौ नौ नौरते संझा माई के।
सोलाँ कनागत[41] पितरां के।।
उठ माई बैठ माई खोल दे पाट।
मैं आई तन्ने पूजण नै।।
पूज पिछोकड़ कै फल लागे,
भाई भतीजे पूरे पचास।[42]
कड़वी कचरी कड़वी बेल,
पूत फलियाँ तेरी बेल।
मक्का दे री मक्का दे,
तेरे आवे बोहडिआ[43] धक्का दे।

इस प्रकार के कई लोकगीत गाने के बाद लड़कियाँ अगले दिन फिर साँझी पूजन के लिए आगमन का विश्वास काव्यमयी भाषा में दिलवाकर नैवेद्य-अर्पण करती हैं। छोटी-छोटी थालियों में रखी गई खीलें, बताशे, बर्फ़ी, कसार अथवा अन्य कोई भी मिष्टान्न – जो भी कोई लड़की अपने घर से लाई हो क्रमशः साँझी, ब्राह्मणी (ब्राह्मणी), डूमनी और पेडू की मुँह-जुठलाई के पश्चात् 'भोग' के रूप में सभी को बाँट दिया जाता है। आश्चर्य की बात है कि मिष्टान्न भेंट के समय 'काने कांले चोर' की मुँह जुठलाई करके कन्याएँ उसके सभी दोषों को भूल कर अपनी उदारता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का परिचय देती हैं।

आरती-पूजा का यह क्रम क्वार मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तक ही पंजाब में चलता हैं। किन्तु हरियाणा में अगले दिन विजयदशमी की प्रात: तक। यह साँझी-विसर्जन का दिन होने के कारण 'साँझी' का उपवास-काल भी होता है। इसी लिए कन्याएँ लोकगीत तो पिछले दिनों की तरह गाती हैं। किन्तु साँझी को प्रसाद भेंट नहीं किया जाता, मानो विदायगी की वेला आ जाने के कारण साँझी उदास हो।

पूजा-आरती के बाद 'साँझी' के स्मृति-चिह्न के रूप में एक-दो तारे दीवार पर छोड़ कर उसके दरबार की सारी सामग्री एक टोकरी में बटोर ली जाती है। अमावस्या को बोए गए जौ के जवों (गौरजा) का थोड़ा-सा अंश वहीं छोड़कर शेष सभी जवे साँझी वाली टोकरी में रख लिए जाते हैं। टोकरी की यह सारी सामग्री उठा कर गीत गाती हुई लड़कियाँ इसे किसी नदी में 'सिरा' (=बहा) देती हैं। साँझी के प्रसाद के रूप में 'गौरजा' के हरे-पीले तिनकों का कुछ अंश लेकर साँझी की "भक्तिनें" घर लौटती हैं। गौरजा के यही जवे दूरस्थ स्थानों में रहने वाले भाइयों को डाक द्वारा भेज दिए जाते हैं ताकि विजय दशमी के पूजन के समय बहन की भेंट भाई तक पहुँच सके। डाकखानों में दशहरे की छुट्टी के कारण बहन का यह मधुर उपहार चाहे 'विजय दशमी' से दो-एक दिन बाद ही प्राप्त होता हो, फिर भी अपना कर्तव्य निभाने से ही बहन के मन को संतोष हो जाता हैं।

## लोकाचारों में कतिपय भिन्नताएँ एवं भाव-साम्य

हरियाणा के कई ज़िलों में 'साँझी' का लोकपर्व मनाया जाता है। किन्तु पंजाब में यह पुआधी बोली वाले क्षेत्र के पटियाला, संगरूर, रोपड़ तथा बठिंडा तक ही सीमित है। फ़तेहगढ़ साहिब ज़िले (पंजाब) के बसी पठानाँ शहर में साँझी मंदिरों में भी लगाई जाती है। वहाँ की साँझी में गोबर से बने 'ऊँ' और स्वस्तिका को चिकनी मिट्टी के सितारों से सुसज्जित भी देखा गया है।

पंजाब के कंडी क्षेत्र (हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा ज़िले की तराई), गुरदासपुर तथा अमृतसर ज़िलों में आश्विन के नवरात्रों में 'साँझी' के स्थान पर 'माता-पूजन' नाम से दुर्गा की आराधना होती है। इस अवसर पर चिकनी मिट्टी से माता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्ति के साथ कंजक (कमल), सूर्य, गुफ़ा, चंद्रमा तथा तारे दीवार पर बनाकर फ़र्श पर जौ बोए जाते हैं। पंजाब के पुआधी क्षेत्र और हरियाणा की तरह यह कार्य आश्विन की अमावस्या को नहीं, बल्कि पहले नवरात्र को संपन्न होता है। थापे के साथ-साथ 'माता-पूजन' के लोकगीतों में भी पर्याप्त भिन्नता मिलती है।

जब अकेले पंजाब में ही लोक रुचियों की भिन्नता मिलती है तो 'साँझी' पर हरियाणवी छाप भी अपनी विलक्षणता प्रकट करती है। वहाँ की साँझी के विषय में एक विद्वान का विवरण प्रस्तुत है:

"संध्या की देवी, जिसे आश्विन के प्रथम नवरात्र के दिन गोबर तथा मिट्टी के सितारों की सहायता से स्त्री के रूप में दीवार पर चीता जाता है तथा मिट्टी के रंगीन आभूषणों से सजाया जाता है। संध्या या रात के समय लड़कियाँ इसकी स्तुति में गीत गाती हैं तथा भोग लगा कर पूजती हैं। इसके साथ इसकी दासी 'भंभो' को चीता जाता है। दशहरे से तीन दिन पूर्व 'काणा खोड़ा' इसे लेने आ है। दशहरे की रात्रि को बंगाल की दुर्गा के समान इसे जल में विसर्जित कर दि जाता हैं। गाँव के ग्वाले इसके विसर्जन में बाधा डालते हैं, क्योंकि उनकी धारणा है कि इसका निर्विघ्न पार उतरना अकाल और आपत्ति का कारण बनेगा। इसे "रावण की साँझी" भी कहा जाता है।[44]"

"साँझी" के दरबार में चाहे उसकी सेवा करने वाले 'ब्राह्मणी' हो या 'भंभो' ; पंजाब का "काला-काना चोर" हो जो कि अपने कुकर्म छोड़कर "काना-खोड़ा" बनकर साँझी को ले जाने वाला पात्र बनकर उभरा हो। फिर भी सभी श्रद्धालुओं की लोक-मूर्ति-कला एवं पूजा में बराबर की भागीदारी के कारण 'साँझी' हरियाणवी तथा पंजाबी भाषा-भाषियों की सीमाओं से मुक्त होकर अपने नाम की सार्थकता अनंतकाल से निरंतर सिद्ध करती आ रही है। बाल-कल्पना की यह "माता" वस्तुत: लोकगीतों में कहीं नव विवाहिता बहन या भाभी नज़र आती है, जो छोटी-छोटी पुजारिनों के श्रद्धा-सुमन चुनकर पुन: अपने पतिदेव के पास विदा हो जाएगी। 'पेड़ू' संबंधी लोकगीत में 'साँझी' के इस मायावी रूप को स्पष्ट करके बालिकाओं को ननद तथा 'साँझी' को भाभी के रूप में चित्रित किया गया है, यथा:

आत्मा प्रमात्मा[45] में एक तमाशा देखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढाई चंदन का फूँदना मैं पेडू के सिर लाया था।
पेडू लाइआ पान पिटारी[46], लै बहुए तू पहन ले।
अपना पहना एकड़ा टूकड़ा,
मेरी नन्दी[47] को बुलाइयो रे।
आ री नन्दी बैठ पलंगड़ी,
हस हस गीत गवाऊँगी।
जे नन्दी तूँ लड़ें गुड़ेंगी।
दे मूसल खड़काऊँगी।[48]

ननद-भाभी की चुहलबाज़ी में हरियाणवी-पंजाबी भाषा का सुंदर स्पर्श हुआ है।

## अहोई

"साँझी" जहाँ दुर्गा-भवानी के गौर रूप से संबंध रखने वाला लोकपर्व है, वहाँ 'अहोई' देवी भगवती के विकराल रूप का प्रतीक है। फिर भी 'अहोई' की विचित्रता यह है कि यह बाल-कल्याण की भावनाओं से जुड़ा हुआ लोकपर्व है और इसी उद्देश्य से पुत्रवती माताएँ सुबह से शाम तक एक दिन का उपवास रखती हैं।

## नामकरण एवं तिथियाँ

उच्चारण-भेद अथवा अक्षर-वृद्धि-क्षय के कारण इस लोकपर्व के कई नाम मिलते हैं। कुछ नाम पूजा-सामग्री पर भी आधारित हैं, यथा:

(1) अहोई अष्टमी : अहोई आठैं; अहोई अट्ठै। अंतिम दोनों शब्दों में 'अष्टमी' में शब्द-विकार के कारण 'आठैं' या 'अट्ठै' शब्द बना है।

(2) 'होई': इसमें पर्व के आदि अक्षर 'अ' तथा त्योहार मनाने की तिथि का लोप हो गया है। पंजाब के पटियाला ज़िले के कुछ इलाकों में[49] तथा हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा ज़िले के कुछ भागों में[50] 'होई' शब्द का प्रयोग होता हैं। हरियाणा में भी इस शब्द का कहीं-कहीं प्रचलन होता है।[51]

(3) अशोक अष्टमी : संतान के अभाव के कारण शोकग्रस्त माता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोकामना पूरी होने पर पुत्रवती माता के 'शोक-निवारण' (अशोक) के उपलक्ष्य में मनाया जाने वाला लोकपर्व।

(4) झक्करी अथवा झक्करीआँ : मिट्टी की हंडिया (झकरी) में पानी भर कर और उसके ढक्कन पर मिठाई रखकर मनाया जाने वाला लोकपर्व। यह शब्द पटियाला (पंजाब) ज़िले में बहुत प्रचलित है।[52]

जैसा कि 'अहोई अष्टमी' नाम से प्रकट है, यह लोकपर्व कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को और दीवाली से सात दिन पहले मनाया जाता है। हिमाचल प्रदेश के ऊना ज़िले में 'अहोई' का चित्रण एवं पूजन उससे एक दिन पहले कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी को होता है।

## अहोई के भित्ति-चित्र

'अहोई' के दिन सुबह चार-पाँच बजे उठ कर माताएँ पेट भर कर भोजन कर लेती हैं, जिसे 'सरघी' कहा जाता है। वस्तुत: 'सरघी' शब्द अरबी के 'सहरी' का विकृत रूप है, जिसका मूल अर्थ है 'सुबह'। किन्तु इसका अर्थ-विकास हो गया है, जो कि इस प्रकार है:

"रमज़ान के दिनों में कुछ रात रहे का खाना, जिसे खा कर रोज़ा रखा जाता है; सहरगही।[53]"

व्रतधारिणी ये हिन्दू स्त्रियाँ दिन भर उपवास करती हैं। रात्रि में पूजा के पश्चात् आकाश में खिले तारों को अर्घ्य दे कर माताएँ व्रत खोलती हैं। लोक भाषा में 'सरघी' और 'अर्घ्य' के समय को लोक भाषा में तारों की छाया में कहा जाता है।

अहोई-पूजन के लिए पकवान बना कर तथा घर के अन्य काम काज से मुक्त होकर व्रतधारिणी स्त्री अपने किसी कमरे की दीवार पर 'अहोई' चित्तती है। इसे 'अहोई का थापा' कहा जाता है। अहोई-चित्रण में लोकरुचि की भिन्नता के कारण थोड़ा-बहुत अंतर अवश्य रहता है। फिर भी सामान्यत: मूलाधार सर्वत्र एक-जैसा ही रहता है। एक स्त्री का त्रिकोणात्मक चेहरा, दो हाथों और दो पैरों से युक्त मानव प्राणी जैसा। धड़ पर बेटों और बहुओं को अथवा एक मात्र पुत्रों को सूचित करने वाले सात-आठ छोटे-छोटे पुतले अंकित किए जाते हैं। कहीं इन


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुतलों के नीचे घुड़सवार पुरुष और स्वस्तिका-चिह्न[54] तथा कहीं पर बच्चों की लिखने वाली तख्ती बनाकर उस पर अंग्रेजी में ए.बी.सी. के अंकन के साथ-साथ एक चूहा भी देखा गया।[55]

पंजाब में अधिकतर एक ही दीवार पर एक अहोई बनाने की प्रथा है। किन्तु हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में एक-साथ दो अहोइयाँ चित्रित की हुई भी मिलती हैं। एक हरियाणवी विद्वान ने इस चित्रांकन का विवरण निम्नलिखित शब्दों में दिया है:

"सन्तान सुखदातृ अहोई मातृका माता पार्वती का रूप मानी जाती है। कार्तिक कृष्ण अष्टमी के दिन 'अहोई' या 'होई' का चित्र दीवार पर चित्रित किया जाता है। दीवार के किसी कोने को खड़िया मिट्टी से पोत कर पवित्र किया जाता है तथा वह पोता हुआ तल चित्र की पृष्ठभूमि का काम देता है। बड़ी तीली पर रूई लपेट कर तूलिका बना ली जाती है तथा मिट्टी के बड़े ढक्कन में गेरु को घिस कर घोल बनाया जाता है। एक विशेष अनुपात से दीवार पर हाशिया बनाया जाता है और फिर इसका मुँह तथा हाथ चित्रित किए जाते हैं। इसके उदर भाग में पुत्र-पुत्र वधुएँ, चाँद, सीढ़ी, स्याऊ आदि के चित्र अंकित किए जाते हैं। यदि किसी परिवार में विवाह या पुत्र-जन्म हुआ हो तो अहोई के दो मुख और चार हाथ बनाएँ जाते हैं। वैश्य परिवारों में गेरु के अतिरिक्त अनेक प्रकार के रंगों का भी प्रयोग किया जाता है। अहोई का यह चित्र वर्ष भर दीवार की शोभा बढ़ाता है। अगले वर्ष किसी अन्य स्थान पर इसका चित्रण किया जाता है।[56]"

हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों में अहोई का चित्रांकन सिंदूर से होता है और पंजाब में अनेक रंगों से। बेटों-बहुओं के चित्र भी बनाए जाते हैं। चाहे माँ का एक ही बेटा हो और वह अविवाहित भी हो, तब भी सात-आठ बालकों के पुतले बनाने की प्रथा है। पटियाला (पंजाब) के कपूर खत्री परिवारों में कुछ वर्षों पहले सूर्यास्त के बाद 'अहोई' का चित्रांकन घर का वयोवृद्ध पूजा के समय दीवार पर कोयले से किया करता था। किन्तु अब वहाँ भी अनेक रंगों की 'अहोई' के बड़े थापे के नीचे परिवार की महिलाएँ अथवा कन्याएँ ही काले रंग से एक स्त्री का पुतला बना देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस पति-पत्नी को दीर्घकाल तक संतान-सुख प्राप्त न हुआ हो, वे कई बार किसी ब्राह्मण के घर अहोई-पूजन करके मनौती कर आते हैं कि यदि उनके पुत्र हो जाए तो वे रंगों वाली 'अहोई' अगली बार से अपने घर पर बना कर पूजा-अर्चना करेंगे। ऐसे घरों की 'अहोई' को "मंगवी (मांगी हुई) अहोई" कहा जाता है। हिमाचल प्रदेश के एक परिवार की 'मंगवी अहोई' देखकर पूछताछ से पता चला कि मध्य में फूलों वाली लंकीर डालकर भित्ति चित्र में नारी के दो सिर क्यों बनाए गए हैं ? गृहस्वामिनी से ज्ञात हुआ कि उस में से एक अहोई बच्चों के पिता की है और दूसरी उस के बच्चों की। ऐसा तब तक होता है जब तक गृहस्वामिनी की सास जीवित रहती है, तदनंतर दीवार पर अहोई का एक ही चित्र बनता है।

हिमाचल प्रदेश में अहोई के शरीर में बहू-बेटे कहीं-कहीं ही बनते हैं, अन्यथा चांवल को पीस कर उसके घोल में हथेली को डुबोकर उनकी बजाय सात छापे लगा दिए जाते हैं। पंजाब और हिमाचल प्रदेश के अधिकांश घरों में 'अहोई' एक निश्चित स्थान पर ही बनती है। दीवाली के आस-पास घरों में लिपाई-पुताई से पुरानी अहोई सफेदी से ढक जाती है और उसी स्थल पर नई अहोई का भित्ति-चित्र बना दिया जाता है। जिन घरों में कोयले की 'अहोई' बना करती थी, वहाँ पर दीवाली का थापा तैयार करने के लिए दाएँ हाथ की चार उँगलियाँ सफ़ेदी में डुबो कर दीवार पर इस प्रकार लगाई जाती थीं कि 'अहोई' की विकरालता ढक जाती थी।

अब अधिकांशत: इन भित्ति चित्रों की सज्जा की बजाय बाज़ार से 'अहोई' का चित्र खरीद कर पूजा-स्थल पर लटका दिया जाता है। दीवाली के पश्चात् वह चित्र वहाँ से हटा कर किसी कमरे की कील की शोभा बढ़ाने लगता है।

## पूजा-सामग्री और पूजन-विधि

गृह-स्वामिनी पूजा-स्थल पर एक या दो हंडियाओं में पानी भर कर उसके ढक्कन पर पकवान रख देती है। जिस कुटुम्ब में हंडिया में केवल पकवान रखने का रिवाज होता है, वहाँ भी हंडिया ढक्कन से ढक दी जाती है। [illegible]



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समय काली ऊन से बनाई गई माला प्रत्येक पुरुष के गले में तथा एक काला धागा दाईं कलाई में बाँधा जाता है। यह सामग्री पुराने समय में दाई आकर घर में दे जाती थी।[57] हरियाणा और पंजाब के कुछ परिवारों में प्रत्येक बच्चे के गले में चाँदी की बनी हंसली तथा माला डाली जाती है। हंसली में चाँदी के बलों (लिपटी हुई तारों) अथवा माला में पिरोए चाँदी के मनकों से बच्चे की अवस्था का पता चलता है।[58] हर वर्ष अहोई के अवसर पर एक बल अथवा मनके की वृद्धि इसी कारण की जाती है।

अहोई पूजन के लिए सरसों के तेल से बनाए गए पकवानों को वरीयता दी जाती है। मठरी, शकरपारे, गुझिया, पूड़े, कचौरी और कसार जैसे मिष्टान्न इसमें सम्मिलित रहते हैं। पूजा-स्थल पर गन्ना और मूली भी रखे जाते हैं। हरियाणा में कहीं-कहीं मूँगफली भी रखते हैं। पूजा-स्थल पर कुछ परिवारों में अहोई की कथा सुनाने का रिवाज भी है। जो लोग हंसली, मनकों की माला या काला ऊन की माला का प्रयोग नहीं करते, वे कलाई पर मौली बाँध कर पूजन करते हैं।

पूजन के बाद स्त्रियों को बिंदी और पुरुष-वर्ग को रोली-सिंदूर का तिलक लगाया जाता है तथा 'झकरी' (हंडिया) वाली मिठाई सारे परिवार को बाँट दी जाती है। इसके उपरांत व्रतधारिणी माता एक झकरी उठाकर उसके जल और पकवान से तारों को अर्घ्य अर्पण करती है। तत्पश्चात् सारा परिवार एक-साथ भोजन करता है। जो लोग पानी से 'झकरी' भर कर पूजा करते हैं, वे रात्रि-भोज के समय वही पानी पीते हैं। दूसरी झकरी पूजा-स्थल पर ही पड़ी रहती है। कहीं भैया दूज के दिन और कहीं दीवाली की सुबह, दशहरा-पूजन के लिए बनाए गए गोबर के उपलों पर, पानी गर्म करके तथा उसमें 'अहोई' की झकरी का जल मिला कर स्नान किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ की महिमा को स्वीकार करने और त्योहारों में तारतम्य स्थापित करने का मंजुल प्रयास लोक-चेतना में विद्यमान रहता है। पूजा-स्थल पर 'अहोई' के नाम पर मनसे हुए पदार्थ और धन-राशि दाई अथवा कुम्हार को भेंट करके "श्रम गौरव की महिमा" (Dignity of Labour) को समझने-समझाने तथा भावात्मक एकता स्थापित करने की ओर सही क़दम होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## अहोई की लोक कथाएँ

'अहोई' के पूजा-स्थल पर विराजमान श्रद्धालुओं को कोई-न-कोई उपदेश मूलक लोक-कथा सुनाने का रिवाज उत्तर भारत के कई परिवारों में विद्यमान है। यह कथा-वाचक परिवार का वयोवृद्ध अथवा कोई बुजुर्ग स्त्री ही होती है। नमूने के तौर पर दो लोक-कथाएँ प्रस्तुत हैं। हिमाचल प्रदेश के ऊना ज़िले में प्रचलित लोक-कथा परिवार की वयोवृद्धा सुनाती है और पंजाब वाली घर का सब से बड़ा पुरुष। कथा-वाचक की शैली में ही इनका विवरण प्रस्तुत है।

### (क) हिमाचली लोक कथा

दो बहनें थीं। दोनों संतों की सेवा करती थीं। दोनों के बच्चे नहीं थे। अहोई का दिन था। बड़ी (बहन) गई संतो के। उनकी बगिया के सामने आम का बूटा (पौधा) था। संतो ने उसकी व्यथा सुनकर उसे एक डंडा दिया और आम तोड़ने को कहा। एक ही झटके में पाँच आम ज़मीन पर आ गिरे। वह आम लेकर घर चली गई।

पुस्तकालय 127798 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

अब दूसरी आई, जो कि छोटी थी। उसने भी संतो को अपना दुःख सुनाया। उन्होंने पूछा-"तू दोबारा क्यों आई है ?" छोटी बोली "ना नहीं, मेरी बहन आई होगी।" खैर ! संतो ने उसे भी वह डंडा दिया, जिसकी चोट से एक फल गिरा। संतो की बात मानकर वह एक आम लेकर अपने घर की ओर चल दी।

छोटी ग़रीब थी। उसके एक बेटा हुआ। बड़ी के माया (धन) बहुत थी। उसके पाँच पुत्र हुए। उन दिनों गोबर से 'होई' बनती भी। छोटी का बेटा मौसी के पास गया और कहा –"मासी! मुझे भी गोबर दे दें।"[22] मौसी ने भाँजे को ताने-उलाहने सुना कर गोबर देने से इंकार करते हुए कहा–"गोहा (गोबर) नहीं मिलता तो सोने-चाँदी की 'होई' बना लेवे तेरी अम्माँ !"

छोटी ने व्रत रखा हुआ था। चावल-उड़द धरे हुए थे। उसने बेटे के मुँह से बड़ी बहन के तीनों-उलाहनों की बात सुनकर रोली से दीवार पर 'अहोई' चित्त ली। पूजा के बाद व्रत खोल कर छोटी बहन सो गई। वह सपने देख रही थी तो सोने की मूर्ति बनकर और चाँदी की पालकी में सवार होकर 'अहोई' ने दर्शन दिए। सुबह होने वाली थी, उसकी आँख खुली तो घर में सोना ही सोना, चाँदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही चाँदी (दिखाई पड़ी)।

बड़ी बहन ने जा कर संतों को छोटी बहन की समृद्धि की कथा सुनाई। उन्होंने उत्तर दिया "तूँ पंज पुत्त लै के बी नहीं रज्जी! अहंकार दी मारी होई ने छोटी बहन नूँ गोहा बी नहीं दिआ।[59]"

शर्मिन्दा होकर बड़ी बहन अपने घर लौट आई।

## (ख) पंजाबी लोक कथा :

एक थी बाँझ, एक थी बझोटन। बाँझ के (बच्चे) होते नहीं थे, बझोटन के होते ही मर जाते थे। दोनों भाग कर भगवान के पास पहुँचीं। दोनों ने अपना-अपना दुखड़ा सुनाया। भगवान जी ने कहा "आज अहोई का दिन है। छोटे-छोटे बालक सिर धो कर गलियों में खेल रहे होंगे। तुम जा कर उनके बाल नोच कर यहाँ ले आओ।"

दोनों जनीं स्वर्ग से धरती पर आ गईं। एक मुहल्ले में जा कर बाँझ ने कई बच्चों के बाल तोड़-तोड़ कर झोली भर ली। बच्चों के रोने-बिलखने की उसने कोई चिन्ता नहीं की। बझोटन चुपचाप देखती रही और खाली हाथ ही बाँझ के साथ फिर भगवान जी की सेवा में पहुँच गई। बाँझ ने भगवान जी के सामने हँसते-हँसते बालों का ढेर लगा दिया। उन्होंने बझोटन से पूछा- "तू बाल नहीं लाई ?"

बझोटन ने कहा – "परमात्मा जी ! जब बाँझ बच्चों के बाल तोड़ रही थी तो मुझ से उनकी चीख-पुकार सुनी नहीं गई। मुझे उन पर तरस आ गया। इसी लिए मैं आप का हुक्म पूरा नहीं कर सकी।"

भगवान जी बझोटन के उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बाँझ से कहा-"तू बड़ी बेदर्द है। तू कभी माँ नहीं बन सकेगी।"

जब बाँझ ने बहुत मिन्नत-खुशामद की और बझोटन ने भी उस पर दया करने के लिए भगवान जी से बेनती की तो उन्होंने कहा-"अच्छा! एक तरीका है। तुम्हारे नगर के अमुक मुहल्ले में एक कुम्हारिन अहोई का व्रत रखकर बेटे पोतों के साथ पूजा कर रही होगी। पूजा पूरी होने से पहले ही उसके बच्चे 'झकरी' पर रखी मिठाई पर झपट पड़ेंगे। बुढ़िया उन्हें गालियाँ देगी-"नाश पीटो! तुम मर


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाओ, डूब जाओ।" तुम यह सुनकर कुम्हारिन से कहना – 'ना माई ! गालियाँ न दे। एक बच्चा मुझे ही दे दे। इस तरह वह बच्चा कुछ दिनों में मरने के बाद तुम्हारी कोख से बालक के रूप में जन्म ले लेगा।"

यह सारी बात सुनकर बाँझ अपनी साथिन बझोटन को लेकर कुम्हारिन के घर के दरवाज़े के पीछे लुक (छप) गई। बच्चों ने उसी तरह शरारत की। किन्तु बुढ़िया ने किसी तरह की डाँट-डपट नहीं की। बल्कि उसने पोते की नई ब्याही बहू की ओर इशारा करके कहा – 'अहोई माता ! मुझ बुढ़िया को इधर से हवा आ रही है। अगले साल इसकी गोदी में बालक बैठा हो तो बुढ़िया सर्दी से तो बच जाए।"

खिसियानी बाँझ ने आ कर सारा वृत्तांत भगवान जी को सुनाया तो उन्होंने उत्तर दिया –"कुम्हारिन के दिल में बच्चों के लिए दया है, उसकी मुराद पूरी हो जाएगी। वह अगले साल पड़दादी बन ही जाएगी। पर तेरे दिल में बच्चों के लिए दया-तरस नहीं। इसलिए तेरी कोख कभी हरी नहीं होगी।"

बाँझ निरुत्तर थी और मुँह लटकाए अपने घर लौट आई।

पंजाब में परिवार के वयोवृद्ध से यह कथा सुन कर उसकी पत्नी अन्य सदस्यों के सामने कहती है – "हे अहोई माता ! जिवें तूँ कुम्हारिन ते बहुड़ी हैं, उसे तराँ सभ ते बहुड़ीं।[60]" तदनंतर सभी लोग मिलकर जयकारा बोलते हैं :

बोल माई कालका।
खोल भंडारे मालका।
पाणी पिओ ताल का।

अभिमान-नाशक और सर्व कल्याण मूलक इन लोक-कथाओं के अतिरिक्त कुछ गाँवों में छोटे-छोटे बालक माता अहोई का व्रत रखने वाली अपनी "माँ" के भोजन हेतु भाई-बंधुओं से पैसे माँग कर लाते हैं। इससे उनमें परस्पर समता का भाव भी संचरित होता है। 'तारे' को अर्घ्य देने के पीछे भी एक रहस्य छिपा हुआ है, जिसका उद्घाटन इस प्रकार किया गया है:

"कार्तिक मास शिव-पार्वती के पुत्र 'कार्तिकेय' का प्रतीक है। उसकी सात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माताओं ने समय की गति के साथ बौद्धों की "तारा देवी" का रूप धारण कर लिया था। उपवास करने वाली स्त्रियाँ पूजा के बाद 'तारे' (Star) को अर्घ्यदान करके "तारा देवी" की महिमा का एक ओर प्रकटीकरण करती हैं। दूसरी ओर वे उर्दू मुहावरे 'आँख का तारा' का दम भरती हुई स्तंभ के बिना टिके हुए आकाश के तारा मंडल और उनके नेता सप्त ऋषियों से अपने बेटों-पोतों की सुख-शांति एवं वृद्धि का वरदान भी प्राप्त कर लेती हैं।[61]"

## शीतला के मेले

देवी भगवती के अनेक रूपों में से एक 'रोग नाशिनी माता' का भी है। आम बोलचाल में चेचक जैसे संक्रामक रोग का नाम ही 'माता' पड़ गया है। रोगी के स्वस्थ होने पर जहाँ मन्नत चढ़ाई जाती है, उस स्थल को "शीतला का मंदिर" कहते हैं। इस के विषय में एक विद्वान का कथन है:

"शीतला एक संक्रामक रोग है और प्राय: बालकों को होता है। आरंभ से लेकर अंत तक इसका शीतल उपचार होता है, घर के अंदर और बाहर पानी छिड़का जाता है। इसी शीतोपचार के कारण माता का "शीतला" नाम प्रचलित हुआ है। शीतला देवी का वाहन गधा और देवी का भक्त कुम्हार उसके प्रिय पात्र समझे जाते हैं। माली और मालिन भी देवी के भक्त और सेविकाएँ बतलाए गए हैं। नीम के वृक्ष के नीचे माता का निवास समझा जाता है। अत: भक्त नीम की टहनी से रोगी की झाड़ा-फूँका करता है, जिस से शीतला माता प्रसन्न होती है। इस रोग में परिवार वालों को भी कई प्रकार के नियमों का पालन करना पड़ता है। कढ़ाई न चढ़ाना पूरी-परांठा आदि न बनाना और धौंक देना भी निषिद्ध होता है। रोगी के पास ऊँचा बोलने से माता नाराज़ होती है।[62]"

उत्तर भारत के रूढ़िवादी लोग इसी सार्विक नियम का पालन करते हैं। कई जगह लोहे की चार बड़ी सुइयाँ लेकर एक का नक्का दूसरे के छेद में फँसा कर और जल से भरे किसी कटोरे में उन्हें रोगी की खाट के सिरहाने रखने का रिवाज भी है। यह जल तभी से रखा जाता है, ज्यों ही मरीज़ के शरीर में छोटे लाल दाने झलकने लगते हैं। प्रतिदिन यह जल के घर मुख्य द्वार के दोनों पल्लों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर डाल दिया जाता है और रोगी के स्वस्थ होने तक ताज़ा जल भर कर रखना अनिवार्य माना जाता है। रोगी को 'खुपकलां-मुनक्का' नामक आयुर्वैदिक जड़ी बूटियों के काढ़े के अतिरिक्त अन्य कोई औषधि देना वर्जित माना जाता हैं।

शीतला का प्रकोप प्राय: बसंत ऋतु के अंतिम दिनों अथवा गर्मी की समाप्ति पर होता है। इसी लिए पंजाब में होली के पश्चात् शुक्ल पक्षीय चैत्र के पहले मंगलवार को शीतला के नाम पर बने 'बसन्ती माता' के मंदिरों में मेला लगता है। कहीं-कहीं यह मेला सोमवार को भरता है। पटियाला (पंजाब) नगर से 12 किलोमीटर दूर 'सील' नामक गाँव में एक ऊँचे स्थल पर लगने वाले शीतला मेले का नाम ही 'सीलाँ का मेला' पड़ गया है। इन दिनों पायल तहसील में जरग नामक स्थान पर लगने वाले शीतला के मेले का नाम भी 'जरग का मेला' पड़ गया है। इस मेले से जुड़ी कुछ पंरपराओं के बारे में एक विद्वान का कथन है:

"पुरानी वयोवृद्धाओं का मत है कि शीतला माता एक देवी है, जो गधे की सवारी करने से प्रसन्न होती है और प्रत्येक जीव को हर गाँव में देखती रहती है..... जब माता निकलती है (चेचक रोग के चिह्न दिखाई पड़ते हैं) तो झीवर को बुला कर जंत्र-मंत्र करवाए जाते हैं..... शीतला माई के अनन्य भक्त दूर-दूर से जरग पहुँच कर वहाँ एक जोहड़ से मिट्टी खोद कर छोटा-सा ढेर लगा लेते हैं और कहते हैं कि यह माता रानी का विशेष स्थान है।..... कुम्हार अपने गधों पर रंग-बिरंगे झुल्ल डाल कर और उनके गले में सीपियों तथा कौड़ियों के कंठे (मालाएँ) सजाए खड़े रहते हैं। "माता रानी के थान" पर गुलगुले चढ़ाने के बाद मर्द और औरतें इन गधों को भोग लगाने के लिए जिस श्रद्धा-भक्ति से पहुँचते हैं, वैसी यात्रा कुछ महान धर्म स्थानों पर ही देखी जा सकती है। गधों के सामने जौ, मोठ और बाजरे के उबले हुए दाने भी डाले जाते हैं। जब गुलगुलों से तृप्त गधे हिनहिनाते हैं, तब सभी श्रद्धालु "अपनी घालि थाई पई" (मेहनत रास आ गई) समझ कर लाख लाख शुक्र मनाते हैं ..... "माता रानी के थान" पर चढ़ावे की प्राप्ति के अधिकारी "झीवर" माने जाते हैं। वे लोग अपनी भेंटों का कीर्तन इस प्रकार करते हैं:

"जै होवे महामाई तेरी जै होवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता राणीए! गुलगुले खाणीए।। आस पूरी साडी कर दे।[63]"

पंजाबी लोक गीतों में "जरग के मेले" का वर्णन बहुधा मिलता है, यथा:

(1) चल्ल चल्लीए जरग दे मेले
चेटक मित्तराँ दा।[64]

(2) चल्ल चल्लीए जरग दे मेले
मुंडा तेरा मैं चुक्क लूँ।[65]

(3) ऐंतकीं जरगों लिआवीं चूड़ा
लै जा मेरा गुट्ट मिण के।[66]

(4) जेही तेरी गुत्त वेख लई,
जेहा वेखिआ जरग दा मेला।[67]

हरियाणा में 'कालन' (ज़िला हिसार ) का शीतला का मेला भी बड़ा प्रसिद्ध है। चैत्र कृष्ण सप्तमी की तिथि के कारण इस का नाम ही 'शीतला सप्तमी'[68] पड़ गया है। पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश एवं जम्मू में जहाँ कहीं भी शीतला के मेले लगते है, वहाँ गधों को चने की दाल भी खिलाई जाती है। शीतला के मंदिरों में बासी पूरियाँ और गुलगुले चढ़ाए जाते हैं। गेहूँ के आटे में गुड़ की चासनी मिलाकर ये पकवान सरसों के तेल में ही पकाए जाते हैं। इन बासी पदार्थों को 'बासड़ा' कहा जाता है। यही 'बासड़ा' शब्द कहीं-कहीं 'बहेड़ा' या 'बसौड़ा' भी बोला जाता है। हिमाचल प्रदेश में तो 'बासड़े' का अर्थ-बिकास इस प्रकार हो गया है: "होली के उपरांत शीतला देवी को प्रसन्न करने हेतु मनाए जाने वाले त्योहार।[69]" हरियाणा में त्योहार का नाम 'बासोहड़ी' भी बन गया है।[70]

शीतला और उसके वाहन को भेंट किए जाने वाले पदार्थों का वर्णन हरियाणवी लोकगीतों में खूब हुआ है। उदाहरणार्थ देखिए:

(क) मैया राणी! मसानी सेढ[71] मनाहीं सां।
मैया! काली सी कुत्ती तेरे बार टूक गिराई सां।
मैया! कालो सो गधो तेरे बार दाल[72] चराई सां।।

(ख) करूँ कढाई गुलगुला सेढल माता धोकड़ जाय।
इब म्हारी सेढल माता राज्जी होय।
दादी दायला[73] फुल्या नहीं समाय।[74]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## राजस्थान की "शीतला सप्तमी" एवं "शीतला अष्टमी"

राजस्थान में कुछ लोग शीतला माता के पूजा हेतु यह त्योहार चैत्र मास के कृष्णा पक्ष की सप्तमी को अथवा अष्टमी को मनाते हैं। उत्तरांचल के अन्य प्रदेशों की भाँति राजस्थान में भी बासी भोजन किया जाता है। इसें 'बास्योडा' अथवा 'ठंढा भोजन' कहा जाता है। 'शीतला' को कहीं-कहीं 'सेडल' भी कहा जाता है और अड़सठ गंधों पर सवार इस माता का वर्णन एक लोकगीत में इस प्रकार हुआ है:

एड़ल सेड़ल निकली ए मां, अड़सठ गधा पिलाण मेरी माय।
धोके न ए म्हारे नाम की ए मां, तने ए नुंवा वांम्हरी सेडल माया।

कई जगह शीतलाष्टमी के दिन बासी रोटी के अतिरिक्त राबड़ी बाजरे का मीठा दलिया और चावल भी बनाए जाते हैं। बासी पदार्थों को कहीं-कहीं 'बासीड़ा' भी कहा जाता है। राजस्थान के एक लोकगीत में चेचक (शीतला) के निंकलने, फलने, पकने तथा ढलने का विस्तृत वर्णन भी हुआ है, यथा:

बणतण बड़ तलै बालो खेलतो जी, खेलत चढ ग्यो ताव।
बुलाल्यों सेडल माता जी।
दादी कु प्रसउ डर रह्या जी उग्यो दाड़म रो बीज।
फलती जामण यूँ फली जी, बाजरियो रो बीज।
भरती जामण यूँ भरी जी, मोतीड़ा रा बीज।
ढलती माता यूँ ढली जी, पालंके रो पान।
ठंडीड़े रो रांधियो, रे बालूड़ा री माय।
बुला ल्यो सेडल माता जी।
भर बटवणां धोकस्यां जी, राम लिछमण थांरी माय।

रोग मुक्ति हेतु 'बासीड़ा' पकाने (ठंडीड़े रो रांधियो) संबंधी माँ की मनौती का उल्लेख भी इस लोकगीत में हुआ है।

## देव-पर्व

भारत में अनेक देवताओं की प्रसिद्धि है। चैत्र के शुक्ल पक्ष की नवमी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान राम का जन्मोत्सव 'राम नवमी' के नाम से मनाया जाता है। उस दिन मंदिरों में रामायण-पाठ संपन्न होते हैं। कई जगह 'राम नवमी' के उपलक्ष्य में शोभा यात्राएँ भी आयोजित होती हैं। भगवान कृष्ण का जन्मोत्सव भाद्रपद की कृष्ण अष्टमी को मनाया जाता है। उस दिन मंदिरों में विभिन्न पौराणिक प्रसंगों पर झाँकियाँ सजाई जाती हैं। राजा बलि का अहंकार नाश करने हेतु भगवान विष्णु द्वारा वामनावतार बन कर तीन पगों में आकाश, पाताल और पृथ्वी नाप लेने वाले पौराणिक कथानक के आधार पर 'वामन द्वादशी' का त्योहार आता है। भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को यह त्योहार पंजाब के पटियाला नगर और हरियाणा के अम्बाला शहर तक ही सीमित है। हिमाचल प्रदेश के दशहरे की भाँति इन दोनों शहरों के मंदिरों की देव-मूर्तियों को सजा कर जुलूस के रूप में लाया जाता हैं। देवता की सवारी को "हिंडोला" कहा जाता है। इसके साथ विभिन्न धार्मिक और राष्ट्रीय प्रसंगों पर "झाँकियाँ" भी निकाली जाती हैं। गुजरात के 'गरबा' नृत्य से मिलता-जुलता पुरुषों का डांडिया रास भी 'वामन द्वादशी' का विशेष आकर्षण होता हैं। इसे 'टिपरी' कहा जाता है। यह काश्मीर के 'धमाला नृत्य' से भी साम्य रखता है। दीवाली से एक दिन पहले 'हनुमान जयंती' उत्तर भारत के कुछेक मंदिरों में मनाई जाती है। दीवाली से अगले दिन वैष्णव मंदिरों में 'अन्नकूट' उत्सव भारत के अन्य भागों की तरह मनाया जाता है। इसी दिन 'विश्वकर्मा जयंती' के उपलक्ष्य में बढ़ई, लोहार, राजगीर और हाथ का काम करने वाले लोग दिहाड़ी पर नहीं जाते। वे घरों में अपने औजारों के अतिरिक्त "विश्वकर्मा (ब्रह्मा) जी" के मंदिरों में पूजार्चना हेतु जाते हैं तथा प्रीतिभोज में सम्मिलित होते हैं।

## देवोठान एकादशी

### नामकरण

'देवोठान' शब्द 'देवोत्थान' का अपभ्रंश रूप है। यह लोकपर्व कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को मनाया जाता है। संस्कृतज्ञों की भाषा में इस त्योहार का नाम है: 'देवोत्थान एकादशी'। लोक भाषा में इसके लिए 'देवोठान एकादशी' अथवा एकमात्र 'देवोठान' का प्रयोग होता है।

वैसे तो चान्द्रवर्ष के अनुसार चैत्र मास से फाल्गुन तक हर महीने दो एकादशियाँ होती हैं; प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष में पहली और शुक्ल पक्ष में दूसरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार एक साल मे कम से कम चौबीस एकादशियाँ आ जाती हैं। किन्तु हिन्दू धर्मवित्ताओं और भारतीय ज्योतिषियों ने प्रत्येक वर्ष की तीन एकादशियों द्वारा देवताओं पर भी मानव-प्रवृतियों का आरोपण करके उनकी लोकपर्वीय महिमा को प्रगाढ़ बनाने का प्रयास किया है। 'गुरुड़पुराण' के निम्नलिखित श्लोक से इस तथ्य का संकेत मिलता है:

मच्छयने मदुत्थाने मत्पार्श्व परिवर्तने
फलमूल जलाहारी हृदि शल्यं ममार्पयते।

इस श्लोक में एकादशी के दिन किसी भी प्रकार के भोजन एवं जल का सेवन इन तीन तिथियों को एकदम निषिद्ध किया गया है:

(क) आषाढ़ शुदि एकादशी – इसे देवशयनी एकादशी कहा जाता है। यह देवताओं के सो जाने को इंगित करती है। एक विद्वान के शब्दों में:

"देवशयनी 'एकादशी' आषाढ़ शुक्ला एकादशी को माना जाता है। चतुर्मास के आंरभ का दिन होने के कारण इस दिन भगवान विष्णु क्षीर सागर में शयन करने चले जाते हैं। अत: उनके शयन के लिए स्थान-स्थान पर उत्सव किए जाते हैं। हरियाणा में देवोठानी (कार्तिक शुक्ला) एकादशी तक विवाह आदि अनेक शुभ कर्म वर्जित माने जाते हैं।"[75]

(ख) भाद्र शुक्ला एकादशी – इसे "देव-पार्श्व परिवर्तन एकादशी" कहा जाता है। यह देवताओं के जागरण की बोधक है। इसी लिए इसे 'देवोत्थान' अथवा "देवोठान एकादशी" की संज्ञा प्रदान की जाती हैं। हरियाणा में इसे "दे-ऊठनी ग्यास" भी कहा जाता है।[76]

डॉ. ब्रजमोहन जी ने इन धार्मिक अनुष्ठानों के पीछे छिपे मानवीय दृष्टिकोण को अत्यन्त गहन समाज शास्त्रीय अध्ययन के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है:

"वर्षा समाप्त होने पर व्यापारी दशहरा पूजकर व्यापार के लिए बाहर निकल जाते हैं और दीवाली मनाने के लिए घर वापिस आते हैं। दूज (भैया) के टीके कढ़वा कर फिर चल देते हैं और आठ दिन बाद कार्तिक सुदी एकादशी को लौटते हैं। आषाढ़ में जो देवता सो गए थे, कार्तिक सुदी एकादशी को उठ गए। चार महीने वर्षा के कारण रोग और कष्ट से लोग पीड़ित रहे। यात्रा बन्द रही। विवाह और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्सव बन्द रहे। देव उठान एकादशीं' से उत्सव फिर आरंभ हो जाते हैं। यह सहालग लगने का दिन है।"[77]

## लोक चित्रों की परिकल्पना :

देवोठान के 'थापे' उत्तर भारत के अधिकांश भागों में भूमि पर ही बनाए जाते हैं। हरियाणा में अंकित किए जाने वाले लोक-भू-चित्र में गेरु से 'देवता' का प्रतीक एक मानवीय चेहरा दीवार पर बनाया जाता है। उसके नीचे चारों ओर सुन्दर लहरिएदार चौकोर के मध्य में दो पैर बना लिए जाते हैं। इन चरणों के बीच में एक 'शंख' चित्रित किया जाता है। दाहिनी ओर वाले पैर के समीप 'सुपारी' बनाई जाती है, जो कि गणेश जी की प्रतीक होती है। बांई ओर के पैर के पास 'स्वस्तिका' का चिह्न अंकित किया जाता है। इस थापे को 'विष्णुपद' भी कहा जाता है। दीवार तथा भूमि पर अंकित पूरा चित्र लगभग एक फुट लंबा और चौड़ा होता है। इसी प्रदेश के कुछेक भागों में पूजा स्थल चौके (रसोई) के समीप या घर के दालान में किसी जगह को गाय के गोबर तथा पीली मिट्टी से लीप पोत कर बनाया जाता है। फिर गेरु से वहाँ पर छोटे बन्च्चों के पैरों के बराबर के चिह्न अंकित कर दिए जाते हैं। घर के द्वार के दोनों ओर भीत पर भी गेरु से कुछेक शुभ चिह्न और आकृतियाँ चित्रित कर दी जाती हैं।

पंजाब में लगभग दो फुट लंबाई-चौड़ाई वाला थापा किसी कमरे के फ़र्श पर बनाया जाता है। गृहस्वामिनी इसमें एक 'देउ' (दिव) देउनी (दिवी; देवता की पत्नी), सूरज, चाँद और दो खड़ाऊँ (पादुकाएँ) सफ़ेदी से बनाती है। इन आकृतियों के आस-पास एक चंडोल (चार पात्रों वाली आकृति), चार चूँगड़े (दीपक), चार दवातें, मधानी (दूध मथने वाली मथानी), चौखुंटा (चार बत्तियों वाला दीपक) और दो-तीन फट्टियाँ (बच्चों के लिखने वाली तख्तियाँ) भी सफ़ेदी से अंकित की जाती हैं। पूजा-स्थल के कमरे की दहलीज़ पर सफ़ेदी में भीगे हुए कपड़े को निचोड़ कर सात-आठ दीवे (बत्तियों रहित दीपक) भी अंकित किए जाते हैं।

थापे में बनाई गई लेखनं-सामग्री (दवातें और तख्ती) बंगाल में सरस्वती-पूजन हेतु 'हाथे-खोरी' प्रथा से पर्याप्त साम्य रखती है। 'हाथे-खोरी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अर्थ है "पहला शब्द लिखना" (Writing first word)। संभवतः दवातें और फट्टी (तख्ती) सरस्वती-वंदना के चिह्नों की ओर संकेत करते हों। पंजाब में दूध-दही की बहुतायत होती है। इसलिए 'मधानी' का अंकन थापे में आना स्वाभाविक है, भले ही यह देवताओं के समुद्र-मंथन से परिकल्पित हो। सूरज, चाँद, तरह-तरह के दीपकों की आकृतियाँ विद्या एवं ज्ञान रूपी प्रकाश की प्राप्ति की लालसा को दर्शाते हैं।

## पूजा सामग्री और पूजा-विधि

हरियाणा में थापे के समीप सिंघाड़े और झड़बेर रखकर एक दीपक जला कर थापे समेत सारी सामग्री को एक बड़ी थाली अथवा परांत से ढक दिया जाता है। पूजा-स्थल के एक कोने में एक या दो गन्ने खड़े कर दिए जाते हैं। कुछ लोग गन्नों के साथ एक-एक मूली भी सजा देते हैं। तदनंतर थाली या परांत को पीट-पीट कर देवताओं का आह्वान किया जाता है। परिवार के सभी सदस्य पूजा-स्थल पर इकट्ठे होकर पीतल के पात्र पर हाथ मारते हुए एक-साथ मिलकर ये शब्द बोलते हैं:

उट्ठो नराण, बैट्ठो नराण, काट्टो चण्याँ कर खेत नराण
औले कौले धरे जमेट्टे, जीयें बहुए द्रौपदी तेरे बेट्टे
औले कौले धरे जमेट्टे, जीयें बहुए सरोज तेरे बेट्टे।

परिवार की बहुओं के नाम बड़ी-छोटी के सिलसिले के अनुसार जोड़ते हुए यही पद्य दोहराते हुए सभी पुत्रवती माताओं के नाम गिना दिए जाते हैं। सभी बहुओं के नाम गिने जाने के बाद लोकगीत की तुकें इस प्रकार आगे बढ़ती हैं:

औले कौले धरे अंजीर, ये भई पूनम जीवें तेरे बीर।
औले कौले धरे अंजीर, ये भई नूतन जीवें तेरे बीर।

इस क्रम में परिवार की सभी विवाहिता स्त्रियों और कुमारी कन्याओं के भाइयों की दीर्घायु की शुभ कामना के बाद पुरुषों की बारी आती है। प्रत्येक जीवित बुजुर्ग से लेकर परिवार के सब से छोटे बालक का नाम जोड़-जोड़ कर लोकगीत की कड़ियाँ इस प्रकार जुड़ती जाती हैं :

औले कौले धरे अनार, ये भई चंद्र जीवें तेरे यार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औले कौले धरे अनार, ये भई नवीन जीवें तेरे यार।।

परिवार के पुरुष वर्ग के सभी नाम गिना लिए जाने के बाद हास-परिहास की सामग्री भी जोड़ी जाती है, यथा:

आओ छोहरियो दाभ कटाओ ए।
दाभ कटा के रस्सी बटाओ ए।
रस्सी बटा के मंजा भराओ ए।
मंजा भरा के बुड्ढै ने लिटाओ ए।
बुड्ढै ने लिटा के गंगा जी पहौंचाओ ए।

कहीं-कहीं बालकगण लकड़ी पर कपड़ा बाँधकर उसमें आग लगाकर यह 'जकड़ी'[78] गाते हैं:

हर नारायण की पूँछड़ी जलै
मेरे भट सा बलै।।[79]

इस हास-परिहास मूलक सामग्री द्वारा कुटुम्ब के सभी सदस्यों को सचेत कर दिया जाता है कि ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं है। "नदी किनारे रुक्खड़ा" (नदी के किनारे का वृक्ष) की भाँति यदि कोई वयोवृद्ध काल के गाल में फँस जाए तो उसका अफ़सोस उसके परिजनों को नहीं करना चाहिए। न जाने कौनसा बुजुर्ग "दे-ऊठणी ग्यास" के अगले पर्व तक दिवंगतात्मा बन जाए और उसका अस्थि-प्रवाह गंगा जल में कर दिया जाए। इस प्रकार "देव-प्रबोधिनी एकादशी" का यह लोकपर्वीय रूप मानव जीवन की यथार्थता को विचित्र ढंग से समझाने में पूर्णतया सहायक होता है।[80]

जिन घरों में चौके के पास अथवा दालान में पूजा-स्थल बनाया जाता है, वहाँ की स्त्रियाँ इकट्ठी होकर एक-दूसरे के द्वार पर साँझ के समय देव जगाने के लिए पहुँचती हैं। देव-जागरण के समय वे समवेत स्वर में गाती हैं:

उठूँ सूँ उठाऊँ सूँ
घर की नार जगाऊँ सूँ
छीक्के हाथ धलाऊँ सूँ।

थापा और पकवान गृहस्वामिनी ने पहले ही पीतल की परांत से ढाँप रखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं। देव-जागरण के उपर्युक्त गीत के बाद परिवार के सभी सदस्य एक-साथ परांत को थपथपाते हैं। इस के बाद घर की मालकिन परांत को मिलकर थपथपाने के बाद उसके के नीचे परांत के धरे पकवान उठा लेती है और फिर घर के सदस्यों की मंगल-कामना हेतु इस प्रकार गाती है:

औलाँ-कौलाँ धरे सैं जगेट्टे,
जीएँ बहू सपना तेरे बेट्टे।

पुत्रों की दीर्घायु के साथ परिवार की स्त्रियों के भाइयों की लम्बी आयु के लिए भी मांगलिक वचन कहे जाते हैं, यथा:

औलाँ-कौलाँ धरे सैं जंजीर,
जीएँ बेबे शलभा तेरे बीर।[81]

## पंजाबी लोकाचार

पंजाब में थापे के ऊपर परांत ढकने से पहले देउ-देउनी के पैरों के पास मिठाई और गेहूँ के दाने सजाए जाते हैं। फिर उन पर एक दीपक जला कर धरा जाता है। परांत के बोझ से मिठाई को दबने और दीपक की ज्योति को बुझने से रोकने के लिए चार ठूठियाँ (मिट्टी की बनी छोटी-छोटी कटोरियाँ) चारों कोनों में सजा दी जाती हैं। तदनंतर परिवार के सभी सदस्य पूजा-स्थल पर बैठकर पहले हथेली की ओर से और फिर उलटी ओर से परांत को थपथपाते हुए ये शब्द कहते हैं :

आले दाले धरे अनार।
जीवें नवल तेरे यार।।

परिवार के सब से बड़े पुरुष से आरंभ करके यह सिलसिला नवजन्मा बालक तक चलता है। पुरुषों के पश्चात् स्त्रियों की नाम-गणना भी इस प्रकार करवाई जाती है और यह तुक हर नाम के साथ बोली जाती है :

आले दाले धरीआँ दातनाँ।
जीवें सरोज तेरीआँ साथनाँ।।

इस प्रकार सभी पारिवारिक सदस्यों के साथी-साथिनों की दीर्घायु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंधी शुभेच्छाएँ प्रकट करने के बाद ये शब्द कहे जाते हैं :

उट्ठ नरैन, बैठ नरैन।
जा चने के खेत नरैन।।

तदनंतर परांत के नीचे रखी मिठाई कन्याओं को बाँट दी जाती है। परिवार के अन्य सदस्यों को अलग से रखी मिठाई में से प्रसाद दिया जाता है। पुरुष और बालक बारी-बारी से ठूठियाँ बजाते हैं। परांत में दीपक की लौ के कारण जो कालिमा जम जाती है, उसे परिवार का प्रत्येक सदस्य सुरमे की तरह अपनी-अपनी आँखों में लगा लेता है। गेहूँ के दाने अगली सुबह पक्षियों को डाल दिए जाते हैं और थापे को पानी से धो दिया जाता है। पंजाब में देवोठान के थापे को "नरैन" (नारायण) अथवा "देउ-लिखणा" (देव-चित्रण) कहा जाता हैं। देवोठान एकादशी की पूजा सारे पंजाब में सूर्यास्त के बाद ही होता है।

## राजस्थान की देऊ-ऊठणी ग्यारस

राजस्थान में "देवोत्थान एकादशी" का उच्चारण "देऊ- ऊठणी ग्यारस" हो गया है। घर के आंगन में "विष्णुपद खड़िया" या रोली और सूखे चावलों से माँड (चित्रित) कर पूजा-स्थल तैयार किया जाता है। इस पर फूलों, बताशों और बेरों के साथ दीपक प्रज्वलित करके रखा जाता है। विष्णु-पूजा करते समय परिवार की स्त्रियों के भाइयों के नाम गिनते हुए ये शब्द कहे जाते हैं:

आए कल-कल जाय कल-कल
मामा के जाइसियाँ दुधिया पीसीआँ, मोट्टा होइसीआँ
आलै मै पाँच पचेट।
सपना बहना जीवे थारा दिनेश वीरा।
आए कल-कल जाय कल-कल
मामा के जाइसियाँ दुधिया पीसीआँ, मोट्टा होइसीआँ
आलै मै पाँच पचेट।
निधि बहना जीवे थारा नीरज वीरा।

तदनंतर पूजा-स्थल पर रखा हुआ सारा सामान बच्चों को बाँटकर केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलता हुआ दीया वहाँ छोड़ दिया जाता हैं।

## तुलसी का मांडना एवं तुलसी-विवाह

राजस्थान में कुछ जगहों पर देवोत्थान एकादशी के पूजा हेतु ज़मीन पर लाल मिट्टी से एक खड़ी चतुष्कोण के ऊपर एक आड़ी चतुष्कोण इस प्रकार अंकित की जाती है कि यह एक अष्टकोणात्मक आकृति-सी प्रतीत होने लगती है। नीचे वाले चतुष्कोण के चारों सिरे बाहर को अधिक उभरे रहते हैं। सीधे चतुष्कोण के चारों कोनों पर स्वस्तिका के चिह्न अंकित कर दिए जाते हैं। जब यह मांडना सूख जाता है तब उस पर तुलसी का गमला एक चतुष्कोण पर और विष्णु या शालिग्राम की मूर्ति दूसरे चतुष्कोण के एक सिरे पर रख दिए जाते हैं। इस अवसर पर तुलसी के पौधे पर कोई नई चुनरी तथा एक नया आभूषण रखकर उसे सजाया जाता है। तदनंतर तुलसी माता एवं विष्णु या शालिग्राम की पूजा करके परिवार को प्रसाद-वितरण किया जाता है।[82] कुछ परिवार इस दिन तुलसी-विवाह भी रचाते हैं। इस अवसर पर बंधु-बांधवों और परिवारजनों को भोज पर आमंत्रित किया जाता है और शालिग्राम जी के साथ तुलसी माता के विवाह का दान-दहेज किसी पंडित को अथवा मंदिर के पुजारी को भेंट कर दिया जाता है। इस अवसर पर यह लोकगीत प्रायः गाया जाता है:

धन, बाई तुलछाँ धन थारो नाम
धन, बाई तुलछाँ धन अत्तुत्तम काम
वनमाली रै पूत जायो
जिण तुलछाँ रो बन रोपयो
सावणिये री तुलछाँ बाई
भादुड़े में दो पांन आई
आसोजां में तुलंछा लुल लुल आई
काता तुलछाँ रा लगन लिखाई
कानूड़े सूँ ब्यांव रचायो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिगसरियो वर सूँ डोलै
तुलछाँ रा फूल किसन जी तौले
तुलछाँ अे, थारो धरियो ध्यान
अंत समै में दे-दे रुड़ा पान।।[83]

सावन में उगाए गए तुलसी के पौधे के कार्तिक मास तक पूर्ण विकास एवं विवाह के वर्णन के साथ-साथ मार्गशीर्ष में उसके फूलों पर 'किसन' (कृष्ण) के मुग्ध होने का सुंदर वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है। उनके आशीर्वाद से अंतकाल में मुक्ति की कामना भी की गई है।

## रेणुका मेला

हिमाचल प्रदेश की पहाड़ी भाषा में 'देवोठान' के कई रूपांतरित नाम मिलते हैं। सोलन ज़िले में इसे 'देवठन' कहा जाता है और शिमला ज़िले में 'देऊठोण'। क्योंकि पंजाब की तरह 'देऊठोण' की पूजा-सामग्री कन्याओं को दी जाती है, इसी कारण इसे 'लड़कियों का त्योहार' भी कहा जाता है।[84] कार्तिक शुक्ला एकादशी को सिरमौर ज़िले के 'रेणुका' नामक स्थान पर एक प्रसिद्ध मेला आरंभ होता है। श्री मौलू राम ठाकुर ने इसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित शब्दों में दिया है:

"विष्णु के अवतारों में हिमाचल प्रदेश में परशुराम का स्थान भी बहुत सम्मान्य है।.... सिरमौर ज़िले में ददाहू के निकट परशुराम ताल उनकी पूजा को सर्वदा याद रखे हुए है। पास ही परशुराम की माता रेणुका का सरोवर है, जिसे रेणुका झील कहते हैं। अनुश्रुति के अनुसार यहीं पर परशुराम ने अपने पिता जमदग्नि के आदेश पर माता रेणुका का वध किया था और बाद में इस आज्ञा के अनुपालन पर प्रसन्न हुए पिता से वरदान के रूप में पुनः माता रेणुका को जीवित कराया था। यहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक मास में शुक्ल पक्ष की एकादशी को भारी मेला लगता है, जिस में रेणुका, जमदग्नि और परशुराम को श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है। श्रद्धालु सरोवर में स्नान करते हुए गाते हैं:

कहें भगत मुझ पापी का छोड़ ख्याल,
भव सागर से तर जावें,
जिन पर होत परशुराम दयाल।[85]"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेले के अवसर पर भगवान परशुराम तथा अन्य स्थानीय देवताओं की मूर्तियों को सजी हुई पालकियों में रखकर रेणुका झील में स्नान करवाने के लिए लाया जाता है। लोक विश्वास है कि इस प्रकार परशुराम जी अपनी माता के दर्शन करने के लिए हर वर्ष पधारने संबंधी वचन को निभाते हैं। तदनंतर मूर्ति को परशुराम मंदिर में टिका कर मधुर ध्वनियों में आरती-पूजन होता है। देर रात में 'गूर' आगामी महीनों में घटित होने वाली घटनाओं के बारे में भविष्यवाणियाँ भी करते हैं। विदा होने से पूर्व श्रदालुजन टोपियाँ, पगड़ियाँ अथवा रेणुका झील से जल की एक अंजुलि भर कर और आपस में बदल कर 'धर्म भाई' बन जाते हैं। स्त्रियाँ भी इसी प्रकार आपस में चुनरी बटा कर 'धर्म बहनें' बन जाती हैं।[86]

हिमाचल प्रदेश के सोलन ज़िले में 'देवोठान एकादशी' को ही 'बुड़ि दवालि' कहा जाता हैं।[87] वस्तुत: 'बुढ़ी दियाउड़ी' एक भिन्न लोकपर्व है जो कि 'देवोठान एकादशी' से लगभग बीस दिन बाद मनाया जाता है। इसके विषय में हिमाचली विद्वानों के मत उद्धरणीय हैं:

(क) "हिमाचल प्रदेश के मध्यवर्ती भाग में प्रति वर्ष 'बुढ़ी दियाउड़ी' का मेला दीपमाला से ठीक एक महीने बाद आरंभ होता है।..... 'बुढ़ी दियाउड़ी, दयाउड़ी अथवा मशराड़ी का यह मेला व्यास, सतलुज, पब्बर तथा गिरी-यमुना की उपत्यकाओं, अर्थात् सरस्वती-सतलुज के जल-संग्रहण क्षेत्र में ही मनाया जाता है। ..... मार्गशीर्ष की अमावस्या को दशनामी अखाड़े के प्रांगण में प्रचंड प्रज्वलित अग्निपुंज के इर्द-गिर्द गढ़िए-दानुए युद्ध का अभिनय होता है और दोनों पक्ष एक-दूसरे को नीचा दिखाने की हर कोशिश करते हैं।[88]"

(ख) कुल्लू ज़िले का निरमंड क्षेत्र किन्नौर ज़िले का सीमांवर्ती भाग है..... निर्मण्ड गाँव में दीपावली के ठीक एक मास पश्चात् आने वाली अमावस्या को 'दियाऊड़ी या 'बूढ़ी दीवाली' का मेला लगता है। दियाऊड़ी के मेले का संबंध नाग-खशजन-जातियों के आपसी संघर्ष से जुड़ा प्रतीत होता है।[89]"

शिमला ज़िले के कुछ भागों में 'बूढ़ी दीवाली' को 'दैउली'[90] भी कहा जाता है।

## राजस्थान का "पौष बड़ा" लोकोत्सव

"पौष बड़ा" के आयोजन पौष मास में राजस्थान की राजधानी जयपुर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष रूप से होते हैं। इस लोकोत्सव में "सर्वदेव-एकता" की भावना निहित है और ये आयोजन देव मंदिरों में आराध्यदेव से संबद्ध दिनों अथवा तिथियों पर संपन्न होते हैं। श्रद्धालुओं की दानशीलता एवं मंदिर की प्रन्यासी समिति की सुव्यवस्था के आधार पर ऐसा कार्यक्रम एक ही मंदिर में पौष मास में कई बार संपन्न होता है। मंदिर विशेष में "पौष-बाड़ा" के कार्यक्रम इस प्रकार आयोजित होते है:

(1) गणेश जी के मंदिरों में बुधवार को।

(2) हनुमान जी के मंदिरों में मंगलवार तथा शनिवार को।

(3) शनि देवता के मंदिरों में शनिवार को।

(4) दुर्गा माँ के मंदिरों में अष्टमी, नवमी, ग्यारस (एकादशी), पूर्णिमा, अमावस्या और प्रदोष आदि मांगलिक तिथियों को।

(5) भगवान शिव के मंदिरों (शिवालयों) में सोमवार को।

'पौष बड़ों' का आयोजन करने से पूर्व मंदिरों की प्रबंध समितियों से जुड़े लोग श्रद्धालुओं के साथ विचार-विनिमय करके अपने आराध्य देव से संबद्ध दिन अथवा तिथि निश्चित कर लेते हैं। समारोह से पूर्व रात्रि को मंदिर में जागरण का कार्यक्रम रखा जाता है। उसमें भक्ति-संगीत का कार्यक्रम चलता है। भक्ति संगीत की 'हाजिरी' के साथ पौष की रात में भिगोई एवं पिसी हुई चवले की दाल के बड़े बनाए जाते हैं। इसे "चौले की दाल" भी कहा जाता है, जिसे पंजाबी में 'रौंगी' और हिन्दी में 'लोबिया' पुकारा जाता है।

चवले की दाल छिलके वाली ही ली जाती है। सौ जनों की सामग्री तैयार करने के लिए आठ किलो दाल और चार किलो तेल का उपयोग होता है। पीठी में कई प्रकार के मसाले मिलाकर बड़े तैयार किए जाते हैं और पूजा-आरती के बाद भगवान को गर्म-गर्म बड़ों का भोग लगाया जाता है। तदनंतर श्रद्धालुओं को बड़े आदर के साथ 'प्रसादी' बाँटी जाती है। स्वाद बढ़ाने के लिए कुछेक मंदिरों में बड़ों के अतिरिक्त मिष्टान्न भी तैयार किए जाते हैं। गोविन्द देव जी के मंदिर में चावल और मूँग की खिचड़ी को खीर की तरह दूध में बनाया जाता है। खिचड़ी के नमक की जगह इसमें मीठा ही मिलाया जाता है। बादाम, किशमिश, नारियल (खोपरा) और पिस्ता आदि मेवों से इसके स्वाद को बढ़ाया जाता है। इसे 'मेवा खीचड़ा' कहा जाता है।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भौमिया जी (एम.एम. अस्पताल में स्थित) मंदिर" में बड़ों के साथ-साथ पूओं की 'प्रसादी' बाँटी जाती है। भेरुं (भैरों) जी के मंदिर में बड़े, पूए और बाजरे का खीचड़ा भी बनाया जाता है। वैसे तो जयपुर नगर के हर गली-मुहल्ले तथा चौराहों पर बने मंदिरों में "पौष बड़ों" का कार्यक्रम पूरे महीने कहीं न कहीं चलता ही रहता है, फिर भी भक्तों की सुविधा के अनुसार 'प्रसादी' वितरण के लिए समय-परिवर्तन भी कर लिया जाता है। संवत् 2052 के पौष मास (दिसंबर 1995 एवं जनवरी 1996) में झोटवाड़ा स्थित तारानगर के महादेव मंदिर में यह आयोजन 3 बजे मध्याह्न से रात्रि दस बजे तक चला। ब्रह्मपुरी रोड माधो विलास पुलिया के पास स्थित तत्कालेश्वर महादेव मंदिर में एक बजे मध्याह्न से सायं पाँच बजे तक ये आयोजन हुए। मानसरोवर के "चमत्कार शिव हनुमान मंदिर" में सायं पाँच से सात बजे के दौरान "राम चरित मानस" के सुंदर कांड के पाठ के बाद बड़ों की 'प्रसादी' बाँटी गई। कदम डूँगरी में ऐसा कार्यक्रम रविवार को दोपहर बारह बजे रखा गया।

जयपुर नगर के "ताड़केश्वर मंदिर", "चांदपोल वाले हनुमान मंदिर" "रामगढ़ मोड़ पर बंगाली बाबा का मंदिर", "मोती डूँगरी गणेश जी मंदिर" घाट के बाला जी मंदिर, कदम्ब डूँगरी मंगलाश्रम, ब्रह्मपुरी के छोटे अखाड़े में तथा गंगापोल के बाहर स्थित मुरली मनोहर के मंदिर में एवं तेलियों का मुहल्ला स्थित चैतन्येश्वर महादेव मंदिर में हज़ारों भक्त जनों ने "पौष बड़ा" महोत्सव में भाग लिया।[91]

## महा शिवरात्रि

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को शिव-पार्वती के विवाह के उपलक्ष्य में देश के अन्य भागों की भाँति उत्तर भारत में भी अधिकांश लोग 'शिवरात्रि' को उपवास रखते हैं। वे शिवालयों में शिवलिंग को विल्वपत्र, पुष्प और जल भेंट करते हैं। उस दिन शिवालयों में घुटी हुई भाँग का प्रसाद भक्तजनों को प्रदान किया जाता हैं। उपवास रखने वाले स्त्री-पुरुष इस दिन किसी अन्न का सेवन नहीं करते। वे सिंघाड़े, शकरकंदी, आलू और फलों से अपना व्रत खोलते हैं। भगवान शिव को समर्पित की जाने वाली समूची सामग्री को लोक भाषा में 'बेल पत्तरी' तथा भक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनों के भोजन संबंधी पदार्थों को 'फलाहारी' कहा जाता है। 'शिवरात्रि' के दिन आर्य समाजी मंदिरों में ऋषि-बोध-उत्सव मनाया जाता है। आर्य समाजी महाशयों का मत है कि उस दिन आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद को ज्ञान-प्राप्ति हुई थी। उसी की स्मृति में आर्य समाज मंदिरों में होम-यज्ञ एवं प्रवचनों के पश्चात् प्रीति-भोज का आयोजन भी होता है, जिसे आम बोली में 'भंडारा' कहा जाता है।

## विचित्र लोकाचार

### (क) 'हेरथ' :

काश्मीरी पंडित 'शिवरात्रि' को हेरथ कहते हैं। 'हेरथ' पर्व फाल्गुन मास की प्रतिपदा से आरंभ हो कर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तक मनाया जाता है। तेरह-चौदह दिन के इस उत्सव का आरंभ घर की सफ़ाई से होता है। पहले नौ दिनों में काश्मीर का प्रत्येक ब्राह्मण परिवार अपने मकान को गोबर तथा मिट्टी से खूब लीप-पोत कर शुद्ध कर लेता है। दसवें दिन प्रत्येक गृहस्थ अपनी सामर्थ्य के अनुसार कन्याओं को नेग में खड़ाऊँ, नमक, नान और कुछ धन राशि भेंट करता है। इन उपहारों में 'काँगड़ी ' (काश्मीरी 'अंगीठी') देना भी अत्यावश्यक होता है।[92] इस सारी सामग्री को काश्मीरी भाषा में 'अतगथ'कहा जाता है।

ग्यारहवें दिन माँस-मछली पकाए जाते हैं और बंधु-बाँधवों को उपहार के रूप में वितरित किए जाते हैं। बारहवें दिन 'वाग्अरय वाह' मनाया जाता है। इस अनुष्ठानिक कृत्य को संपन्न करने के लिए मिट्टी के एक पात्र को शिव का प्रतीक मानकर पूजा जाता है। पूजा में सम्मिलित सगे-संबंधियों और मित्रों के लिए एक छोटे-से सहभोज की व्यवस्था भी की जाती है। तेहरवें दिन (त्रयोदशी) को शिवरात्रि मनाई जाती है। उस दिन परिवार का सब से बड़ी उम्र का व्यक्ति उपवास रखता है। रात्रि होने पर पूजा-स्थल पर मिट्टी के दो नए घड़ों में कुछ अखरोट रखे जाते हैं। इन में से एक घड़ा भगवान शिव का और दूसरा भगवती पार्वती का प्रतीक होता है। रोली, चंदन, अक्षत, तथा पुष्पादि से शिव-पार्वती-पूजन के उपरांत आराध्य देव को माँस-मछली भेंट किए जाते हैं और इस 'प्रसाद' का रात्रि-सहभोज में अन्य व्यंजनों के साथ उपयोग किया जाता है। कुछ काश्मीरी पंडितों में इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर पर शाकाहारी भोजन बनाने की रीत भी विद्यमान[93] है। फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी को ही मुख्यत: 'हेरथ' कहा जाता है।

हेरथ से अगले दिन "सलाम" मनाई जाती है। यह समारोह का चौदहवाँ दिन होता हैं। इसके विषय में एक विद्वान का मत है:

"सलाम" मूलत: फ़ारसी शब्द है। अत: हेरथ के पर्व पर यह मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव का द्योतक है। मुसलमान 'ईद' पर 'सलाम' मनाते हैं। यह एक प्रकार का समापन समारोह है। इस अवसर पर कुटुम्ब में प्राय: उपहारों का आदान-प्रदान होता है।[94]" कुछ परिवारों में छोटी अवस्था के लोग वयोवृद्धों को चीनी-गुड़ आदि भेंट करते हैं और विवाहिता बेटियों को पके हुए चावल तथा माँस उपहार स्वरूप भेजे जाते हैं।[95]"

कुछ काश्मीरी पंडित 'हेरथ' महोत्सव पूरा पखवाड़ा मनाते हैं और इसका समापन पंद्रहवें दिन, फाल्गुन मास की अमावस्या को करते हैं। उस दिन के कृत्यों को 'डून्य-मावस' कहा जाता है। नवविवाहिता स्त्रियाँ अथवा परिवार का कोई वयोवृद्ध शिव और शक्ति के प्रतीक, अखरोटों से भरे हुए घड़ों को, किसी नदी के तट पर ले जा कर पूजा करता है। वहाँ से लौटने पर ये अखरोट नैवेद्य के रूप में बंधु-बाँधवों तथा परिवार के सभी सदस्यों को बाँट दिए जाते हैं। एक काश्मीरी लोकगीत में इन पंद्रह दिनों के नामों का उल्लेख भी हुआ है, यथा:

अख त अख खुदाया,
ज़अ ति ज़िन गेडराह,
त्रेशिकलि डूना,
चोर कुंजाला,
पांच गई पानडव,
शे त शेरीषी
सथ जाल-सतम्,
आठ हुर्य आठम,
नव चित्रनवम,
दह दशह्हारा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काह गाड़अ-काह,
वाग्अरय-बाह,
हेरचअ-त्रुवाह,
क्राल-चौदाह,
डून्य-मावस,
सोजिन-ओकदाह
वाह वलि वाह।। वाह।।[96]

'हेरथ' संबंधी इस लोकगीत द्वारा काश्मीरी सीखने वालों को आसानी से एक से पन्द्रह तक की गिनती सिखाई जा सकती है। 'हेरथ' के पूजा-गीतों को 'भजन' या 'पाठ' कहा जाता है। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है:

बर बुकअ आयस स्वर्गच हूर, शिव जी मो हय्म दूर।
गअफिल पानस कअफिल दूर, शिव जी सुय गोम कसूर।
ज़रह न तअ करअ क्याह मलना सूर, साख्य छाँजाव कअंसिनो पूरा शिव।
कुनिरस तहन्दिस अन्द-लोन नो, युस गव मनअ किन तमी लुोब नूरा।।
शिव।।[97]

## (ख) हिमाचली लोक मान्याताएँ और मेले :

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भागों में शिवरात्रि संबंधी अनेक अनुष्ठान मिलते हैं। शिमला, मंडी और कुल्लू के सिराज (शिवराज) क्षेत्र में पूजा-अर्चना के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। शिवरात्रि मनाने मे लिए वर्ष के आरंभ से ही गाँव के घरों में जा कर अन्न एवं धन एकत्र किया जाता है। फाल्गुन की चतुर्दशी को प्रत्येक परिवार अपने घर के एक कोने में चावल का छोटा-सा ढेर लगा लेता है और उस पर एक गलगल रख दिया जाता है। यह गलगल शिवलिंग का प्रतीक माना जाता है। अन्न के इस ढेर पर एक दीपक जला कर रखा जाता है, जिसे 'संदीहा' कहा जाता है।

पूजा-कक्ष की दीवारों पर रंग-बिरंगे चित्र अंकित करने के बाद कमरे की छत से चावल के ढेर पर गलगलों से भरी एक माला लटका दी जाती है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माला से ही कमरे के फ़र्श से छत की ऊँचाई का अनुमान लगाया जा सकता है। गलगलों की इसी माला को 'महादेव' कहा जाता है। हाथ से गढ़ी हुई दो मूर्तियाँ भी चावल के ढेर के समीप टिका दी जाती हैं। इनमें से एक मूर्ति गोबर से बनाई जाती है और दूसरी अपने खेत से लाई गई मिट्टी से। मिट्टी की मूर्ति 'गौरा' तथा गोबर की प्रतिमा 'गणेश' जी का प्रतीक होती है। इस प्रकार शिव, पार्वती और गणेश के रूप में पूरे शिव-परिवार की अवतारणा की कल्पना की जाती है।

त्रिमूर्ति के सामने एक या अधिक बकरों की बलि देने के पश्चात् उनके सिर अनाज के ढेर के निकट रख दिए जाते हैं और चारों ओर कुछ दूरी पर घी फैला कर उसे तीली दिखा दी जाती है। किन्तु इससे अनाज और बकरों के सिर जलने से बचाए जाते हैं। इस कार्य से पहले घर में गेहूँ के आटे से बनाए गए बड़े-बड़े रोट शिव-परिवार को भेंट किए जाते हैं। "चढ़ावे" का यह रोट कई बार पन्द्रह-बीस किलो का एक ही होता है। इसके बाद पहाड़ी स्वर में मंत्र या लोकगीत की एकाध तुक पढ़ कर समूचा परिवार शिव-पूजन करता है।

जो भक्त शिवरात्रि का व्रत रखते हैं; वे पूजा के समय सब से पहले रोली, पुष्प और रोट का कुछ अंश शिव जी को चढ़ाते हैं और परिवार के अन्य सदस्य उसके बाद ये धार्मिक कृत्य निभाते हैं। पूजा के बाद भोजन किया जाता है। 'प्रसाद' के रूप में 'रोट' का थोड़ा-थोड़ा भाग संबंधियों एवं मित्रों को भी बाँटा जाता है। कई जगह किल्टों में भोजन तथा रोट भर कर दूरस्थ गाँवों के निवासी रिश्तेदारों को भी भेजा जाता है। इस प्रकार शिवरात्रि' के शुभ अवसर पर घर-घर में शिव-दर्शन किया जाता है।[98]

हिमाचल के गद्दी जन जातीय क्षेत्र में शिवरात्रि की मान्यता और अनुष्ठानों का उल्लेख एक विद्वान ने इस प्रकार किया है:

"गद्दी जन जाति का..... विश्वास है कि इस दिन शिव जी का पाताल लोक से कैलाश पर्वत पर आगमन होता है। इस आगमन की खुशी में वे व्रत रखते हैं। ..... इस शुभावसर पर संध्या समय 'कंरगोरे' की काँटेदार शाखा द्वार के ऊपर लगाई जाती है। उनकी ऐसी मान्यता है कि जोगिनी अथवा डायन द्वार को खोले तो उससे उँगली का छेदन हो जाता है और वह किसी प्रकार की क्षति पहुँचाए बिना पलायन कर जाती है। तत्पश्चात् इस काँटेदार शाखा को होली के अवसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर आग में जला दिया जाता है।[99]"

सर्दी बढ़ जाने पर गददी लोग ऊँची पहाड़ी चोटियों से उतर कर कम ठंडे इलाक़ों में अपनी भेड़-बकरियों के साथ आ जाते हैं। शिवरात्रि के दिनों में शीत का प्रकोप घट जाने पर वे पुन: अपने घरों की ओर लौट आते हैं। अपने जीवन के इसी उतार-चढ़ाव की दशा का आरोप उन्होंने भोले बाबा शिव जी पर कर दिया है। इसी कारण शिवरात्रि महोत्सव के अवसर पर शिव जी के पाताल लोक से कैलाश-पर्वत पर लौटने की परिकल्पना की गई है।

## (ग) मंडी का शिवरात्रि मेला :

हिमाचल प्रदेश के मंडी ज़िले में महाशिवरात्रि को "शौराच" भी कहा जाता हैं। मंडी नगर में एक दर्जन से अधिक प्रसिद्ध शिवालय होने के कारंण इस शहर को "छोटी काशी" भी पुकारा जाता है। अर्द्ध नारीश्वर, भूतनाथ, त्रिलोकीनाथ, नीलकंठ महादेव, एकादशरुद्र महादेव नामक यहाँ के शिवालय अनेक सदियों की स्थापत्य एवं मूर्ति कला का इतिहास संजोए हुए हैं। शिवरात्रि के अवसर पर मंडी के भगवान राज माधव को नमन करने एवं शिव-पार्वती विवाह में सम्मिलित होने के लिए लगभग सौ ग्राम-देवता मंडी में एकत्र होते हैं। दस दिन तक चलने वाले इस मेले में श्रद्धालुजन अपने स्थानीय देवता के चिह्नों अथवा मूर्तियों को छोटी-छोटी सजी -धजी पालकियों में उठा कर यहाँ पहुँचते हैं। पहाड़ी धुनों में स्थानीय वाद्य-यंत्रों की गूँज समूचे वातावरण को सुरम्य बना देती है।

मंडी एक पुरानी रियासत थी। इसके इतिहास के अनुसार मंडी के राजा सूरज सेन ने सन् 1637-1644 ईस्वी तक राज्य किया। अठारह पुत्रों की मृत्यु हो जाने पर उत्तराधिकारी के अभाव में उन्होंने सन् 1648 में भगवान कृष्ण को अपना राज्य सौंप दिया और स्वयं प्रभु के प्रतिनिधि बन कर राज-काज चलाने लगे। भगवान कृष्ण से संबद्ध इस मंदिर में मुरलीधर की चाँदी की प्रतिमा प्रतिष्ठित है और यह "माधवराय मंदिर" के नाम से विख्यात है। एक लेख के अनुसार यह प्रतिमा भीम नामक स्वर्णकार ने तैयार की थी, जिसकी स्थापना 15 फाल्गुन, 1705 विक्रमी (सन् 1648 ई.) को की गई थी।

कई शताब्दियों से चले आ रहे इस मेले को अब हिमाचल प्रदेश सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने एक व्यवस्थित रूप दे दिया है। अब दूरस्थ स्थानों से आए देवगण की अगवानी और राज माधव जी के दर्शन के कार्यक्रम इस प्रकार धूम धाम से आयोजित होते हैं:

पहले दिन - श्री देव कामरू नाग जी का स्वागत और उनका देवी रूपेश्वरी के साथ भवानी महल की ओर प्रस्थान; जन समूह द्वारा अन्य आने वाली देव-मूर्तियों का स्वागत।

दूसरे दिन - श्री राज माधव राव के भूतनाथ मंदिर तक शोभा यात्रा एंव पूजा और भवानी महल में अन्य देव-मूर्तियों का स्वागत।

तीसरे दिन - पाड्डाल के श्री जगन्नाथ जी मंदिर में पूजा; श्री राज माधव राव जी की पूजा; पड्डाल में शोभा यात्रा के रूप में पधारे स्थानीय देवताओं का श्री राज माधव राव से "मिलन"।

चौथे दिन - तरण की श्यामकाली जी का पूजन और सभी देवताओं की तरणा तक शोभा यात्रा।

पाँचवें दिन - श्री रामचन्द्र जी तथा देवी जालपा जी का पूजन।

छठे दिन - श्री सिद्ध काली जी तथा श्री राज माधव राव जी की पूजा; पड्डाल में शोभा यात्रा।

सातवें दिन -भुवनेश्वरी देवी जी की पूजा।

आठवें दिन -त्रिलोकी नाथ जी एवं शीतला देवी जी की पूजा।

नौवें दिन - भिउली की भीमकाली जी की पूजा।

दसवें दिन — रूपेश्वरी देवी जी के मंदिर में पूजा; दर्शनार्थ आए देवताओं की एकत्रता और अपनी-अपनी परंपरा के अनुसार जुलूस बनाकर पड्डाल की यात्रा; श्री राज माधव जी के मंदिर में पूजा-अर्चना। विदायगी से पूर्व विभिन्न स्थानों से आए देवताओं का श्री राज माधव राव जी से "मिलन"।

इन कार्यक्रमों के दौरान हास्य कवि गोष्ठी, कव्वाली, पुलकित (orchestra), कुश्तियों और रस्सा-खींचने की प्रतियोगिताएँ भी होती हैं। इस अवसर पर पटियाला स्थित उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र के कलाकार भी अनेक मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं।

इस प्रकार भूतनाथ-पूजन, विभिन्न देवियों की आराधना तथा मंडी के प्रमुख देवता श्री राज माधव राव जी की पूजार्चना का सामूहिक रूप मंडी की शिवरात्रि को क्रमशः शैव, शाक्त तथा वैष्णव विचारधाराओं के समन्वय का सुंदर लोकपर्व बना देता है।

## (घ) "छिब्बर" परिवारों एवं पंजाब की शिवरात्रि

मोहियाल ब्राह्मण स्वयं को भगवान परशुराम के वंशज मानते हैं। वे अन्य ब्राह्मणों की भाँति दान-दक्षिणा से आजीविका अर्जित करने में विश्वास नहीं करते। मोहियाल ब्राह्मणों के मोहन, वैद, बाली, मेहता आदि अनेक गोत्रों में से एक 'छिब्बर' भी है। एक विद्वान के अनुसार 'छिब्बर' शब्द की व्युत्पत्ति "शिवि-वर" से हुई है।[100] हमारा विचार है कि 'शिव जी का वरदान' की सही अर्थवत्ता को ये छिब्बर बंधु 'शिवरात्रि' के अवसर पर बड़े अद्‌भुत ढंग से प्रदर्शित करते हैं।

छिब्बर परिवार का कोई भी सदस्य भले ही कितनी भी दूर हो, उसका यही प्रयास होता है कि वह 'शिवरात्रि' मनाने के लिए अपने सगे-संबंधियों के बीच पहुँच जाए। घर के सभी प्राणी शिवरात्रि का व्रत रखते हैं। स्नान से शरीर-शुद्धि के बाद वे शिवालय जा कर भगवान शिव को बिल-पत्तरी, धतूरा, भाँग, चावल, चंदन एवं पुष्प भेंट करते हैं। उसी मंदिर में वे शिव जी के लिए एक सफ़ेद धोती, गौरजा (पार्वती) के लिए लाल चुनरी और गणेश जी के लिए सफ़ेद रंग का परणा (अंगोछा) भी अपनी पूजा-सामग्री के साथ ले जाते हैं।

शिव-मंदिर के पूजा-अर्चना के अनुष्ठानों की पूर्ति के बाद गृहस्वामिनी अपने निवास स्थान पर लौट कर चूल्हे पर गुड़-आटे का हलवा बनाती है। उसके बाद फुलके सेंक लेने पर एक फुलके पर हलवे का थोड़ा-सा अंश रख कर कहती है – "एह है वड्डे वडेरिआँ दा" (परिवार की दिवंगात्माओं को भेंट)। फिर दूसरी रोटी पर उतना ही हलवा धर कर पहले फुलके पर उलटा कर रखते हुए कहती है –"एह वाधे दा।"(= बुजुर्गों के आशीर्वाद से परिवार की वृद्धि के उपलक्ष्य में भेंट)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर नीचे धरे जाने वाले ये फुलके अनचुपड़े होते हैं। इन पर घी या तेल आदि कोई तरल पदार्थ नहीं लगाया जाता। ऐसा करने के बाद वह हाथ जोड़ कर कुटुंब के दिवंगत पुरखों का स्मरण करते हुए उनसे प्रार्थना करती है कि अगली शिवरात्रि तक परिवार में सुख-शान्ति रहे और सभी बंधु-बांधवों की उन्नति हो। फिर हलवे वाले दोनों फुलके चूल्हे के पीछे किसी तश्तरी से ढाँप कर रख दिए जाते हैं और उनके निकट एक दीपक जला दिया जाता है। दीया सरसों के तेल से भरा होता है। उसमें तेल की मात्रा इतनी अधिक होती है कि वह अगली सुबह तक जलता रहता है। ऐसा होना अत्यावश्यक माना जाता है।

दोपहर के भोजन में सुबह तैयार किया गया हलवा सब से पहले सेवन किया जाता है। उसमें बिन चुपड़ी रोटी, दही और विशेष रूप से तैयार किया गया सरसों का साग सम्मिलित होते हैं। इसके बाद घर में चूल्हा जलाना निषिद्ध है और रात को भोजन नहीं बनता। इस प्रकार सारे परिवार का उपवास दिन के पहले भाग में और मध्याह्न भोजन के बाद में दो भागों में बँट कर अगली प्रातः तक चलता है।

शिवरात्रि से अगले दिन चूल्हे के पीछे रखा हुआ सामान गृह-स्वामिनी निकाल लेती है। दोनों रोटियों में से आधी रोटी 'पितरों' के नाम पर तोड़ कर अलग रख दी जाती है, जिसे अवकाश मिलने पर किसी नदी अथवा नहर के बहते पानी में प्रवाहित करना अनिवार्य होता है। वहाँ से लौट कर उस जल स्रोत का पानी लाकर रसोई में छिड़क दिया जाता है। शेष बची डेढ़ रोटी, दही, बासी साग और हलवा आपस में रला-मिला कर पूरे परिवार को दो-एक ग्रास के रूप में बाँट दिया जाता है। जब तक इस 'प्रसाद' को सारा परिवार 'छक' (सेवन) नहीं लेता, तब तक घर की रसोई में आग नहीं जलाई जा सकती।

मिले-जुले मीठे और नमकीन स्वाद वाला शिवरात्रि का प्रसाद बासी होने के बावजूद बड़े स्वाद के साथ सेवन किया जाता है। "पार्वती जी" ही "अन्नपूर्णा" के नाम से प्रसिद्ध हैं। वह देवी, जो स्वादिष्ट पदार्थों से परिवार को तृप्त कर दे, वह 'अन्नपूर्णा' कहलाने की सही अधिकारिनी है। विवाह के उपरांत कैलाशपति शिव जी की गृह-स्वामिनी पार्वती जी को 'अन्नपूर्णा' की पदवी प्राप्त हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि छिब्बर परिवारों की महिलाएँ उसी "रीत" को श्रद्धा पूर्वक निभाती


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई 'अन्नपूर्णा' की महिमा का अद्भुत ढंग से प्राकाट्य करती हैं।[101]

## शिवरात्रि के अन्य प्रसिद्ध मेले

वैसे तो पंजाब के सभी बड़े शिवालयों में महाशिव रात्रि के मेले लगते हैं, फिर भी कलानौर (ज़िला गुरदासपुर) के मेले के साथ एक लोक कथा जुड़ी हुई है। जनश्रुति के अनुसार हरिदत्त नामक एक राक्षस को अपने बाहुबल पर बड़ा अभिमान था। उसकी पत्नी बिन्दु भी बड़ी सती-साधवी थी। अत्याचारी राक्षस जहाँ भी ईश्वर भक्तों को देखता, उनकी हत्या कर देता। अपने श्रद्धालुओं की दुर्दशा देखकर शिव जी और माता कालिका ने हरिदत्त का अहंकार तोड़ने का निश्चय किया। दोनों को वहाँ की जनता से ज्ञात हुआ कि हरिदत्त की शक्ति का रहस्य उसकी पत्नी का सतीत्व ही है और जब तक बिंदु का सतीत्व भंग नहीं होगा, तब तक हरिदत्त का नाश नहीं हो सकेगा।

कालिका जी की प्ररेणा से शिव जी ने हरिदत्त का रूप धारण कर लिया। बिन्दु उनके इस मायावी पन को पहचान न सकी और बहुत दिनों से घर न लौटे पति का दर्शन करके हषोत्फुल्ल हो उठी। भगवान शिव के मन में पतिदेव हरिदत्त की अवधारणा करने से ही बिन्दु का सतीत्व भंग हो गया और भोलेनाथ ने वहाँ से अंतर्धान होकर वन में विराजमान हरिदत्त की हत्या कर दी। यह समाचार पाते ही बिन्दु ने हरिदत्त बन कर उसे छलने वाले व्यक्ति को मन ही मन कोसा। सती बिन्दु का शाप खाली न गया और उसके कथनानुसार शिव जी पत्थर बन गए और वह पाषाण-खंड उसी जगह गिरा, जहाँ पर कलानौर का प्रसिद्ध शिवालय विद्यमान है।

मुग़ल सम्राट् अकबर जब कलानौर में क़िला बनवाने के लिए खुदाई करवा रहा था तो एक मज़दूर की कुदाल शिव जी के धड़ से बने पत्थर पर लग गई। कसी की चोट लगने पर ही रक्त की धारा पत्थर से फूट पड़ी। तभी आकाशवाणी हुई – "अकबर! यह मेरी जगह है, तूँ किसी दूसरे स्थान पर अपना किला बनवा"। कहते हैं कि श्रद्धावनत बादशाह अकबर ने वहाँ पर किले के निर्माण का विचार छोड़कर एक शिव मंदिर बनाने का आदेश अपने कर्मचारियों को दे दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्राचीन मंदिर में प्रतिष्ठित किए गए शिवलिंग के बारे में यह अनुश्रुति है कि वह हर वर्ष एक तिल के बराबर बढ़ता जा रहा है। जब यह छत को छूने लगेगा तो संसार में प्रलय आ जाएगी और सच्चे ईश्वर भक्त ही जीवित रह पाएँगे।[102] पंजाब के महामहिम राज्यपाल बख्शी कृष्ण नाथ जी छिब्बर भी हिन्दू-मुस्लिम (अकबर की देन) समन्वय के प्रतीक इस शिवालय के दर्शनार्थ पधारे थे।

स्वत: प्रकट होने वाले शिवलिंग की अवधारणा को लेकर पंजाब के रणीके (ज़िला संगरूर) गाँव में एक शिवालय बनाया गया है। वहाँ पर शिवरात्रि उत्सव का नाम ही 'रणीके दा मेला' पड़ गया है। कहते हैं कि नि:संतान स्त्रियाँ यहाँ पर शिवरात्रि के दिन को आकर यदि मन्नत मानती हैं तो शिव-कृपा से वे पुत्रवती बन जाती हैं।[103]

हरियाणा का तो एक-एक कण शिव जी से जुड़ा हुआ है। एक पुरातत्ववेत्ता के शब्दों में "हर" का अर्थ शिव जी महाराज और 'यान' का अर्थ वायुयान, समुद्रयान, भूमियान = रथादि हो सकता है।..... आर्यावर्त के इसी सर्व सुंदर तथा अति रमणीय प्रांत में शिव जी महाराज स्वयं अपने 'यान' अर्थात् रथ पर विचरण करते रहे हैं। इसी लिए इस प्रदेश का नाम ही हरियाणा = हरयाणा हो गया।..... यहाँ के लोग आज भी अन्य देवी-देवताओं की अपेक्षा शिव जी में ही अधिक आस्था, विश्वास व भक्ति रखते हैं।[104]" अत: हरियाणा के सभी शिवालयों के शिवरात्रि मेलों की विशेष महिमा है।

## पाद-टिप्पणियाँ

(1)(a) Som Nath Dhar: Jammu and Kashmir – The Land & the People, Page 4.

(b) Kaumudi : Kashmir : Its cultural Heritage, Page 5.

2. सोमसी, वर्ष 25, अंक 1 (सितंबर, 1993) (ओंकार लाल भारद्वाज 'चंगर': कांगड़ा के शक्तिपीठ), पृष्ठ 58।

(1) मौलू राम ठाकुर : हिमाचल में पूजित देवी-देवता, पृष्ठ 44।

4 The Tribune, April 13, 1994 [M.S. Parmar : Kangra Baisakhi is different].

5 एन.डी. पुरोहित : हिमाचली लोकरंग, पृष्ठ 79।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6 The Tribune, April 13, 1994 ।

7 एन.डी. पुरोहित : हिमाचली लोकरंग, पृष्ठ 801 ।

8 Indian Express, April 9, 1988 [Ramesh K. Dhiman : The festival of Ralli]

9-10 एन.डी. पुरोहित : हिमाचली लोकरंग, पृष्ठ 80-81 ।

11 डॉ. जगमल सिंह : राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 141 ।

12 पूर्णिमा गहलोत : राजस्थान गाता है, पृष्ठ 13 ।

13 डॉ. जगमल सिंह : राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 141 ।

14 चैत्र शुक्ला तृतीया या चतुर्थी को "गवर की सवारी" निकलती है, जो सामान्यत: 'गवर का मेला' कहलाता है। चतुर्थी को विभिन्न ठिकानों, सैठों आदि की मूर्तियों के साथ सवारी निकलती हैं। ये मूर्तियाँ (ईसर व गणगौर) राजस्थानी वेश-भूषा में होती हैं.... स्त्रियाँ रंग बिरंगे वस्त्रों व आभूषणों से लदी होती हैं। वे अपनी-अपनी गवरें सिरों पर लिए होती हैं। स्त्रियाँ गवरों को बिठाकर गाने के साथ धूमर नृत्य भी करती हैं। मेले के अलावा गवर सजा कर स्त्रियाँ गाती, नाचती और धूमर डालती हैं। – पूर्णिमा गहलोत: राजस्थान गाता है, पृष्ठ 13-14 ।

15 डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल : राजस्थानी लोकगीत, पृष्ठ 130 ।

16 कल्याण (शिवांक) संवत् 1990 (झाबर मल्ल शर्मा : राजस्थान का गणगौर-पूजन) ।

17 स्वर्णलता अग्रवाल : राजस्थानी लोकगीत, भाग 2, पृष्ठ 120 ।

18 मदन लाल शर्मा : राजस्थानी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 59 ।

19 डॉ. साधुराम शारदा (सं.) : हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 281-82 ।

20 डॉ. साधुराम शारदा (सं.) : हरियाणा के लोक गीत पृष्ठ 219 ।

21 उपर्युक्त : हरियाणा – एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 76-77 ।

22-23 उपर्युक्त, पृष्ठ 131 ।

24 डॉ. देवदत्त शर्मा : राजस्थान के प्रमुख मेले, पृष्ठ 20-21 ।

25 एच. भीष्म पाल एवं सरोज : राजस्थान के देवालय, पृष्ठ 58-59 ।

26 (क) डॉ. जवाहर लाल हंडू : कश्मीरी और हिन्दी लोकगीत–एक तुलनात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन, पृष्ठ 192-193।

(ख) Kaumudi : Kashmir — Its Cultural Heritage, Page 127-128.

27 हरियाणा संवाद, मई 1994 (डॉ. नवरत्न कपूर 'दूबड़ी – हरियाणा का एक लोकपर्व : तुलनात्मक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण), पृष्ठ 36।

28 Wheat Festivities of the Panjab : A Semiological study (Dr. NavRattan Kapur's Research Paper).

29 हरियाणा संवाद, मई 1994, पृष्ठ 38।

30. Wheat Festivities of the Panjab : A Semiological study (Dr. Nav Rattan Kapur's Research Paper).

31 इसे "राधा का व्रत" भी कहीं-कहीं कहा जाता है।

— भूपिंदर सिंघ सूदन : पुणछ दी लोकधारा, पृष्ठ 74।

32 कहीं-कहीं इस लोकगीत के अन्य रूपांतर भी मिलते हैं, यथा:

दरुबड़ी दरुबड़ा विआह होइआ ..... हू

काली गाँ, संधूरी वच्छा ..... हू

रत्ते पीड़े बैठीए, गल्ल परांदे दा हार ..... हू

उपर्युक्त, पृष्ठ 74।

33 (क) श्रीमती सरोज बाला कपूर एवं डॉ. नवरत्न कपूर : लोक पर्वीय बाल-किशोर गीत, पृष्ठ 2।

(ख) डॉ. नवरतन कपूर : पंजाब दे लोक तिउहार — इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 127।

34 श्रीमती सरोज बाला कपूर एवं डॉ. नवरत्न कपूर : लोक पर्वीय बाल-किशोर गीत, पृष्ठ 3।

35 उपर्युक्त, पृष्ठ 13-14। 36 लाल और पीले रंग की चुनरियाँ।

37 मेरा भाई बजाज़ का मित्र है। 38 सुन्दर बहू।

39 घर में तो टूटी हुई खटोली भी नहीं है। 40 नारियल से बना छोटा हुक्का।

41 श्राद्ध : कन्यागत : जब सूर्य कन्या राशि में होता है। – डॉ. साधुराम शारदा : हरियाणा के लोकगीत, पृष्ठ 230 (पाद-टिप्पणी)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

42 पूजा के फलस्वरूप पूरे पचास भाई और भतीजे हुए।

43 बहू, पत्नी।

44 (क) डॉ. जय नारायण कौशिक : हरियाणवी-हिंदी कोश, पृष्ठ 815।

(ख) प्रातः सायं साँझी देवी की धूप-दीप-नैवेद्य के साथ गीत गा कर आरती उतारी जाती है। भित्तिका पर मृण्मूर्ति को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर उसके लिए चंदे के रूप में अन्न और कपास एकत्र की जाती है। नवरात्रों तक पूजा-विधान और विजयादशमी को साँझी एक हंडिया में डालकर, सदीप सरोवर में प्रवाहित की जाती है।

पुष्पा जैन एवं सत्य पाल गुप्त : हरियाणा – सांस्कृतिक दिग्दर्शन, पृष्ठ 248।

45 'परमात्मा' का विकृत उच्चारण 'प्रमात्मा'।

46 वस्त्रों और श्रृंगार-प्रसाधनों से भरी पिटारी।

47 ननद।

48 मूसल से पिटाई करूँगी।

49 श्रीमती सरोज बाला कपूर एवं डॉ. नवरत्न कपूर : पंजाबी लोक-चिन्तन और पर्वोत्सव, पृष्ठ 87।

50 डॉ. बंशी राम शर्मा (संपा.): पहाड़ी-हिन्दी कोश, पृष्ठ 513।

51 डॉ. जय नारायण कौशिक : हरियाणवी-हिन्दी कोश, पृष्ठ 881।

52 (क) श्रीमती सरोज बाला कपूर एवं डॉ नवरत्न कपूर : पंजाबी लोक-चिन्तन और पर्वोत्सव, पृष्ठ 87।

(ख) डॉ. नवरतन कपूर : पंजाब दे लोक तिउहार – इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 171।

53 मुहम्मद मुस्तफ़ा खाँ 'मद्दाह' : उर्दू-हिन्दी शब्द कोश, पृष्ठ 677।

54 हरिगन्धा, नवंबर-दिसंबर, 1989, पृष्ठ 58।

55 हिमाचल के ऊना और गगरेट (ऊना ज़िले) के कुछ भित्ति चित्र।

56 हरिगन्धा, नवंबर-दिसंबर, 1989, (डॉ. जय नारायण कौशिक : मांगलिक भित्ति चित्र), पृष्ठ 58।

57 डॉ. नवरतन कपूर : पंजाब दे लोक तिउहार – इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 1991।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
58 (क) डॉ. साधुराम शारदा : हरियाणा – एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 142।

(ख) हंसली में चाँदी की तार लपेटने का यह कार्य बालक के जन्म से ही आरंभ हो जाता है। इससे बेटे की उम्र का भी पता चलता रहता है और उसके विवाह के समय हंसली पर लिपटी तारों से पुत्रवधू के आभूषण भी बनवा लिए जाते हैं। इस लिए बहू के गहनों पर ख़र्च होने वाली रक़म बच जाती है। विवाह के बाद परिवार के उस सदस्य की हंसली भी उसकी पत्नी को सौंप दी जाती है। धनाढ्य लोग हंसली में चाँदी की जगह सोने की तारें भी लिपटवाते रहते हैं।

डॉ. नवरतन कपूर : पंजाब दे लोक तिउहार – इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 203 (पाद-टिप्पणी)।

59 तू पाँच बेटों को जन्म देकर भी संतुष्ट नहीं हुई। अभिमान के कारण तूने छोटी बहन को गोबर जैसी तुच्छ वस्तु देने से भी इंकार कर दिया।

60 (क) हे अहोई माता! जिस प्रकार तू ने हम पर बार-बार कृपा (बहुड़ी) की है, उसी तरह सभी प्राणियों पर करना।

(ख) संस्कृति, वर्ष 21, अंक 2-4, सन् 1979 (डॉ. नवरत्न कपूर: बाल कल्याण का पुणति पर्व 'अहोई') पृष्ठ 107।

61 डॉ नवरतन कपूर : पंजाब दे लोक तिउहार – इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन, पृष्ठ 189।

62 डॉ. साधुराम शारदा : हरियाणा - एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 124-125।

63 जन साहित्त (मेला विशेष अंक), अप्रैल-मई, 1989 (गिआनी गुरदित्त सिंघ : मेले ते तिउहार), पृष्ठ 20-21।

64 मित्रों से मेल-मुलाक़ात का आकर्षण।

65 तुम्हारे बेटे को मैं गोद में उठा कर ले चलूँगा।

66 इस बार जरग के मेले से चूड़ा लाने के लिए मेरी कलाई का नाप ले कर जाना।

67 तेरी चोटी (सुंदर परांदे में) ऐसी शोभा दे रही है मानो हमने जरग के मेले की चहल पहल देख ली हो।

68 वर्षा ऋतु में पंजाब में "ठंडड़ी सत्ते" नामक शीतला संबंधी लोकपर्व का


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम इसी पर पड़ा है।

69 डॉ. बंशी राम शर्मा (संपा) : पहाड़ी हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ 388।

70 डॉ. जय नारायण कौशिक (संपा.) : हरियाणवी-हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ 602।

71 शीतला।

72 तेरे द्वार पर। 73 दादा।

74 डॉ. साधु राम शारदा (संपा.) : हरियाणा के लोकगीत, पृष्ठ 223।

75 डॉ. साधु राम शारदा (संपा०) : हरियाणा – एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 137।

76 डॉ. जय नारायण कौशिक : हरियाणवी-हिन्दी कोश, पृष्ठ 441।

77 डॉ ब्रज मोहन : हमारे त्योहार, पृष्ठ 45।

78 तुकान्त या अतुकांत रंजक उक्ति। – डॉ. जय नारायण कौशिक : हरियाणवी-हिन्दी कोश, पृष्ठ 283।

79 उपर्युक्त, पृष्ठ 441।

80 हरियाणा संवाद, अप्रैल 1993 (डॉ. नवरत्न कपूर : हरियाणा और ब्रज प्रदेश का देवोठान – तुलनात्मक अध्ययन), पृष्ठ 7।

81 देवी शंकर प्रभाकर : हरियाणा – एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 138-139।

82 राजस्थान पत्रिका, 2 दिसंबर 1995 (विजय लक्ष्मी पुरोहित : कितने मोहक होते हैं ये देव प्रतीक)।

83 पूर्णिमा गहलोत : राजस्थान गाता है, पृष्ठ 20।

84 डॉ. बंशी राम शर्मा (संपा.) : पहाड़ी- हिन्दी शब्द कोश, पृष्ठ 394।

88 डॉ पद्म चंद्र काश्यप : हिमाचली संस्कृति का इतिहास, पृष्ठ 73-74।

89 एन.डी. पुरोहित : हिमाचली लोकरंग, पृष्ठ 88।

90 डॉ. बंशी राम शर्मा (संपा.) : पहाड़ी- हिन्दी शब्द कोश, पृष्ठ 285।

91 राजस्थान पत्रिका, 29 दिसंबर 1995 से 5 जनवरी, 1996।

92 G.M. Rabbani : Ancient Kashmir – A Historical Perspective, Page 52. (b) The Valley of Kashmir, Page 226.

93-94 डॉ. जवाहर लाल हंडू : कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत–एक तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 175 (पाद-टिप्पणी)।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

95 G.M. Rabbani : Ancient Kashmir - A Historical Perspective, Page 52.

96 डॉ. जवाहर लाल हंडू : काश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत-एक तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 175 (पाद-टिप्पणी)।

97 मौलू राम ठाकुर : हिमाचल में पूजित देवी-देवता, पृष्ठ 36।

99 शरण : हिमाचल की धार्मिक परंपरा, पृष्ठ 40।

100 P.N Bali : The History of the Mohyals, Page 64.

101 जन साहित्त (मेला विशेषांक), वर्ष 30, अंक 5, अप्रैल-मई, 1989, पृष्ठ 61-62।

102 उपर्युक्त, पृष्ठ 102-103।

103 उपर्युक्त, पृष्ठ 166।

104 पुष्पा जैन एवं सत्यपाल गुप्त (संकलन) : हरियाणा-सांस्कृतिक दिग्दर्शन, पृष्ठ 50।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उत्तर भारत के पूर्णिमा-पर्व और पीर-उत्सव

## पूर्णिमा-पर्व

'पूर्णिमा' चान्द्र वर्ष के प्रत्येक मास जी अंतिम तिथि होती है। लोक भाषा में इसे 'पूरन मासी' अथवा 'पुन्निआँ' इसी लिए कहा जाता है। चन्द्रमा की चाँदनी पूर्णिमा की रात को खूब खिल उठती है। इसी लिए कविगण पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा द्वारा अमृत-वर्षा की कल्पना करते हैं। इसी चाँदनी में छत पर बैठने से शरीर की गर्मी निकल जाती है। आयुर्वैदिक ग्रंथों में इसे ही "पित्त-कोप' (शरीर की गर्मी) शमन" (दूर होना) कहते हैं।

संयोग की बात है कि भारत के बहुत-से ऋषियों, गुरुओं तथा कवियों का जन्म पूर्णिमा के दिन हुआ था। महात्मा बुद्ध का जन्मोत्सव वैशाख-पूर्णिमा को मनाया जाता है। 'कबीर जयंती' ज्येष्ठ पूर्णिमा को तथा महाभारत के रचनाकार महर्षि व्यास का जन्म दिन आषाढ़ की पूर्णिमा को आते हैं। रामायण के लेखक महर्षि वाल्मीकि का जन्म-दिवस आश्विन मास की पूर्णिमा को तथा सिक्ख धर्म के पहले गुरु श्री नानक देव जी का "प्रकाशोत्सव" कार्तिक-पूर्णिमा को मनाने की प्रथा है। इन दोनों महापुरुषों के जन्म दिन के साथ कई और लोकपर्व भी जुड़ गए हैं। इनका रोचक वर्णन सिलसिलेवार प्रस्तुत है।

## आश्विन-पूर्णिमा

प्राचीन रूप – 'आश्विन मास' को लोक भाषा में 'क्वार' भी कहते हैं। इस मास की पूर्णिमा को पालि में रचित जातक साहित्य (6,54,221) में 'कोमदीय चातुमासीय छन' कहा गया है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' (4/5/11) में इस लोकपर्व का नाम 'कौमुदी जागर' बताया गया है। कहते हैं कि इसी दिन चांद्र संवत्सर के नव वर्ष का आरंभ होता था। इसी उपलक्ष्य में घर-बार की सफ़ाई और सजावट की जाती भी। ऊँची जाति के लोग सुबह ही स्नान करके भड़कीले वसन और आभूषण पहन कर 'अश्वयुजी उत्सव' मनाते थे। बुद्धघोष की सुमंगल-विलासिनी (1/140) तथा आर्यशूर की जातक माला के उन्मादयंती जातक (1/82) में बताया गया है कि इस दिन लोग चौमुहानियों पर जल छिड़क कर ध्वजाएँ और पताकाएँ लहराते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा नृत्य-गान करते थे। संध्या होते ही सारा नगर दीयों की ज्योति से जगमगाने लगता था। इसी लिए वामन पुराण (92/56-58) में इस उत्सव का नाम 'दीप-दान महोत्सव' रखा गया है। संस्कृत नाटकों और काव्य ग्रंथों मे इसी की परिष्कृत संज्ञा 'कौमुदी महोत्सव' का प्रयोग हुआ है। श्री मन्मथ राय का मत है कि ऋतु-परिवर्तन संबंधी यह उत्सव प्रारंभ में विशुद्ध लैकिक रहा होगा। आगे चलकर गृह्यसूत्रों में अश्वयुज् (आश्विन, क्वार) की पूर्णिमा को मान्यता मिली।[1] 'दीप-दान महोत्सव' (वामन पुराण) मनाने हेतु लोग सज-धज कर बलि राजा की पूजा-अर्चना किया करते थे।

बिद्ध – उत्तर भारत के अनेक घरों में क्वार-पूर्णिमा संबंधी इस लोक पर्व को मनाने की प्रथा आज भी विद्यमान है। पंजाब में इसे 'बिद्ध' या 'गढ़बढ़ों का त्योहार' कहा जाता है। श्रद्धालु स्त्रियाँ 'बिद्ध' का व्रत रखती हैं। 'बिद्ध' शब्द 'विधि' का बिगड़ा हुआ रूप है। विधि का अर्थ है 'ढंग' या 'तरीक़ा'। इसका दूसरा अर्थ है 'भाग्य'। वास्तव में यह भाग्य पर विश्वास करने का ढंग सिखाने का ही त्योहार है। इसके अतिरिक्त पूजा-स्थल पर विधि पूर्वक घट-स्थापन (छोटा लोटा या हंडिया) द्वारा इसी दिन से दीपावली तथा कार्तिक-पूर्णिमा तक चलने वाली दीप-दान की श्रृंखला आरंभ करने का संकेत भी मिलता है।[2]

बिद्ध-पूजन के समय सारा कुटुम्ब चौक में एकत्र होता है। दो लोटों या मिट्टी की दो छोटी हंड़ियाओं में पानी भर कर उनके ढक्कन पर दो-दो रोटियाँ, उबले हुए सफ़ेद चावल और चीनी रख दी जाती है। मानो ये श्वेत पदार्थ गृह-कक्ष में चंद्रमा की चाँदनी को प्रतिबिम्बित करते हों। यही कारण है कि पूजा-स्थल पर कोई दीपक नहीं जलाया जाता। लोटों या हंडियाओं की गर्दन पर मौली की तार लपेटी जाती है। कुटुम्ब के प्रत्येक बालक से वृद्ध तक स्त्री-पुरुषों को लाल धागे में पिरोई हुई हरे रंग की पोत (कभी-कभी अन्य रंगों की) वाला धागा गले में पहनाया जाता है।[3] धागे में बिंधे (संस्कृत शब्द 'बिद्ध') पोत (शीशे का छोटा मोती) में भी 'बिद्ध' नामक लोकपर्व की निरुक्ति ढूँढी जा सकती है।

पोत वाली मालाओं को पहनाई जाने से पहले लोटों या हंडियाओं से सात बार छुआया जाता है। जब सभी लोग माला धारण कर लेते हैं तो गृह-स्वामिनी अपने पति को 'बिद्ध' का दिन, तारीख और वर्ष बताने के लिए प्रेरित करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह व्यक्ति इन तथ्यों की सूचना इस प्रकार देता है, जैसे

(क) आज 'बिद्ध' इतवार की है। सन् 1995 की 8 अक्तूबर को। यथा स्थिति बताने के बाद वही व्यक्ति सभी उपस्थित लोगों को अपने हाथ से चावल (अक्षत) दे कर स्वयं भी अपनी दाहिनी हथेली पर रखकर हाथ जोड़ कर कहता हैं:

"बिद्ध देवता आपका पूजन किया जाता है। कोड़में माँ वाद्धा करना, सब तरां ते सुक्ख-साँद रक्ख्णा।" (बिद्ध देवता! आपकी पूजा की जा रही है। सारे कुटुम्ब की वृद्धि करना, सब प्रकार से सुख-शांति बनाए रखना)।

तदुपरांत "बोल साचे दरबार की जय" के सामूहिक घोष के साथ अक्षत फेंके जाते हैं और पूजा-पात्रों पर रोली छिड़की जाती है। परिवार का पुजारी बुजुर्ग ही सभी पुरुषों के माथे पर रोली का लंबा टीका लगता है और स्त्रियों को रोली की बिंदी। व्रत धारिणी गृह-स्वामिनी पति के इन कृत्यों के बाद उबले हुए थोड़े से चावल चीनी या खांड भुरक कर और दो रोटियाँ एक थाली में रखकर सभी का हाथ लगवा कर ब्राह्मण को देने के लिए 'मनस' कर रख देती है। इसी प्रकार प्रसाद के रूप में सभी को रोटी, चावल और चीनी दिए जाते हैं। रात्रि के भोजन में इनके अतिरिक्त छिलके वाली मूँग की दाल का भी उपयोग होता है। खाने के समय पूजा-स्थल पर रखी हंडिया-लोटे का जल ही पिया जाता है।

बिद्ध-पूजन के बाद बालक-बालिकाएँ मिट्टी के कंडील जला लेते हैं। झिरियों वाले इस कंडील को पंजाबी में 'गढ़बढ़ा' कहा जाता है। प्रत्येक 'गढ़बढ़े' में मिट्टी का बना और सरसों के तेल से भरा दिया जला कर रखा जाता है। 'गढ़बढ़े' के ऊपर मिट्टी की ठूठी (ढक्कन) धर दी जाती है और उसे उठा कर बच्चे गली-मुहल्लों और बाज़ारों में पैसे माँगने निकल जाते हैं। बालक-बालिकाओं को भिक्षाटन से जो धन-राशि प्राप्त होती है, उसे घर में रखना बुरा माना जाता है। इसलिए उन पैसों से मिठाई लाकर बच्चे-बूढ़े सभी मिलकर खाते हैं।

बिद्ध-पूजन हेतु हर वर्ष बाज़ार से नए 'गढ़बढ़े' प्राय: ख़रीदने का रिवाज है। किन्तु इन्हें बिद्ध के बाद अवश्य संभाल कर रखा जाता है और दीवाली-पूजन के समय इनमें उसी पुराने दीपक में तेल एवं बत्ती डाल कर प्रज्वलित करके रखा जाता है। अधिकतर परिवारों में एक बार खरीदे गए गढबढ़े कई वर्षों तक 'बिद्ध' और 'दीवाली' पर उपयोग में आते हैं और इनको सुरक्षित स्थान पर रख कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टूटने से बचाया जाता है।[4] उत्तर प्रदेश के पश्चिमी ज़िलों में 'गढ़बढ़े' के आकार वाले मृत्तिका पात्र को लेकर 'झाँझी' (झैंझी) माँगने के लिए लड़कियाँ घर-घर जाती हैं।[5]

## बिद्ध-पूजन में कतिपय भिन्नताएँ

कुछ परिवारों में बिद्ध की पूजा रसोई की बजाय आंगन में की जाती है। परिवार की सब से बड़ी महिला आंगन को गाय के गोबर से लीप कर और दीपक जला कर दो गढ़बढ़े वहाँ सजा देती है। गढ़बढ़ों के समीप एक लोटा पानी से भर कर रख दिया जाता है। पूरा परिवार 'बिद्ध-पूजन' में सम्मिलित होता है। पूजा के बाद गढ़बढ़ों और जल से भरे लोटे को लाल चंदन का छींटा दिया जाता है। लोक भाषा में इसे 'चंदन चर्चना' कहते हैं। तदनंतर व्रत धारण करने वाली घर की मालकिन इसी लौटे के जल से चंद्रमा को अर्घ्य दे कर व्रत का पारणा (निवारण) करती है। पूजा के उपरांत सफ़ेद मीठे चावलों का प्रसाद बाँटा जाता है। बच्चों को पोत की माला नहीं पहनाई जाती और न ही वे गढ़बढ़े उठा कर घर से बाहर पैसे माँगने जाते हैं। परिवार के लोगों से गढ़बढ़ों में पैसे डलवा कर वे संतुष्ट हो जाते हैं।

हिमाचल प्रदेश के कुमार सेन क्षेत्र में 'बीमाओं का व्रत' भी 'विधि माता' का ही व्रत है। यह कई दिनों तक चलता है और शताब्दियों से इस अवसर पर उच्चारण किए जाने वाले मंत्र पर पहाड़ी छाप स्पष्ट लक्षित होती है, यथा:

जेठोमीनो, तवार वार।'
वामणे धरे आई बी माँ।
चूड़दे नाके पिज़रे कैशे आई,
वामण ढोते नाहा धोआ।
वीअ पाटणो, नैउव धुआओ,
प्रात सनान करा, होथे पैरे।
मैहद सीरी गुन्दा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्र सूरज वी वधात।
नरक सीड़, स्वर्ग सीड़,
धूप-दीप नैवेद्य, दंड प्रणाम प्रश्न करा।

आश्विन पूर्णिमा को 'ऋषि वाल्मीकि जयन्ती' मनाई जाती हैं। इस दिन वाल्मीकि मंदिरों से शोभा यात्राएँ निकलती हैं। जुलूस में कई तरह की झाँकियाँ और भजन मंडलियाँ रहती हैं। इन झाँकयों में ऋषि वाल्मीकि के साथ भगवान राम के पुत्र लव एवं कुश का रूप धारण किए हुए बालक रहते हैं। वाल्मीकि जी के मंदिरों में आरती- पूजन के बाद भंडारे-लंगर की व्यवस्था भी की जाती है।

इस दिन शरद-पूर्णिमा का उत्सव भी होता है। पूर्णिमा की रात्रि को किसी चौड़े बर्तन में खीर भर कर मंदिर का पुजारी कपड़े से ढक कर छत पर रख देता है। पूर्णिमा का व्रत रखने वाले कुछ भक्त तो संध्या में फलाहार द्वारा उपवास खोल लेते हैं। किन्तु बहुत से श्रद्धालु अगले दिन मंदिरों में बँटने वाली शरद-पूर्णिमा की खीर से ही व्रत खोलते हैं। पूर्णिमा के उपलक्ष्य में मंदिरों में सत्यनारायण की कथा अन्य पूर्णिमा तिथियों की भाँति ही होती है। किन्तु कुछ वैष्णव शरद-पूर्णिमा के उपलक्ष्य में विशेष तौर पर अपने घर में कथा-कीर्तन करवाते हैं। आधुनिकता के प्रभाव के कारण लोगं खीर के महत्व को भले ही भूलते जा रहें हों, फिर भी कथा-कीर्तन में अधिकांश की आस्था अभी तक दृढ़ है।[6]

शरद पूर्णिमा के उपलक्ष्य में कुछ मंदिरों में रास-लीला भी होती है। ब्रज प्रदेश की रास-मंडलियों को इस अभिनय के लिए विशेष रूप से आमंत्रित किया जाता है। 'देवोठान एकादशी' से आरंभ होने वाला पाँच दिन का 'भीष्म पंचक' कार्तिक पूर्णिमा को ही समाप्त जोता है। अत: वे लोग जो आश्विन पूर्णिमा से अगले दिन आरंभ होने वाले पूरे कार्तिक मास में प्रात: उठ कर किसी पवित्र सरोवर में स्नान करने में असमर्थ रहते हैं, वे भी इन पाँच दिनों में सूर्यास्त से पूर्व किसी पावन जलस्रोत में डुबकी लगाकर और उसके तट पर दीपक जला कर इस परंपरा को श्रद्धा पूर्वक निभाते हैं। हिमाचल प्रदेश के रेणुका जी तथा हरियाणा के कपाल मोचन नामक तीर्थ स्थलों पर ऐसे श्रद्धालु भक्त पूरा 'भीष्म पंचक' व्यतीत करना एवं स्नान सहित दीप-दान को बड़ा पुण्यमयी कार्य मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कार्तिक-पूर्णिमा

## (क) प्रागैतिहासिक रूप :

वैदिक काल से ही कार्तिक-पूर्णिमा की महिमा भारत में चली आ रही है। एक विद्वान का कथन है:

"वैदिक काल में सौर वर्ष को तीन अलग-अलग ऋतुओं में विभक्त करने की प्रथा थी। प्रत्येक ऋतु की अवधि चार महीने मानी जाती थी। प्रत्येक ऋतु के प्रांरभ होने के साथ-साथ एक विशेष यज्ञ का आरंभ किया जाता था। यह यज्ञ चार महीने तक चलता रहता था। वैदिक साहित्य में इसी का नाम चातुर्मास्य पड़ा। इस विधान के अनुसार फाल्गुनी पूर्णिमा से 'वैश्वदेव यज्ञ'; आषाढ़ी पूर्णिमा से 'वरुण प्रघासस्' तथा कार्तिकी पूर्णिमा से 'साकमेध यज्ञ' का श्री गणेश किया जाता था। अत: वैदिक धर्म के मानने वालों में कार्तिक पूर्णिमा का बड़ा महत्व था।"[7]

बौद्ध काल में इस उत्सव का नाम 'कत्तिक नक्खत', 'कत्तिक रत्ति' तथा 'कत्तिक छन' पड़ गया, जो कि पालि भाषा के प्रभाव को द्योतित करता है। उन दिनों यह उत्सव राजगृह, काशी एवं श्रावस्ती नामक प्रमुख महानगरों में लगभग एक सप्ताह मनाया जाता था। सारे नगर को खूब सजाया जाता था और रात्रि में दीयों के प्रकाश से वह जगमगा उठता था। इस दिन यक्ष-राज चित्त की पूजा की जाती थी। रंग-बिरंगे वस्त्राभूषण धारण करके नागरिक अपनी पत्नियों के साथ राज मार्गों पर भ्रमण करते थे और परिचितों से गले मिलते थे। राज भवन की सजावट करके विशेष राज-दरबार भी लगता था।

(क) पथवारी : आधुनिक युग में कार्तिक पूर्णिमा का रूप बदल गया है। हरियाणा के कुछ गाँवों में अकेली पूर्णिमा ही नहीं, बल्कि पूरे कार्तिक मास का माहात्मय माना जाता है। सधवाएँ और कन्याएँ मुँह अंधेरे गाँव के सरोवर पर स्नान करने जाती हैं। नहाने से पहले वे सरोवर से गारा (गीली मिट्टी) निकाल कर किनारे पर ढेर लगा लेती हैं। गारे के इस ढेर को 'पथवारी' कहा जाता है। स्नान के बाद सभी स्त्रियाँ तुलसी की पूजा करती हुई अपनी लोक भाषा में इस प्रकार भजन गाती हैं:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसां माता तैं सुख दाता,
बिड़ला सीजूँ तेरा,
तैं कर निस्तारा मेरा।
किरसन जी कांधा दइओ,
पीताम्बर की धोती दइओ,
बैकुंठ का बासा दइओ।
हो ज्या निस्तारा मेरा,
बिडला सीजूँ तेरा।।[8]

तुलसी के बिरवे के साथ-साथ पीपल और वट वृक्ष को भी जल चढ़ाया जाता है। जोहड़ या सरोवर के किनारे एक बड़ा-सा पत्थर रखा जाता है, जो "जोहड़ की बहू" का प्रतीक होता है। किन्तु उसे पथवारी ही कहा जाता है।[10] 'पथवारी' की सृजना 'जोहड़ की बहू' के निकट की जाती है। पथवारी-पूजन अधिकतर सायंकाल में ही होता है। किन्तु घर के काम-काज से अवकाश न मिलने के कारण कुछ स्त्रियाँ हर रोज़ मिट्टी निकाल कर स्नान के पश्चात 'पथवारी' पूजन कर आती हैं। 'पथवारी' वस्तुत: 'पथ-प्रदर्शिका' देवी का प्रतीक ही होती है।

पथवारी-पूजन के समय स्त्रियाँ भक्ति-परक गीत गाती हुई जोहड़ के किनारे पहुँच कर दीपक जला कर जौ चढ़ाती हैं। पथवारी को यह सामग्री भेंट करते हुए वे दो-एक गीत गाती हैं। एक ही मूल विषय पर आधारित 'पथवारी' संबंधी लोकगीतों में क्षेत्रीय छाप परिलक्षित होती है। ऐसे दो लोक रचनाएँ प्रस्तुत हैं:

पथवारी ए तैं पथ की ए राणी
भूल्याँ नैं राह तिसायां नै पाणी
बिछड़्या नै आण मिलाइओ हो राम
पथवारी ए तैं सींज कुआरी
नूँह घर बर पाइओ हो राम
पथवारी ए तैं सींज सुहागण
पति की सेवा कराइओ हो राम
पथवारी ए तैं सींज सपूती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नूँह पुत्तर घर पाइओ हो राम
पथवारी ए तैं सींज ए बूढ़ी
बैकुंठा मै बासा पाइओ हो राम।

इस लोकगीत में स्त्री को कौमार्य अवस्था से लेकर जीवन के अंत तक कर्तव्य-परायणता के कारण 'बैंकुठवास' के संक्षिप्त वर्णन द्वारा नारियों को बड़ी अद्‌भुत शिक्षा दी गई है। अन्य लोकगीत में अपने परिवार की सुख-समृद्धि एवं भाई की संतान-वृद्धि की कामना के लिए प्रार्थना की गई है, यथा:

पथवारी खोल किवाड़ी
बाहर खड़ी तेरी सींचण आली
के लेह री सैं सींचण आली
के माँगे सैं सींचण आली
अन्न धन माँगे सींचण आली
गोद भतीजा कन्हवाँ जैसा।

कई स्त्रियाँ 'जोहड़ की बहू' से भी इसी तरह की मनौती दीपक जलाकर और भक्ति-परक लोकगीत गाकर करती हैं। कार्तिक पूर्णिमा के दिन जौ सरोवर को भेंट कर दिए जाते हैं।[11] कहीं-कहीं 'पथवारी' का भी जल-पधाराना (विसर्जन) कर दिया जाता हैं।[12]

## कपाल मोचन मेला

### (ख) हरियाणा एवं काश्मीर :

हरियाणा के ज़िला यमुनानगर में 'कपाल मोचन' नामक स्थान पर "कार्तिक पूर्णिमा" के अवसर पर तीन दिन का मेला लगता है। स्कंद पुराण के अनुसार यहाँ पर कलियुग के आरंभ में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों देवता यज्ञ करने के लिए एकत्र हुए। ब्रह्मा जी ने यज्ञ हेतु सूरजकुंड, सोम कुंड तथा ऋण मोचन नामक तीन अग्निकुंडों का निर्माण करवाया। जैसे ही तथा आरंभ हुआ, वैसे ही ब्रह्मा जी ने विष्णु एवं शिव से अपना वर्चस्व जताया। भगवान विष्णु एवं भगवान शिव ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब त्रिदेव की समानता के आधार पर ब्रह्मा जी के कथन पर आपत्ति की तो ब्रह्मा जी कुपित हो उठे। यहाँ तक कि ब्रह्मा जी ने अंपनी बेटी सरस्वती की बात भी न मानी और उसे परेशान करना शुरू कर दिया। सरस्वती जी ने भगवान शिव की शरण ली और उन्होंने ब्रह्मा की नासमझी के कारण उनका पाँचवां सिर काट दिया। चतुर्मुखी ब्रह्मा जी ने शिव जी को शाप दे दिया, जिसके फलस्वरूप भगवान शिव का सारा शरीर काला हो गया।

भगवान शिव ने शाप से मुक्ति पाने के लिए अनेक तीर्थों का भ्रमण किया। किन्तु उनके शरीर का रंग न बदला। अन्ततः वे सिंधु वन में पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने एक गाय को अपने बछड़े को 'सोम सरोवर' की महिमा का वर्णन करते हुए सुना। भगवान शिव भी यह बात सुनकर वहाँ पहुँचे तथा स्नान करके ब्रह्मा जी के शाप से पिंड छुड़वाया। ब्रह्मा जी का बनवाया पहला कुंड उत्तर में है, जिसे पलाक्ष तीर्थ कहा जाता है। दक्षिण दिशा वाला सोम (रस) कुंड अर्द्धचन्द्राकार था, जो कि कालान्तर में "कपाल मोचन" के नाम से विख्यात हुआ। तीसरा कुंड 'ऋण मोचन' कहलाता है, जो कि कपाल मोचन के समीप ही है।

कपाल मोचन जगाधरी नगर से 16-17 किलोमीटर दूरी पर एक ग्राम है। आस-पास के लोग पूरे कार्तिक मास में 'कपाल मोचन सरोवर' में स्नान करते हैं और ऋण मोचन सरोवर के किनारे दीपक जलाते हैं।[13] बाहर से आने वाले यात्री आम तौर पर त्रयोदशी के दिन यहाँ आते हैं, तब धर्मशालाओं में अत्यंत भीड़ हो जाती है। वे पहले कपाल मोचन सरोवर में स्नान करते हैं और तदनंतर ऋण मोचन में। इस प्रकार कार्तिक पूर्णिमा के दिन दोनों स्थलों पर खूब रौनक रहती है।

महाभारत के अनुसार पाँचों पाण्डवों ने कुरुक्षेत्र के युद्ध के पश्चात् द्रोणाचार्य गुरु की ब्रह्म-हत्या के दोष से मुक्ति पाने के लिए कपाल मोचन सरोवर में स्नान करके दान-दक्षिणा दे कर प्रायश्चित किया था। तदनंतर उन्होंने 'ऋण मोचन सरोवर' में अपने बंधु बांधवों के रक्त से सने शस्त्रों को धोया था। इसी कारण आज जनता-जनार्दन इसी विश्वास के साथ यहाँ आकर स्नान करता है कि "कपाल मोचन सरोवर" में डुबकी लगाने से ब्रह्म-हत्या दूर होती है। "ऋण मोचन सरोवर"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में स्नान करने से अन्य ऋणों से छुटकारा पाया जा सकता है।

कपाल मोचन के पूर्व में दशम पातिशाह श्री गुरु गोविंद सिंह जी की चरण-रज से पवित्र गुरुद्वारा है। कहते हैं कि सन् 1637 में पहाड़ी राजाओं पर विजय प्राप्त करके गुरु साहिब वहाँ पर 52 दिन ठहरे थे। तभी उन्होंने 'ऋण मोचन सरोवर' में अपने शस्त्रास्त्र धोए थे और वहाँ पर निर्मित 'शस्त्र घाट' आज उसी घटना का स्मरण करवाता है। कपाल मोचन से लगभग 2½ किलोमीटर की दूरी पर 'सिंघल' गाँव हैं। कहते हैं कि वहाँ पर भगवान शिव स्वयं विराजे थे और उन्होंने पाषाण-लिंग का निर्माण किया था। आज वह 'शिवालय सिद्धेश्वर' के नाम से जाना जाता है। लोक विश्वास है कि जो कार्तिक के शुक्ल पक्ष में कपाल मोचन सरोवर में स्नान करने के बाद 'सिद्धेश्वर शिवलिंग' का दर्शन करता है, वह अनन्त पुण्यों का भागी बनता है।

कपाल मोचन के दक्षिण में 'व्यास कुंड' है। इसका संबंध महाभारत के रचयिता महर्षि वेद व्यास जी से जोड़ा जाता है। कहते हैं कि इसी के किनारे वेद व्यास जी की कुटिया थी। कुछ लोकविश्वासों के अनुसार सरस्वती नदी का उद्गम भी इसी क्षेत्र में हुआ था। इस प्रकार मेले के दिनों में इन सभी धार्मिक स्थलों में स्नान एवं मंदिरों के दर्शन के साथ-साथ यात्रीगण गुरुद्वारा साहब में मत्था टेकने भी जाते हैं। फलतः 'कपाल मोचन मेला' धार्मिक समन्वय का प्रतीक बन जाता है।

काश्मीर में भी श्रीनगर से लगभग 35 किलोमीटर की दूरी पर एक हिन्दू तीर्थ धाम है। वहाँ तीन चश्मों के बीच एक 'शिव मंदिर' है और वह तीर्थ धाम 'कपाल मोचन' के नाम से विख्यात है। इस स्थान से भी ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर काटने के कारण शाप-मुक्ति हेतु भगवान शिव के स्नान की कथा जुड़ी हुई है। घटना और नाम-साम्य के बावजूद काश्मीर के कपाल मोचन तीर्थधाम की मान्यता हरियाणा के पवित्र स्थल से कुछ भिन्न है। इस विषय में एक विदुषी का मत उद्धृत है:

"इस तीर्थस्थान का नाम "देग्रामी कपाल मोचन" हैं। जिस में पहला भाग (देग्रामी) वह स्थान है जहाँ शिव जी गए थे और दूसरा भाग वह है, जहाँ शिव जी ने (ब्रह्मा जी का) सिर काटने के पाप धोए थे। तभी से हिन्दू कपाल मोचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को एक पवित्र तीर्थ धाम मानते आ रहे हैं। वे यहाँ आकर इस आशा एवं विश्वास के साथ अपने मृतक बालकों का श्राद्ध करते हैं ताकि उन्हें भी सांसारिक पापों से उसी प्रकार छुटकारा मिल सके, जिस प्रकार भगवान शिव के पापों का निस्तार हुआ था। यहाँ पर श्रावण (जुलाई-अगस्त) की द्वादशी को एक वार्षिक मेला लगता हैं। जिन माता-पिता के बालकगण पिछले बारह महीनों में परलोक सिधार चुके होते हैं, वे यहाँ आकर उनका श्राद्ध करवा कर कपड़े और आभूषण दान करते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि यदि जाने-अनजाने किसी व्यक्ति से जीवित प्राणी की हत्या हो जाए तो यदि वह यहाँ आकर सोने या चाँदी की मूर्ति दान कर दे तो भी वह पाप-मुक्त हो जाता है।[14]"

## राजस्थान के प्रसिद्ध मेले

राजस्थान में 'कार्तिक पूर्णिमा' का विशेष महत्व है। इस क्षेत्र के दो मेले विश्व विख्यात हैं, यथा:

(क) **पुष्कर का मेला** : अजमेर शहर से तेरह किलोमीटर की दूरी पर हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थस्थल 'पुष्कर राज' स्थित है। इस पावन स्थल पर कार्तिक शुक्ला एकादशी से आरंभ होने वाला मेला कार्तिक पूर्णिमा को संपन्न होता है। "पदम् पुराण" में पुष्कर राज की महिमा का बखान इस रुप में हुआ हैं:

पर्वतानां यथा मेरु पक्षिणाम गरुड़ यथा
तद्वत समस्त तीर्थानाम आद्य पुष्करमिष्यते।।

आदि तीर्थ के रूप में पूजित 'पुष्कर राज' की दुर्लभ यात्रा और दुर्लभ दान का अवसर किसी सौभाग्यशाली को ही प्राप्त होता है। इस विषय में 'अग्निपुराण' का श्लोक उद्घृत है:

पुष्करम् दुष्करम् तीर्थ पुष्करं तप:
पुष्करम् दुष्करम् दानम् गन्तुचेव सुदुष्करम्।।

पुष्कर राज की इस दुष्कर महिमा का कारण पद्म पुराण में स्पष्ट किया गया है। उसके अनुसार ब्रह्मा जी ने कार्तिक शुक्ला एकादशी से कार्तिक पूर्णिमा तक सृष्टि-रचना हेतु महान यज्ञ संपन्न किया। इस यज्ञ स्थल का चयन करने के लिए ब्रह्मा जी ने एक कमल-पुष्प फेंका, जो कि पुष्कर में गिरा। उसके तीन स्थानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर टकराने से तीन जल-स्रोत प्रस्फुटित हुए, जो कि आज भी ज्येष्ठ पुष्कर, मध्य पुष्कर एवं कनिष्ठ पुष्कर (बूढ़ा पुष्कर) के नाम से विख्यात हैं। अन्य दोनों स्थल मुख्य (ज्येष्ठ) पुष्कर से तीन किलोमीटर की परिधि में हैं।

शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ करने के लिए पति-पत्नी दोनों का एक-साथ होना आवश्यक है। इस लिए ब्रह्मा जी ने अपनी पत्नी सावित्री को बुलवा भेजा। किन्तु नारद जी के बहकावे के कारण सावित्री वहाँ समय पर नहीं पहुँच पाई। यज्ञ का शुभ मुहूर्त कहीं निकल न जाए, अत: ब्रह्मा जी ने इंद्र देवता को आदेश दिया कि वह एक ग्वाले की कन्या को गाय के मुँह से पवित्र करके उसे ब्रह्मा जी की पत्नी के रूप में बैठा दे। गाय के मुँह से पवित्र होने के कारण ब्रह्मा जी की पत्नी का नाम 'गायत्री' रखा गया। सावित्री को ज़ब इस घटना की सूचना मिली तो उसने गायत्री को अपनी जगह बैठे देखकर ब्रह्मा जी सहित सभी को शाप दे दिया और वह रूठ कर निकटवर्ती पहाड़ी पर चली गई। इसी रत्नागिरी पर्वत पर एक 'सावित्री मंदिर' की प्रतिष्ठा की गई है, जहाँ प्रतिवर्ष भाद्र शुदि अष्टमी को विशाल मेला लगता है।

पुष्कर-क्षेत्र में एक सौ से अधिक मंदिर हैं। किन्तु प्रमुख हैं-वराह, ब्रह्मा, राम, महादेव और रंगनाथ जी के मंदिर। कार्तिक शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक पाँच दिनों में पुष्कर सरोवर के दस मीटर के अर्द्ध चन्द्राकार वृत्त में निर्मित 52 घाटों पर लोग स्नान-ध्यान करते हैं। इनमें से वराह घाट, ब्राह्मण घाट और गौ घाट पर स्नान का अधिक महत्व माना जाता है। महिलाएँ वहाँ स्नान करते समय पुष्कर राज की महिमा का गुणगान इस प्रकार करती हैं:

गंगा जी न्हाया, जमना जी न्हाया,
पुष्कर की पैड़्याँ में काया सुधरी ओ राम।

यहाँ पर एक पशु मेले का आयोजन भी अनेक वर्षों से होता आ रहा है। किन्तु अब इसकी रौनक़ दिन प्रतिदिन लुप्त हो रही है।

(ख) **कोलायत का मेला** : यह सांख्य दर्शन के प्रणेता महर्षि कपिल की तपोभूमि कहलाती है। यह बीकानेर नगर से 50 किलोमीटर दूर पश्चिम में स्थित हैं। जनश्रुति के अनुसार महर्षि कपिल ने अपनी माता के स्नान हेतु 'पाताल गंगा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस भूमि पर निकाली थी। यही गंगा कालांतर में 'कपिल सरोवर' के नाम से विख्यात हुई। सरोवर के तीनों ओर 52 (बावन) पक्के घाट बने हुए हैं। स्त्रियों एवं पुरुषों के स्नान हेतु अलग-अलग घाट हैं। यहाँ पर स्नान का महत्व गंगा-स्नान के बराबर माना जाता है। कार्तिक-पूर्णिमा के स्नान के समय यहाँ का विशेष आकर्षण होता है 'दीपादान'। संध्या के समय हज़ारों भक्तजन पत्तल अथवा दोने में प्रज्वलित दीपक रखकर 'कपिल सरोवर' में प्रवाहित करते हैं। यहाँ के प्रसिद्ध धार्मिक स्थल हैं कपिल मुनि मंदिर और पंच मंदिर।

(ग) **गुरु-नानक प्रकाशोत्सव** : किसी महापुरुष के जन्म दिवस को पंजाब की लोक-भाषा में 'प्रकाशोत्सव' कहा जाता है। सिक्ख धर्म के पहले गुरु श्री गुरू नानक देव जी का प्रकाशोत्सव भी 'कार्तिक पूर्णिमा' को मनाने की परंपरा है। मांगलिक दिवस की पूर्व संध्या को 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' की सवारी गाजे-बाजे के साथ एक शोभा यात्रा के रूप में सभी नगरों के मुख्य-मुख्य बाज़ारों से ले जाई जाती है। इस आयोजन को 'नगर कीर्तन' कहा जाता है। प्रकाशोत्सव को 'गुरुपरव' की संज्ञा दी जाती हैं। उस दिन 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' के पाठ के भोग और लंगर की व्यवस्था की जाती है। एक साथ मिलकर भजन-कीर्तन को 'संगत' तथा बिना जाति, वर्ण एवं धर्म भेद के सामूहिक भोजन को 'पंगत' की संज्ञा प्रदान की गई है। गुरमति प्रेमी सज्जन श्री गुरु नानक देव जी के प्रकाशोत्सव पर दिन में "संगत-पंगत" का रसास्वादन करते हैं।

उस दिन सुबह सवेरें प्रमुख गुरुद्वारों में स्नान भी किया जाता है। रात्रि में सभी सिक्ख धार्मिक स्थानों पर दीपमाला की जाती है। स्नान एवं दर्शन हेतु अमृतसर पहुँचने वाले यात्रियों के लिए स्वर्ण मंदिर परिसर में ऐतिहासिक महत्व की वस्तुओं का प्रदर्शन किया जाता है, जिसे लोकभाषा में "जलौ" कहा जाता है। रात्रि में दीपकों तथा बिजली की रोशनियों के बीच इसी पवित्र गुरु धाम की 'दर्शनी ड्योढ़ी' में पटाखों तथा आतिशबाज़ी को देखने के लिए बहुत से विदेशी भी वहाँ विशेष रूप से पहुँचते हैं।

(घ) **गिरु पूनो** : पंजाब में प्रत्येक पूर्णिमा का व्रत चौदस (चतुर्दशी) को रखा जाता है। उस दिन श्रद्धालु लोग अपने घरों में 'सत्य नारायण की कथा' करवाते हैं। इस कार्य हेतु कथा-वाचक ब्राह्मण को 'सीद्धे' के रूप में आटा, चावल, घी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुड़ या मिठाई और रुपए दक्षिणा के तौर पर भेंट किए जाते हैं।

किन्तु कार्तिक पूर्णिमा को जो उपवास किया जाता है, उसे 'गिरु पूनो' कहते हैं। उस समय व्रत चौदस को नहीं रखा जाता, बल्कि पूर्णिमा को ही रखा जाता है। व्रत-निवारण के समय सेंठी का चावल, सिंघाड़े या कोटू का आटा, सिंघाड़े, शकररंदी, फलाहार और दूध का सेवन करना ही अनिवार्य होता है। किन्तु उस दिन मंदिरों में चढ़ाने और व्रतधारियों के सेवन हेतु मेवों की कतली तथा खीर बनाने की परंपरा भी है।

बादाम, अखरोट और ख़रबूजे के छिलके उतारने से जो खाने वाली चीज़ निकलती है, उसे 'गिरि' या 'मग्ज़' कहा जाता है। इसी 'गिरी' शब्द का पंजाबी रूप बिगड़ कर 'गिरु' बन गया है। किन्तु ख़रबूजे के गूदे को साफ़ करके जो बीज प्राप्त होते हैं, उनका छिलका छीलने के बाद जो पदार्थ सामने आता है, उसे ही पंजाब में अधिकतर 'गिरु' कहा जाता है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन चीनी में पाग कर ख़रबूजे की गिरि (बीजों) की कतली विशेष रूप से बनाई जाती है। इसी लिए लोकभाषा में इस पर्व का नाम ही 'गिरु पूनो' पड़ गया है।

सूरज ढलने के बाद थोड़ा-सा अंधेरा होने पर लोग दीवाली की तरह मंदिरों और चौराहों पर सरसों के तेल से भरे दीये जला कर रखते हैं। उसी दिन श्री गुरु नानक देव जी का प्रकाशोत्सव होता है। हिन्दुओं के घरों की छतें भी मोमबत्तियों और दीपकों से जगमगा उठती हैं। किसी को यह ध्यान भी नहीं रहता कि जलता हुआ दीपक हिन्दू के मकान का है या सिक्ख के घर का। इस बात से पंजाब के सच्चे भाईचारे का साक्षात् प्रमाण मिलता है। कार्तिक पूर्णिमा को हिन्दू भी पवित्र सरोवरों में स्नान करना नहीं भूलते। इस प्रकार यह लोकोत्सव भावात्मक समन्वय की मधुर सुगंधि छोड़ जाता है।

(ङ) **कोठरियों वाला व्रत** : पाकिस्तान बन जाने के बाद बहुत से अरोड़ा खत्री परिवार स्वाधीन भारत में आ बसे हैं। पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) के मुज़फ़्फ़रगढ़ ज़िले का डोरेवाल गाँव छोड़ कर आए लोगों में 'कार्तिक पूर्णिमा' का त्योहार 'कोठरियों वाला व्रत' कहलाता है। उस दिन सुबह को सूर्योदय से पहले ही स्त्रियाँ थोड़ा-सा कलेवा कर लेती हैं। इसके बाद वे दिन भर निर्जल व्रत करती हैं।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाम को पाँच बजे के लगभग वे किसी बागीचे में जा कर दो ईंटें सीधी खड़ी करके और उनके ऊपर एक ईंट लिटा कर एक 'घरौंदा' बना लेती हैं। इसे वे 'कोठरी' कहती हैं। इसी तरह की कम-से-कम तीन चार कोठरियाँ तैयार की जाती हैं। प्रत्येक कोठरी में आटे का बना और सरसों के तेल से भरा दीया जलाया जाता है। वहाँ से लौटने के बाद स्त्रियाँ घर में आ कर रसोई में सरसों का साग और गेहूँ की रोटियाँ बनाती हैं। ये रोटियाँ बेलते समय एक रोटी के बिल्कुल बीच में गोल छेद करके उसे फुल्के की तरह तवे पर सेंक लिया जाता है।

रात्रि में चाँद निकल आने पर इसी रोटी के बीच से झाँक कर चन्द्र-दर्शन किया जाता है। चंद्रमा को मूली के पत्तों का अर्घ्य दिया जाता है। अर्घ्यदान के पश्चात् स्त्रियाँ छेद वाली रोटी को सरसों के साग के साथ सेवन करती हैं। परिवार के अन्य सदस्य भी रात्रि के भोजन में गेहूँ की रोटी और सरसों के साग का ही उपयोग करते हैं। चन्द्र-दर्शन की यह प्रक्रिया 'करवा चौथ' से साम्य रखती है।

(च) **माड़** : हिमाचल प्रदेश के मंडी ज़िले में कार्तिक पूर्णिमा की रात्रि को पशुओं का त्योहार मनाया जाता है। पशुओं के पूजन संबंधी लोकगीतों एवं त्योहार दोनों को ही 'माड़' कहा जाता है। हिमाचल प्रदेश के विभिन्न जल स्रोतों में स्नान और मंदिरों में पूजा-पाठ तथा दान हेतु लोग देव-मंदिरों में पहुँचते हैं।

इस प्रकार ज्योति-पर्व की मूल अवधारणा को सुरक्षित रखे हुए कार्तिक-पूर्णिमा का एक-एक दीपक ज्ञान का प्रतीक निरंतर बना हुआ है। इसी ज्ञान-चेतना ने प्रभु-भक्ति, गुरु भक्ति, शरीर की शुद्धि में सहायक एवं प्राणदायी जल देवता के प्रति ही नहीं, बल्कि पंचगव्य दाता तथा अन्न उपजाने में मददगार पशु-जगत् के प्रति श्रद्धा भाव जगाने में भी अत्यन्त भव्य भूमिका निभाई है।

## माघ-पूर्णिमा

'गुरु रविदास प्रकाशोत्सव' के कारण ही माघ-पूर्णिमा का विशेष महत्व माना जाता है। बनारस के समीप मडुवाडीह ग्राम में उत्पन्न भक्त रवि दास जी ने बड़े सुंदर भक्ति प्रधान पदों की रचना की थी। कबीर जी की भाँति उनके अनेक पद भी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित हैं। 'रैदास' एवं 'रविदास' की छाप वाली पद-रचना करने वाले इन महात्मा के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में शोभा यात्राएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लंगर आयोजित किए जाते हैं।

## पीर–उत्सव

फ़ारसी का अनेकार्थक 'पीर'[15] शब्द भारत की निराकार भक्ति एवं इस्लाम से प्रभावित सूफ़ी विचारधारा के समन्वय के कारण 'सिद्ध पुरुष' का पर्याय बन गया है। अनेक सिद्धियों की प्राप्ति के बावजूद, जिस का सिर फिरा न हो और जो सरल स्वभाव एवं संतोषी वृत्ति का भक्तजन हो, उसे ही सामान्यजन 'पीर साहिब' के नाम से पुकारते हैं। पीर जन्मत: चाहे हिन्दू माता-पिता की संतान रहे हों अथवा मुसलमानों की औलाद, किन्तु जाति-पाति और वर्ण-भेद के विरोध के कारण उनके श्रद्धालुओं में हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख और ईसाई धर्म को मानने वाले लोग भारी संख्या में मिलते हैं। पीरों के स्मारकों की यात्रा को 'उर्स' या ज़ियारत' कहा जाता है। ज़ियारत' अरबी भाषा का शब्द होने पर भी 'संस्कृत' शब्द 'यात्रा' से विचित्र ध्वनि-साम्य रखता है।

(क) **काश्मीर के प्रसिद्ध पीरोत्सव :**

काश्मीरी भाषा में एक कहावत है:

"शीने मीशा, वावा बातमोल, रूडा बहाउद्दीन"

इसका अर्थ है कि मीशा साहिब के उर्स के समय बर्फ़ पड़ती है। बातमोल साहिब के उर्स के अवसर पर ठंडी हवाएँ चलती हैं तथा बहाउद्दीन साहिब की ज़ियारत के दिनों में मूसलाधार वर्षा होती है। मौसमी आपदाओं के बावजूद सुन्नी मुसलमान और हिन्दू सर्दी में मक़दूम साहिब, वंसत ऋतु में दस्तीगर साहिब तथा वर्षा ऋतु में शाह हमदन साहिब के स्मारकों के अतिरिक्त श्रीनगर के आस-पास के इलाके में विद्यमान अनेक पीरों संबंधी धर्म-स्थलों की यात्रा करते हैं।[16]

"ऋषि पीर" एक हिन्दू साधु थे। इनका उर्स वैशाख शुदि पंचमी को अली-कदाल में आयोजित होता है। ये सिद्ध पुरुष सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में श्रीनगर में रहा करते थे। जन-साधारण इन्हें पीर-पंडित-पादशाह के नाम से याद करता है। मेले (उर्स) के दिन हिन्दू लोग इनका श्राद्ध करते हैं और उसके उपलक्ष्य में कपड़े, अन्न एवं धन अर्पित करते हैं। पीर की दरगाह से परमल (भुने हुए चावलों) का प्रसाद लेकर श्रद्धालुजन घर को लौटते हैं और इसे परिजनों एवं बंधु बांधवों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बाँटते हैं।[17]

"चरार-ए-शरीफ़ की दरगाह" का संबंध शेख नूरुद्दीन से है। काश्मीर के ये प्रसिद्ध मुस्लिम पीर घाटी के संरक्षक माने जाते हैं और नुन्द ऋषि के नाम से भी विख्यात हैं। नुन्द ऋषि का जन्म सन् 1377 ईस्वा में हुआ था। अपने 63 वर्ष के ज़ीवन काल में इन्होंने सूफ़ी रंग में रंगे अनेक भक्ति-परक पदों की रचना की थी। उर्स के समय पधारने वाले हज़ारों हिन्दू, मुस्लिम एवं सिक्ख श्रद्धालुओं को इनके रचना-संग्रह का दर्शन करवाया जाता है। नुन्द ऋषि और इनकी समकालीन हिन्दू संत महिला लाल दीद की अनेक धार्मिक संगोष्ठियों के विवरण काश्मीरी साहित्य में उपलब्ध हैं। इनकी आध्यात्मिक उपलब्धियों से सुलतान ज़ैन-उल-अबीदीनी बादशाह अत्यंत प्रभावित हुआ था। यही कारण है कि वह ऋषि साहिब के सम्मानार्थ उनकी शव यात्रा में शामिल हुआ था। चरार-ए-शरीफ़ पहुँचने वाले ज़ियारीन (यात्री) रास्ते भर ऋषि साहिब के मधुर पदों का गान करते आते हैं।

काश्मीर में तंगमर्ग के समीप बाबा ऋषि की, एश मुकाम में ज़ैना शाह का, अनंतनाग में ऋषि मोल तथा डोडा में शेख फ़रीदुद्दीन की दरगाहें हैं। बातमोल साहिब के नाम पर ही श्रीनगर की एक बस्ती का नाम बातमोलू पड़ गया है। ऋषि मोल एवं बातमोल साहिब के उर्स के समय माँसाहारी हिन्दू ही नहीं, बल्कि मुसलमान ज़ियारीन भी गोश्त से परहेज़ करते हैं।[18]

(ख) **राजस्थान के पंच पीर और गोगा :**

राजस्थान में 'पंच पीर' की विशेष मान्यता का परिचय निम्नलिखित दोहे से मिलता है:

पाबू, हरमू, राम दे, मांगलिया मेहा।
पांच्यूँ पीर पधारज्यो, गोगा जी जेहा।।

**(क) पाबू जी :** इनमें से पाबू जी राठौड़ जाति के राजपूत थे। उन्होंने अपने विवाह के समय एक चारणी से घोड़ी माँगी। उसके बदले में उन्होंने चारणी की गायों की रक्षा का वचन दिया। विवाह-वेदी पर विराजमान पाबू जी को सूचना मिली कि जोंदराव खींची चारणी की गायों को ले जा रहा है तो वे वहाँ से उठकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खींची से युद्ध करने चल दिए। किन्तु लड़ते-लड़ते वे वीरगति को प्राप्त हो गए।[19]

पाबू जी की पूजा "थोरी नायक" विशेष रूप से करते हैं। वे पाबू जी की जीवन कथा को एक पर्दे पर चित्रित करके उनकी वीर गाथाएँ लोगों को सुनाते हैं। ऐसी 52 वीर गाथाएँ राजस्थान में प्रचलित हैं, जिन्हें 'पाबूजी रा पवाड़ा' कहा जाता है। एक पवाड़े में चारणी की गायों को भगाने के लिए आने वाले व्यक्ति का नाम जायल (ज़िला नागौर) का खिची जिनराज देवल भी बताया गया है। पवाड़ा गायकों के साथ एक स्त्री भी रहती है। गीत 'रावण हत्थे' नामक वाद्ययंत्र पर गाए जाते हैं और यह स्त्री गाने के साथ नृत्य करती है।

पाबू जी मार्गशीर्ष कृष्ण नवमी संवत् 1381 विक्रमी (19 नवम्बर, सन् 1326) को वीरगति को प्राप्त हुए थे। उस दिन राजस्थान में बहुत-सी जगह मेले लगते हैं। लोक विश्वास है कि पाबू जी के जन्म स्थान केरू ग्राम में यदि सर्प-दंशित व्यक्ति को ले जाया जाए तो उसके शरीर से ज़हर निकल जाता है।[21]

**(ख) रामदेव जी –** जैसलमेर ज़िले में बहुचर्चित पोकरण नामक स्थान से तेरह किलोमीटर की दूरी पर रुणीचा गाँव में बाबा रामदेव जी का जन्म भादों शुदि द्वितीया को संवत् 1461 (सन् 1404 ई.) में हुआ था। उन्होंने आजीवन लोगों की सुख शांति के लिए काम किया और भादों शुदि एकादशी (भादवा सुदि ग्यारस, संवत् 1516 (सन् 1459) में स्वनिर्मित राम सरोवर में जल समाधि ले ली थी। रामदेव जी को कृष्ण भगवान का अवतार माना जाता हैं।[22] राजस्थान के अनेक गाँवों और कस्बों में रामदेव जी के मंदिर मिलते हैं, जिन्हें बहुधा 'रामदेवरा' कहा जाता है। इनमें कहीं रामदेव जी की 'पगलियाँ' (पदचिह्न) की पूजा होती है और कहीं उनकी वीर वेश वाली प्रतिमा की।[23]

रुणीचा गाँव में हर वर्ष बाबा रामदेव जी का मेला लगता है। यह मेला भाद्रपद शुक्ला द्वितीया से एकादशी तक दस दिन चलता हैं। इस मेले के विषय में डॉ. देवदत्त शर्मा लिखते है:

"सुरीले कंठ से गाती भोपी और उसके गाने के तोड़ पर नाचता भोपा मेले के आए लोगों का मन मोह लेता है तो दूसरी ओर ताली नृत्य को देख कर लोग झूम उठते हैं। कहीं 'बोल रामशाह पीर की जय' का स्वरघोष गूँजता है तो कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'खम्भा-खम्भा हो घणी रुणीचरा धाणियाँ, गीत की स्वर लहरी वातावरण में तैर जाती है।..... सच पूछा जाए तो 'रामदेवरा' भारत का एक ऐसा आस्था-केन्द्र है जहाँ हिन्दू और मुसलमान समान रूप से रामदेव को पूजते हैं। मुसलमान उन्हें "रामशाह पीर" के नाम से पूजते हैं तो हिन्दुओं में वे "बाबा रामदेव" के नाम से विख्यात हैं। मेले में..... बाबा रामदेव का लकड़ी का घोड़ा भी लोग बड़े चाव से खरीदते हैं। ये घोड़े छोटे-बड़े अनेक आकार-प्रकार के मिलते हैं और कपड़ा एवं गोटे की किनारी से सजे हुए होते हैं। लोग उन्हें रामदेव जी के घोड़े के प्रतीक के रूप में खरीद कर लाते हैं और अपने घरों में रखता हैं।[24]"

## (ग) तेजा जी

तेजा जी खरनाल (ज़िला नागौर) के जाट थे। उन्होंने लाजा गुजरी की गौओं को मीणा जाति के लोगों से छुड़वाया था। जाते समय बालू नाग ने उन्हें रोका था। किन्तु गौओं को मुक्त करवा कर अपनी वचन-पूर्ति का विश्वास दिलवाने के कारण जब तेजा जी लौटे तो बालू नाग ने उन्हें डस लिया और वे काल कवलित हो गए।

पूरे राजस्थान में तेजा जी महाराज की पूजा सर्पों के देवता के रूप में होती है। राजस्थान के अनेक गाँवों में "तेजा जी के थान" हैं, जहाँ भाद्रपद शुक्ला दशमी को मेले लगते हैं। इस थान पर तेजा जी को वीर वेश धारण किए हुए घोड़े पर सवार दिखाया जाता है। मूर्ति में तेजा जी के हाथों में माला और तलवार पकड़ी होती है। उनकी जीभ पर एक साँप डंक मारता हुआ दिखाया जाता है। उनके 'थान' पर अनेक रंगों के कपड़े से बना और साँप की आकृति वाला ध्वज लहराता रहता है।[25] कई गाँवों में श्रद्धालु लोग ऐसे ध्वज उठाए हुए पूजा-स्थल की ओर एक जुलूस बनाकर आते हैं।

हरमू जी और मांगलिया मेहा जी का जीवन-वृत्तांत बहुत कम मिलता है। किन्तु राजस्थान के इन सभी सिद्ध पुरुषों की तुलना में गोगा जी की मान्यता अकेले राजस्थान में ही नहीं, बल्कि पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गोगा जी की जीवन गाथा : विभिन्न रूपांतर

गोगा जी चौहान राजपूत वंश के सपूत थे। उनका जन्म तत्कालीन चुरु राज्य के ददरेबा नामक स्थान पर हुआ था। इसी स्थान को राजधानी बना कर उन्होंने शासन किया था। आजकल यह स्थान गंगा नगर ज़िले की नौहर तहसील में है।[26] कर्नल टॉड ने 'राजस्थान के इतिहास' में गंगा जी को फ़ीरोज़शाह का समकालीन बताया है। डॉ. दशरथ शर्मा ने उन्हें 'कयाम खाँ रासो' एवं संवत् 1270 (सन् 1213) में उत्कीर्ण शिलालेखों के आधार पर सुलतान महमूद ग़ज़नवी का समकालीन सिद्ध किया है।[27]

राजस्थान की लोक गाथाओं में गोगा जी के पिता का नाम झेंवर और माता का नाम बाछल बताया गया है। किन्तु पंजाब की लोकगाथओं में यह शब्द 'जेवर' बन गया है और हिमाचली लोकगाथाओं में 'राजा ज्योरी'[28] मिलता है। सभी लोकगाथओं में गूगा जी की माता का नाम 'बाछल' ही मिलता है। इन समस्त लोकगाथओं के अनुसार माता बाछल को गुरु गोरखनाथ की सेवा के फलस्वरूप इस वीरवर पुत्र की प्राप्ति हुई थी।

किन्तु बाछल की बहन ने उसके कपड़े पहनकर धोखे से गुरु गोरखनाथ से पुत्र जन्म का वरदान प्राप्त कर लिया था। फलत: उसने अर्जुन एवं सर्जुन नामक दो बेटों को जन्म दिया। विधर्मियों से मिले ईर्ष्यालु मौसेरे भाइयों से बदला लेने एवं गौ-रक्षा हेतु गोगा जी ने अर्जुन एंव सर्जुन की हत्या कर दी। बाछल ने अपने भाँजों की मृत्यु के कारण अपने बेटे गूगा (गौगा) जी को बुरा भला कहा, जिसके कारण उन्होंने जीवित समाधि ले ली।

विभिन्न रूपांतर

राजस्थान की लोकगाथाओं में बाछल से धोखाधड़ी करने वाली उसकी बहन का नाम 'आदल' बताया गया है।[29] पंजाब की लोकगाथओं में यह नाम 'काछल' मिलता है और उसे राजा जेवर की दूसरी पत्नी बताया गया है। पंजाब की लोकगाथाओं में 'बाछल' की बहन 'आछल' का कोई उल्लेख नहीं है। हिमाचली लोक गाथाओं में बाछल, काछल तथा आछल तीनों बहनों के नाम तो हैं, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन तथा सर्जुन की जन्मदात्री का नाम 'काछल' ही दिया गया हैं।[30]

राजस्थानी लोकगाथाओं में गोगा जी के दो विवाहों का वर्णन हुआ है। उनकी पहली पत्नी का नाम सुरियल और दूसरी का नाम केलमदे बताया गया है। केलमदे के पिता का नाम बूढो जी लिखा हुआ मिलता है।[31] डॉ. सत्येन्द्र ने 'जाहर पीर : गुरु गोगा' नामक ग्रंथ में 'केलमदे' की जगह गोगा जी की दूसरी पत्नी का नाम 'केलण बाई' बताया है। केलण बाई के पिता 'बूड़ा जी' थे। इन्हीं बूड़ा जी के छोटे भाई पाबू जी थे।[32]

गोगा जी द्वारा अपने मौसेरे भाइयों की हत्या और माता बाछल के रोष के कारण जीवित-समाधि लेने की चर्चा राजस्थान के विद्वानों ने इस प्रकार की है:

एक दिन जब केलमदे बाग़ में झूल रही थी तो अरजन और सरजन ने उसके गहने उतरवा लिए। घटना की जानकारी मिलने पर गोगा जी ने अरजन और सरजन को मार डाला। बाछल को जब इस बात का पता चला तो उसने गोगा जी को 12 वर्ष का देश-निकाला दे दिया। गोगा जी का मन बड़ा दु:खी हुआ। उन्होंने धरती माँ से प्रार्थना की कि वह उसे शरण दे। धरती के फट जाने से गोगा जी उस में समा गए।

इस दुखद घटना से इनकी पहली पत्नी सुरियल ने बड़ा विलाप किया और गोरखनाथ से प्रार्थना की कि वे उनके पति को वापस लाएँ। कहते हैं कि गोरखनाथ इन्द्रलोक गए और गोगा जी को पुन: धरती पर ले आए।

गोगा जी रात में चुपके से रोज़ सुरियल के पास आते और सवेरा होते ही चले जाते। बाछल ने जब सुरियल के सुहाग चिह्नों पर व्यंग्य किया तो सुरियल ने सब कुछ सही-सही बता दिया और रात को जब गोगा जी आए तो उन्हें भी बाछल को दिखा दिया। इस पर बाछल ने गोगा को अपना मुँह न दिखाने की बात कही और ताना मारा। गोगा जी तुरंत महलों से निकल गए और फिर लौट कर नहीं आए। वे "गोगा मैडी" गए और जहाँ आज समाधि बनी हुई है, वहाँ समाधिलीन हो गए।"[33]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) "माता बाछल ने इनको मौसेरे भाइयों को मारने के कारण प्रताड़ित किया। गोगा जी अपमानित हो कर घर छोड़ कर चल दिए। वे रात्रि के समय अपनी पत्नी सूर्यल से आकर मिलते रहते थे। अत: उनकी पत्नी सदा सधवा वेश में रहती थी। सासू के विवश करने पर उसे गोगा जी का नित्य रात्रि में आने वाला भेद बताना पड़ा और गोगा जी को दिखाना पड़ा। गोगा की माता ने नाराज़ होकर उनसे कहा कि तुम्हें मौत नहीं आई? इतना सुनकर गोगा जी धरती में समा गए और बाद में मेड़ी में पीर जी बनकर प्रकट हुए।"[34]

पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश की लोकगाथओं में बताया गया है कि गोगा (गूगा) जी माता के कटु वचन सह न सके और भूमि में समाने के लिए मुसलमान बन गए। इस विषय में कुछ मत उद्धृत हैं :

(क) "..... भारी युद्ध हुआ, जिसमें अरजुन सुरजन मारे गए। माता बाछला को इनका मारा जाना अच्छा न लगा। अत: उसने गुगा को बुरा भला कहकर आदेश दिया कि वह भी वहीं अपने प्राण दे, जहाँ उसने भाइयों को मारा है। राणा ने भाइयों का दाह संस्कार किया तथा पृथ्वी से प्रार्थना की कि वह उसे स्थान दे ताकि वह भूमि में समा जाए। पृथ्वी ने उत्तर दिया कि वह उसे तभी स्थान दे सकती थी जब वह मुसलमान होता, परन्तु वह तो हिन्दू है। यह सुनकर राणा (गुगा) ने एक मौलवी से कुरान पढ़ा और धर्म बदल दिया। तब पृथ्वी ने राणा को स्थान दिया और वह भूमि में समा गया।[35] "

(ख) लोकगीतों में भू-समाधि के विषय में कहा जाता है कि जब माँ की लताड़ खा कर गूगा ने भू-समाधि की कामना की तो पृथ्वी माता ने कहा कि "तू हिन्दू है अथवा मुसलमान"?..... गूगा ने कहा कि "आज तक तो मैं हिन्दू था, किन्तु आज मैं मुसलमान हो गया हूँ।"[36]

**वस्तुस्थिति**

माता की "लताड़ खा कर" अथवा 'ताना सुनकर' गोगा जी के मुसलमान बन जाने की बात पर पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता। राजस्थान की लोकगाथाएँ ही गोगा जी के जीवन-वृत्तांत का मूल स्त्रोत हैं और उनमें उनके मुसलमान बनने का उल्लेख नहीं मिलता। अत: हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं:

(क) गोगा जी की लोकगाथओं पर गोरखपंथ का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत: उनके जीवित अवस्था में भू-समाधि लेने का प्रसंग अत्यंत स्वीकार्य है, क्योंकि योगीजन प्राय: अपने जीवन की इतिश्री आज भी इसी प्रकार करते दिखाई पड़ते हैं।

(ख) "शर्म के मारे गड़ना" अथवा "शर्म के कारण मुँह न दिखाना" मुहावरे एक अपमानित व्यक्ति के पश्चाताप को व्यक्त करते हैं। किन्तु लोकगाथाकारों ने इसका लाक्षणिक अभिप्राय न समझकर इसका अभिधामूलक अर्थ लिया और गोगा जी के अंतिम दिनों में मुसलमान होने की कल्पना कर ली। राजपूत आरंभ से ही मुसलमान शासकों का विरोध करते आए थे। अत: राजपूत वंश के गोगा जी के धर्म-परिवर्तन की कल्पना से ही मुस्लिम श्रद्धालुओं में उनके प्रति आस्था उत्पन्न की जा सकती थी। यही कारण है कि वे हिन्दू-मुस्लिम सामंजस्य के प्रतीक माने जाते हैं, यथा:

"गोगा जी हिन्दुओं में जिस आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं, इसी आदर के साथ वे मुसलमानों में जाहर पीर के नाम से जाने जाते हैं।"[37]

पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी के आरंभ में ही गोगा जी एक लोक देवता के रूप में ख्याति-लब्ध हो गए थे और उन्हें ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की श्रेणी में रखा जाने लगा था।[38] गोगा को "गुगा" और 'गुग्गा' भी पुकारा जाता है। इसके और भी अनेक नाम हैं, जिनके कारणों पर एक हरियाणवी विद्वान ने इस प्रकार प्रकाश डाला है:

"गुगा के भक्त उसके चार रूप मानते हैं और उसी दृष्टिकोण से उसकी पूजा एवं नृत्य करते हैं। वे ये हैं:

(1) मुसलमान सम्प्रदाय के भक्त उसे 'गुग्गा पीर' के नाम से याद करते है।

(2) हिन्दुओं के लिए वह 'गुरु गुग्गा' हैं।

(3) अत्यंत हृदयों में ज़ाहिर (प्रत्यक्ष) होने के कारण उसे 'जाहिर पीर' भी कहा जाता है।

(4) 'बागड़' भू-भाग में जन्म लेने के कारण वह 'बागड़ वाला' के नाम से भी प्रसिद्ध है।[40]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोगा जी के नाम की व्युत्पत्ति तथा 'ज़हिर पीर' के स्थान पर केवल 'जहर' (विष) बन जाने की भ्रामकता का संकेत निम्नलिखित उद्धरण में विद्यमान है: "विष्णु ने दयालक (उदालक ऋषि) को गुरु (गोरखनाथ) की सहायता के लिए भेजा। दयालक ने तुरंत उस स्थान पर पहुँच कर बासुकि के सिर पर झाड़ू मारा, जिससे फल बाहर निकल आया। दयालक ने झट फल उठाया और उसे गुग्गल धूप में बदल दिया ताकि फिर बासुकि उसे खा न ले। गुग्गल धूप को साँप नहीं खा सकते।

× × ×

माता बाछला मायके से अपने घर बागड़ देश पहुँची। उसे यहाँ आए भी कई दिन बीत गए, परन्तु गुगे का जन्म न हुआ। एक दिन बाछला ने अपनी बहन काछला से अपनी चिन्ता प्रकट कीं। काछला तो हर समय बुराई और ईर्षा से जली-भुनी रहती थी। उसने मौक़े का लाभ उठाया और दवाई के बहाने बाछला को ज़हर पिला दिया। ज़हर पिलाने की देर थी कि रानी बाछला के उदर से बंच्चे ने जन्म लिया। चूँकि वह गुग्गल धूप के खाने से और ज़हर के प्रभाव से उत्पन्न हुआ था। अत: बच्चे का नाम "गुगा ज़हर" रखा गया।"[41]

## गोगा मैड़ी (मेड़ी) एवं गोगा नवमी

पूरे राजस्थान में गोगा जी को "साँपों का देवता" माना जाता है। प्रत्येक गाँव में खेजड़ी के पेड़ के नीचे गोगा जी की मैड़ी बनी होती है, इस विषय में एक राजस्थानी लोकोक्ति है:

"गाँव-गाँव गोगों नै, गाँव-गाँव खेजड़ी"

भाद्रपद कृष्णा नवमी (कृष्ण जन्माष्टमी से अगले दिन) को -गोगा नवमी' का लोकपर्व मनाया जाता है। घरों में गोगा जी की पूजा लोकरुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में की जाती है, यथा:

(1) लोग घरों में किसी दीवार पर साँप का चित्र बना कर और उसके पास खेजड़े की टहनी रखकर पूजा करते हैं। इसी प्रकार किसान भी हल चलाने से पहले 'गोगा राखड़ी' बाँधते हैं ताकि हल चलाते समय ज़मीन से कोई साँप न निकले।[42]


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection; Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) कई जगह हाली द्वारा हल चलाना आरंभ करने से पहले नौ गाँठों वाली राखी बाँधी जाती है, जिसे 'गोगा राखड़ी' कहते हैं। इस अवसर पर खीर, लपसी और चूरमा का भोग बाँटा जाता हैं।[43]

(3) कई जगह गोगा जी की मिट्टी की प्रतिमाओं की पूजा की जाती है। उन पर चावल चढ़ाए जाते हैं। "रक्षा बंधन" के अवसर पर कलाई पर बाँधी गई राखियाँ इन्हीं मूर्तियों को अर्पण कर दी जाती हैं।[44]

(4) कई जगह यह लोकाचार भाद्रपद कृष्ण पंचमी को निभाए ज़ाते हैं। इस दिन को 'गूगा पंचमी' कहा जाता हैं। तत्संबंधी थापे और पूजापे का उल्लेख एक विदुषी ने इस प्रकार किया है:

"भाद्रपद कृष्ण पक्ष की पंचमी को 'गूंगा पंचमी' त्योहार मनाया जाता है। इस दिन नाग देवता का पूजन किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम नागों को दूध पिलाते हैं, फिर दीवार पर किसी एक जगह मिट्टी से पोत कर चौकोर घर बनाते हैं। कोयले से ही फिर पाँच नाग-सर्प बनाकर जल, कच्चा दूध, रोली, चावल, बाजरा आटा, घी और चीनी से पूजा करते हैं।"[45]

सौंदर्यवृद्धि के लिए ऐसे थापे के चारों कोनों में एक-एक स्वस्तिका और दो स्वस्तिकाओं के मध्य में एक साँप भी बना लिया जाता है। साँप का रंग काला ही रखा जाता है।

गोगा जी के थानों और साँपों के देवता के रूप में मान्यता के विषय में डॉ. देवदत्त शर्मा लिखते हैं:

"गोगा जी के थान पर अलग-अलग प्रकार की मूर्तियाँ पाई जाती हैं। कहीं पत्थर पर सर्प बनाकर उसकी पूजा की जाती है तो कहीं घोड़े पर सवार गोगा जी की मूर्ति मिलती है। ये मूर्तियाँ अलग से न होकर प्रस्तर शिलाओं पर ही अंकित होती हैं। गाँव में जब किसी व्यक्ति के साँप काट खाता है तो उस व्यक्ति को गोगा जी के थान पर ले जाते हैं, जहाँ ढोल, नगारे, डफ व झाँझ आदि बजाकर गोगा जी के उपासक साँप का ज़हर उतारते हैं।

लोगों में यह प्रबल विश्वास है कि गोगा जी के हुक्म के बिना साँप किसी को भी नहीं काटता.... जब किसी के घर में साँप निकल आता है तो लोग गोगा


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जी का नाम लेकर साँप को कच्चे दूध के छींटें मार देते हैं, जिससे वह किसी को काटे नहीं। कुछ लोग पहले ही गोगा जी का नाम लेकर घर के चारों ओर कच्चे दूध के छींटे मार देते हैं ताकि साँप निकले ही नहीं।"[46]

## "गोगा मैड़ी" का प्रसिद्ध मेला

"गोगा मैड़ी" राजस्थान का एक छोटा-सा रेलवे स्टेशन है, जो कि गोगा जी की जन्मस्थली के नाम से प्रसिद्ध है। यह गंगानगर ज़िले से हनुमानगढ़ जाने वाली रेलवे लाइन पर नोहर कस्बे से लगभग 39 किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ पर भाद्रपद कृष्णा नवमी को गोगा जी के नाम पर 'गोगा मेला' लगता है। 'गोगा मैड़ी' पहुँचने वाले श्रद्धालु पहले 'गोरख टीले' पर अपना पड़ाव करते हैं। इसके समीपस्थ 'गोरखाण तालाब' के पास वे कुछ समय डेरा लगाते हैं। यात्री दल अपने-अपने झंडों को उठाएँ ढोल, डैरूँ (डमरु), तुर्रा (तुरही), बाँकिया और नागफणी वाद्ययंत्रों की मधुर ध्वनियों के साथ डेरे में पहुँचते हैं। अधिकतर श्रद्धालु एक मार्ग दर्शक योगी को भी साथ लाते हैं।, जो कि गोगा जी के जीवन-प्रसंगों को काव्यमयी भाषा में गाता हैं और सारे अनुष्ठान संपन्न करवाता है। ये सारे कार्यक्रम भादवीं अष्टमी (कृष्ण जन्माष्टमी) की रात्रि को गोरख टीले पर आयोजित होते हैं।

अगली सुबह नवमी को ये सभी श्रद्धाजु दल अपने साथ आए योगी समेत "नागड़ के पीर गोगा की जय"; "जाहर पीर गोगा की जय" और "नरसिंह बली की जय" के नारे लगाते हुए 'गूगा मैड़ी' की ओर बढ़ते हैं। वे संगमरमर से बनी गोगा जी की समाधि को दंडवत प्रणाम करते हैं। समाधि-स्थल का पुजारी जोगी एक सांकल से प्रत्येक श्रद्धालु की पीठ ठोंकता रहता है। यह सांकल लोहे की होती है और उस पर चाँदी का पानी चढ़ा रहता है। 'मैड़ी' में पहुँच कर भक्तजन अपनी सामर्थ्य के अनुसार नारियल, लड्डू, सोने-चाँदी के छत्र के साथ कुछ धन-राशि भी भेंट करते हैं। तदनंतर 'गोगा जी की बंदगी' होती है, जिस के उपलक्ष्य में श्रद्धालु भक्त 'गोगा जी की समाधि' पर चन्दन का चूरा, घी और इत्र मलते हैं। कई लोग तो श्रद्धावनत होकर पेट के बल रेंग कर मैड़ी की परिक्रमा भी करते हैं।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मैड़ी के बाहर एक जलाश्य है, जिसे 'नरसिंघ कुंड' कहते हैं। वहाँ पर विराजमान 'पुजारी' कुंड से जल लेकर यात्रियों पर पानी छिड़कता रहता हैं। जो यात्री 'निशाण' (झंडे) या 'अखाड़े' के साथ आते हैं, वे जितने दिन 'गोगा मैड़ी' में टिकते हैं तब दिन में तीन बार उस धर्म-स्थल को 'अदब अदा' करते हैं। गोगा जी के सम्मान में ढोल-झाँझ बजाकर नमस्कार करना ही 'अदब' कहलाता है। 'ददरेवा' में बनी 'गोगा जी की मैड़ी' अपनी प्रमुखता के कारण 'शीश मैड़ी' के नाम से विख्यात है। जनश्रुति है कि चुरु ज़िले की इस 'शीश मैड़ी' में जुझारू गोगा जी का सिर गिरा था। किन्तु उनका धड़ लड़ता-लड़ता वहाँ पहुँच गया था, जो स्थल आज 'गोगा मैड़ी' के नाम से जाना जाता हैं।[47] गोगा मैड़ी के निर्माण एवं पुनरुद्धार तथा पूजा-विधान संबंधी अनेक किंवदतियाँ प्रचलित हैं।

## जगराते एवं केसरिया कंवर

कुछ स्थानों पर 'गोगा नवमी' पर अथवा अन्य किसी रात्रि को राजस्थान में 'रतजगा' भी होता है। उस समय स्त्रियाँ सिद्ध एवं वीर पुत्र गोगा जी का स्तुति गान करती हैं। ऐसे लोकगीत से गौ-रक्षक गोगा जी का रूप उभर कर सामने आता है, जिससे राजस्थान के जन-मानस की उर्बरता का प्रमाण मिलता है। मानो 'गौ' (गायों के रक्षक) का 'गान' (गा) कर वे 'गोगा' की शब्दावलि का निर्माण प्रकारांतर से करके उनके प्रति अपार आदर प्रकट किया जाता है। ऐसे लोकगीत का थोड़ा-सा अंश प्रस्तुत है :

पहलां छोड़ालूँ बाओरी गावड़ी पछै गायां रा गवाल ओ।
पहलां छोड़ायी बाओ री गांवड़ी दूध पिवै बछराज ओ।
मरिया तो नाडा धरमी नाड़का मरिया समंद तलाव ओ।

कुछ लोग 'गोगा नवमी' से पहले रात्रि को (भाद्रपद कृष्णाष्टमी) को 'केसरिया कंवर' का नाम ले कर 'नाग-पूजा' भी करते हैं। वे केसरिया कंवर को गोगा जी का आत्मीय पुत्र मानते हैं। स्तुति-परक गीतों में उन्हें "पद्मा नागण का जाया!" एवं "किस्तूरी का ढोला" के नाम से स्मरण करते हुए उनसे रक्षा की प्रार्थना करते हैं। ऐसा लोकगीत प्रस्तुत है:


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजरड़ी रो बूट कंवर जी, जै में म्हारी पाना नागण फणकरया।
बचिया ल्याई ओ चार कंवर जी, चारों में सकल सुणीजे बाबो केसरो।
कोरे कुण्डक मुहवा ए कंवर जी, छपन छुरी सै गाडी मोडियो।
ओ रज पीवै ओ दूध कंवर सा आप केसरियों कंवर बाबो घी पीवै।
पिडरन राखो पताल, कंवर जी, आडे मोडारी रिच्छाए करो।[48]

## पंजाब एवं हरियाणा के पूजा-स्थल एवं चढ़ावा

गूगा (गोगा) पीर के पूजा-स्थल को पंजाब में 'गुग्गा की माड़ी' और हरियाणा में 'गुग्गा की मैड़ी'[49] कहा जाता है। पंजाब में यह लोकपर्व भादों मास के कृष्ण पक्ष की नवमी (कृष्ण जन्माष्टमी से अगले दिन) मनाया जाता है। जन्माष्टमी की संध्या को स्त्रियाँ मीठी एवं नमकीन पूरियाँ और गुलगुले पका लेती हैं। इन्हें 'बासड़ा' (या 'बहैड़ा') कहा जाता है। नमकीन पूरियों में चने की दाल अवश्य मिलाई जाती है।

अगले दिन सुबह जब सारा परिवार स्नान कर लेता है तो गृह-स्वामिनी रसोई में एक उपला जला लेती है। परिवार का प्रत्येक सदस्य उस पर घी और हलदी की चुटकी भर कर डालता है। दूध में तीन चौथाई जल मिले तरल पदार्थ को 'कच्ची लस्सी' कहा जाता है। उसका छींटा भी जलते हुए उपले पर दिया जाता है। फिर गृह-स्वामिनी बासड़े की कुछ पूरियाँ और गुलगुले 'गुग्गा पीर' के नाम पर मनस कर अलग रख देती है। मनसा हुआ सामान और 'कच्ची लस्सी' का गिलास उठा कर वह अपने बाल बच्चों के साथ निकट के चौराहे पर जाती है।

चौराहे पर घर की 'सफाई मजूरिन' दो ईंटें खड़ी करके और उस पर एक ईंट लिटा कर एक घरौंदा बना कर विराजमान रहती है। श्रद्धालु स्त्रियाँ वहाँ पहुँच कर घरौंदे पर 'कच्ची लस्सी' चढ़ाती हैं और मनसी हुई बासी पूरियाँ तथा गुलगुले घरौंदे की पुजारिन को देकर 'दूधो नहाओ और पूतों फलो' का आशीर्वाद प्राप्त करती हैं। भले ही अब घरों में पुराने संडास नहीं रहे और 'सफाई मजूरिनें' पाखानों की सफ़ाई के लिए घर पर नहीं आतीं, तब भी गूगा पीर के चढ़ावे की अधिकारिनी पूर्ववत् उन्हें ही माना जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर पहुँचने पर सारे घर में 'कच्ची लस्सी' का छींटा दिया जाता है और सुबह के कलेवे, दोपहर तथा रात के भोजन में केवल 'बासड़े' का ही सेवन किया जाता है। संध्याकाल में 'गूग्गे की माड़ी' पर मेला देखने के लिए गए आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष एक कपड़े में मुट्ठी भर चने की दाल तथा एक प्याज अपने साथ ले जा कर 'गुग्गे की माड़ी' पर चढ़ाते हैं। इसी प्रकार के अनुष्ठान हरियाणा, हिमाचल प्रदेश एवं केन्द्रशासित प्रदेश चंडीगढ़ में विद्यमान हैं।

इन पूजा-स्थलों में अंगरखा और तंग मोहरी का पाजामा शरीर पर तथा सिर पर पगड़ी एवं कमर पर तलवार धारण किए हुए एक वीर पुरुष को नीले घोड़े पर सवार के रूप में दिखाया जाता है। उस के आस-पास साँप भी होते हैं। अधिकांश स्थलों पर काग़ज़ के बने चित्र ही शीशे में मढ़ कर रखे जाते हैं। गूगा-पूजन के लिए जाने वाली पंजाब के ग्रामीण आंचल की स्त्रियाँ प्राय: इस प्रकार के गीत गाती हैं:

पल्ले मेरे छल्लीआँ[50]
मैं गुग्गा मनावन चल्लीआँ
जी मैं वारी गुग्गा जी
लै चल्ली कटोरा दुद्ध दा
मेरा गुग्गा विहड़े विच्च कुद्दा[51]
जी मैं वारी गुग्गा जी
छन्ना[52] भरिआ तेल दा
मेरा गुग्गा विहड़े विच्च पेलदा[53]
जी मैं वारी गुग्गा जी
साडा गुग्गा खुश-खुश जाएगा
सानूँ नागाँ ते सप्पाँ तों वचाएगा
जी मैं वारी गुग्गा जी।[54]

हरियाणा की महिलाओं का इसी प्रकार का एक अन्य लोकगीत भी दृष्टव्य है:

और जाल सब भिणभिणी तूँ क्यों हे हरियाली?
के तूँ माली सींचिया के तेरी जड़ पैंताल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न मैं माली सींचिया न मेरी जड़ पैंताल
वारी मेरा जाहर मिल गईयां।
मेरे तेरे जाहर सो रहा सूत्या हे वो चादर ताण
वारी मेरा जाहर मिल गईयां।[55]

हरियाणा के गूगा के भक्त मोर पंखों से सजी जिस छड़ी को लेकर सप्ताह भर पूजा के लिए अन्न तथा धन एकत्र करते हैं, उसे गाँव के बाहर जाल (पीलू) के पेड़ के नीचे गाड़ दिया जाता है। इस लोकगीत में उसी पेड़ का वर्णन है। जन्माष्टमी की रात्रि को अथवा गूगा नवमी की रात्रि को गृहस्थी लोग छड़ी का पूजन करने आते हैं, तभी स्त्रियाँ उपर्युक्त लोक गीत गाती हैं। पूजन के बाद शक्कर बाँटी जाती है।[56]

## गूगे के मेले

वैसे तो गूगा नवमी के दिन सभी बड़े गाँवों और कस्बों में मेले लगते हैं, फिर भी हिमाचल प्रदेश में सबाथू और बिलासपुर एवं हरियाणा में हिसार तथा दादरी से लगभग पंद्रह किलोमीटर की दूरी पर खानपुर (ज़िला महेन्द्रगढ़) के मेले अत्यंत प्रसिद्ध हैं। वहाँ पर आयोजित कुश्तियों में दूर-दूर के पहलवान भाग लेने के लिए पहुँचते हैं। पंजाब के छपार (ज़िला लुधियाना) नामक ग्राम का मेला कई कारणों से अपनी विलक्षणता रखता है। यह मेला भादों शुदि चौदस को लगता है। उत्तर भारत के गूगा संबंधी अन्य मेलों से लगभग बीस दिन बाद। गूगा की माड़ी के आस-पास की भूमि खोद कर यात्रीगण मिट्टी का ढेर लगा देते हैं। इस कार्य के रहस्य का एक विद्वान ने बड़े वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया है, यथा:

"लोगों का विचार है कि जितने भी साँप हैं, उन सब में गूगे की रुह (आत्मा) काम कर रही है। इसी कारण गूगा पीर की खुशी के लिए मिट्टी खोदी जाती है और उसके भक्तों को प्रसन्न किया जाता है। गूगे की माड़ी के आस-पास की भूमि मेले के दिन मिट्टी निकाल-निकाल कर ढीली की गई होती है। मिट्टी निकालना संभवत: घोड़े के साथ धरती में लुप्त हुए गूगा की खोज करना अथवा सर्पों के लेटने के लिए जगह को नरम करना ही उद्दिष्ट होता है। यह भी जनश्रुति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि सर्प स्वयं बांबी नहीं बनाता, बल्कि खोदे हुए बिल का मालिक बन जाता है। शायद साँपों की इसी खुशी (इच्छा) के लिए ही मिट्टी खोदी जाती हो। एक मत यह भी है कि जहाँ अच्छा कलाधारी (रूप बदलने वाला) साँप रहता हो, वहाँ धरती उसे स्थान देने के लिए ऊपर की ओर उभर कर बांबी बन जाती है। मिट्टी खोदने वाले तो एक प्रकार की बांबियाँ ही तैयार कर रहे होते हैं।"[57]

'छपार के मेले' के दौरान अनेक पंजाबी लोकनृत्य होते हैं। लोकगायक अपनी बोली (पदों) में इस मेले में पधारने वाले अनेक लोगों का यशोगान करते हैं, जिसमें कई बार शौर्य-वर्णन के साथ-साथ कुछ व्यक्तियों से ठिठोली भी की जाती है। इस प्रकार की एक पद-रचना प्रस्तुत है:

आरी आरी आरी
मेल्हा तां छपार लग्गदा, जिहड़ा लगदा जगत तों भारी
कट्ठ मुशटंडिआँ दा उत्थे बोतलाँ मंग लइआँ चाली
तिन्न सेर सोना चुक्किआ, भान चक्क ली हट्टी दी सारी
रतन सिंघ कक्कड़ाँ दा, जीह ते चलणगे मुकद्दमे चाली
ठाणेदार तिन्न चढ़गे, नाले पुलस चढ़ी सरकारी
ईसू धूरी दा, जिहड़ा डाँग दा बहादर भारी
मंगू खेड़े दा, पुट्ठे हत्थ दी गंडासी उहने मारी
ठाणेदार इउँ डिगिआ, जिवें हल चों डिग्गे पंजाली
काहनूँ छेड़ी सी नागाँ दी पटिआरी।

इस प्रकार के हास्य-व्यंग्य, खेल-तमाशों और विभिन्न प्रदर्शनियों तथा राजनैतिक दलों के मंचों पर गर्मागर्म भाषणों वाला 'छपार का मेला' तीन दिन तक चलता है। परिचितों एवं नव परिचितों से विदा लेते हुए गूगा के श्रद्धालु कह उठते हैं।

जीउँदे रहे ताँ मिलांगे सौ वारी।
मर गए ताँ फेर रब्ब राज़ी।।[58]

हिमाचल प्रदेश के नाहन (ज़िला सिरमौर) नगर में "गूगा नवमी" को 'छड़ियों का मेला' कहा जाता है। मेले से आठ दिन पूर्व छड़ियाँ प्राप्त करने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कालीस्तान मंदिर" में एक प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है।

## गूगा पीर के भक्त और उनके लोकनृत्य

गूगा पीर के भक्त एक लम्बे बाँस को गोटे से जड़े हुए एक लाल कपड़े से लपेट कर, उस पर मोर पंख, हाथ से बने पंखे, रंगीन धागे तथा कुछ झालरें लटका लेते हैं। इसे 'गूगे की छड़ी' या शिष्ट भाषा में 'गूगे का विजय ध्वज' कहा जाता है। गूगे का एक भक्त इस छड़ी को बड़े सम्मान पूर्वक हाथों में थामे रहता हैं। उसके साथ डमरू पर थाप देते हुए दो-एक भक्त "गुग्गा-स्तुति" गाते जाते हैं। इनका नेता एक हाथ में एक लोटा और कंधे पर एक झोली लटकाए रहता हैं। यह सारा दल गली-मुहल्ले में धूमता हुआ अन्न और धन एकत्र करता है। गूगा जी का प्रमुख प्रतिनिधि अपने लोटे में सिक्के और झोली में आटा-दाल तथा नोट एकत्र करता जाता है। एक छोटी-सी कटोरी में रखी रोली से वह दानी व्यक्ति को बिन्दी लगा कर मोर पंख से बने चंवर को उसके सिर से स्पर्श करके 'गुग्गा' की ओर से आशीर्वाद देता जाता है।

हरियाणा, पंजाब एवं जम्मू की अपेक्षा हिमाचल प्रदेश में कुछ बातों में अंतर भी दृश्यमान होता है। वहाँ गूगा के भक्तों को 'गुगिया' अथवा 'गोगिया' पुकारा जाता हैं। इनके विषय में एक विद्वान ने लिखा है:

"रक्षा-बंधन से गूगा-नवमी तक गुग्गा भक्त 'गुगिया' या 'गोगिया' बाँस तथा पत्तों से बने एक विशाल छतरोड़े और छड़ी को लेकर ढोल, थाली और डमरू की विशिष्ट ताल पर 'भारथ' गाते युद्ध की मुद्रा में नाचते घर-घर जा कर गुग्गा भंडार के लिए अर्थ और अन्न की भेंट माँगते हैं। पवित्र छतरोड़े (छत्र) और छड़ी को रंग-बिरंगी डोरियों तथा रेशमी वस्त्रों की कतरनों से सजाया जाता है, जिसे एक व्यक्ति उठाए होता हैं। दो बालक हाथों में मोरपंख लेकर छतरोड़े के दोनों तरफ़ नाचते हैं। घर-घर घूम कर जुटाई गई सामग्री को गूगा-नवमी के दिन भंडारे में डाल दिया जाता है।[59]"

हरियाणा में कई जगह गूगा का यह 'निशान' (छड़ी) रक्षाबंधन के तीन दिन बाद विभिन्न घरों में घुमाना शुरू होता है। लोकभाषा में भाद्रपद कृष्णा तृतीया को 'बूढ़ी तीज' कहा जाता है। चंडीगढ़ में सेक्टर चौदह के एक कोने में (पी.जी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आई. की दाहिनी ओर) एक गूगा मंदिर है। वहाँ एक भक्त सजी हुई छड़ी थामे रहता है और दूसरा दान एकत्र करने के लिए झोली तथा पात्र। एक रिक्शा में नीले घोड़े पर सवार तथा शीशे में मढ़ा गूगा जी का चित्र धर कर "गुग्गा-स्तुति" की लोक धुनों वाली कैसेट टेप रिकॉर्डर पर चढ़ाई रहती है। गूगा-पूजा हेतु भिक्षाटन में आधुनिकता की छाप होने पर भी सर्वत्र एकत्र की गई सामग्री एवं धन-राशि का उपयोग गूगा के 'भंडारे' (प्रतिभोज एवं प्रसाद) के लिए ही होता है।

मेले जाने वाले लोगों को भी पूजा-स्थल के भीतर गूगा जी को चढ़ावा चढ़ाने के बाद मुख्य भक्त सिर पर मोरछल स्पर्श करके आशीर्वाद देता है। पाँच-सात दिन भिक्षाटन करने वाले अन्य भक्त गण भी मेला-स्थल के प्रांगण में अपनी-अपनी 'छड़ी' गाड़ कर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खड़े हो जाते हैं। श्रद्धालुजन उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान देकर 'मोर छल' (मोर पंखों से बना चंवर) से "गूगा ज़ाहर पीर" का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

गूगा के भक्त रात्रि को डमरू लेकर पीर साहब की लोक गाथाएँ मधुर स्वर में गायन करते हुए नाचते हैं। एक आध भक्त तो इतना मस्त हो जाता है कि उसकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। नाचने के समय कई जगह भक्तगण लोहे की साँकलों से बने चंवर से अपने पेट, छाती, पीठ पर प्रहार करके भाव विभोर होकर गाने भी लगते हैं। इन भाव-मुद्राओं को 'खेल' कहा जाता है। कुछ लोगों का मत है कि "गुग्गे" की आत्मा उस भक्त में प्रवेश कर जाती है और उस से तरह-तरह के खेल खिलाती है।[60] हिमाचली 'खेल' का एक विद्वान ने बड़ा विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया है:

"गुग्गा-नवमी की रात्रि को 'भारथ' गायन के बाद 'खेल' होती है। एक गुग्गा भक्त स्वेच्छा अपने को खेल के लिए प्रस्तुत करता है। वह गगेहड़िया (गुग्गा मंदिर) में ज़मीन पर पालथी मार कर बैठ जाता है और आँखें बंद कर देवता का आह्वान करता है। गूगल की धूप जलाई जाती है और एक व्यक्ति खाली घड़े पर थाली रख कर छोटे डंडे से उसे लय-ताल में बजाता है। गायक ढोल और डमरू के साथ 'भारथ' गाते हैं:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बागां रे क्वाड़ा खोल फुल मालणी।
आई चुहाण री जनेत,[61]
रहणां असां बागां च आई।
के:ड़े मुलखां ते[62] तू चली आया,
के:ड़े मुलखां जो तू जाणा।
मारु देसा ते असै चली नें आए.....

'खेल' हिंगरने लगता है, विचित्र हरकतें करता हुआ काँपने लगता है, जिसका आशय यह समझा जाता है कि 'खेल' में देवता का प्रवेश हो गया है। सारे वातावरण में गंभीरता और उत्तेजना फैल जाती है, धूप के धुएँ से लोगों की आँखे अधमुँदी होने लगती हैं। तभी 'खेल' देवता गुग्गा के घोड़े पर सवार हो कर उसी ओर आने की सूचना देता है। यह एक तरह से देवता के आगमन का 'आँखों देखा हाल' जैसा होता है।"[63]

'खेल' करने वाले की भावमुद्राओं से ही जन समूह गूगा पीर की नाराज़गी-खुशी का तथा अपने मंदिर में पहुँचने का अनुमान लगाते रहते हैं। 'खेल' करने वाला गूगा के 'गूर' की भाँति लोगों के रोग-शोक, लाभ-हानि, शुभ-अशुभ विषयक प्रश्नों का उत्तर अपनी विशिष्ट सांकेतिक मुद्राओं द्वारा देता है। देव-आह्वान संबंधी इस धार्मिक स्वांग का नाम ही गूगा पीर के नाम पर 'गुगाहल' पड़ गया है।

हिमाचल प्रदेश के गद्दी जन-जाति के लोग इस पीरोत्सव को 'गुगैहल' कहते हैं और इसे जन्माष्टमी से आठ दिन पहले मनाते हैं। वे गुग्गा को राजस्थान की गढ़यालु रियासत का स्वामी राणा मंडलीक मानते हैं। उसकी बहन का नाम गुगड़ी बताया जाता है। गुग्गे की 'मढ़ी' (पूजा स्थल) से एक छत्र लेकर जुलूसमें अन्य श्रद्धालुओं के साथ एक 'चेला' धूप-दीप उठाए चलता है। 'चेला' कहीं-कहीं काँप कर श्रद्धालुओं को शुभ-अशुभ वचन कहता है, जिसे 'वाक देना' कहा जाता है। गद्दी लोग गूगा को शूरवीर तो मानते हैं, किन्तु उसके बारे में बड़ी रोचक जनश्रुति और लोकाचारों का वर्णन एक विद्वान ने इस प्रकार किया है:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गुग्गा के संबंध में यह भी प्रसिद्ध है कि वह एक दिन बंगाल गया था। उसे वहाँ की स्त्रियों ने मोह लिया, उधर उसकी राजधानी पर शत्रुओं ने आक्रमण किया। उसकी बहन गुगड़ी ने सेना का संचालन किया तथा गुग्गे की खोज की थी। यह छत्र आठ दिन तक ग्राम-ग्राम और घर-घर घुमाया जाता है। जन्माष्टमी के शुभावसर पर आठ दिन माँगकर इसे मढ़ी में पुनः स्थापित कर दिया जाता है। सम्पूर्ण रात्रि को जागरण होता है और पूजन किया जाता है।"[64]

## गूगा जी के पारिवारिक सदस्य : नामांतर

डोगरी भाषा का वारों (Ballads) में सब से लम्बी वीरगाथा का पात्र "गुग्गु" वस्तुतः "गुग्गा पीर" ही है। इसमें बताया गया है कि वह नागों के विरुद्ध लड़ा था। उसने बंगाल की एक राजकुमारी से विवाह किया और एक विधवा की गाय के रक्षा हेतु गज़नी के सुलतान से युद्ध करके विजय प्राप्त की थी।[65] पंजाबी लोकगाथओं में से कुछेक में गूग्गा जी की पत्नी का नाम 'सिरियल' मिलता है और उसे दक्खन (दक्षिण भारत) के राजा संजा की पुत्री बताया जाता है।[66] हरियाणवी लोकगाथाओं में यही 'सिरियल' नाम आता है। किन्तु हिमाचल प्रदेश की लोकगाथओं में उसका नाम 'सुरिहल' कर दिया गया है और उसे कौरू देश के राजा मालप की पुत्री बताया गया है। इन पहाड़ी लोकगाथाओं ने तो गूगा जी की विमाता के अतिरिक्त एक और सौतेली माँ 'आछला' का भी उल्लेख किया है। बाछला, काछला और आछला तीनों परियों को इंद्र के क्रोध के कारण पृथ्वी पर आना पड़ा था। दिल्ली के राजा पथौरी ने शिकार के समय इन लड़कियों को अकेली देख कर बेटियों की तरह पाला और बागड़ देश (मरू-देश) के राजा ज्योरी से इनका विवाह कर दिया था।[67] प्रत्येक लोकगाथा के रचयिता की कृति पर उसकी क्षेत्रीय भाषा के साथ-साथ घटन्ना-विकास में कतिपय अंतर होने के बावजूद कथा-नायक गूगा एक महान योद्धा के रूप में उभर कर ही सामने आते हैं।

एक जनश्रुति के अनुसार शिवालयों के बाहर दीप धरने के लिए दीवारों में आले बने रहते हैं, इन्हें 'खेड़ा' कहा जाता है। पंजाबी भाषा में 'खेड़ा' का अर्थ है 'प्रसन्नता'। पटियाला नगर में आर्य समाज चौक के समीपस्थ शिवालय के सामने ही जन्माष्टमी को 'छड़ी' गाड़ कर गूगा के भक्त डमरू पर हाथ से थाप देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
लोकगाथाएँ सुनाते हैं। हरियाणा में खेड़ा का अर्थ कुछ भिन्न होने पर भी रोहतक ज़िले में एक गाँव का नाम ही 'गूगा खेड़ा' मिलता है। सोलने के समीप एक धर्म-स्थल का नाम ही 'गूगा घाट' (हिमाचल प्रदेश) है। इसी प्रकार भरमौर के प्रसिद्ध मंदिरों और मूर्तियों के निर्माता का नाम भी 'गुग्गा' मिलता है। यह शिल्पी हिमाचल प्रदेश के एक राजा मेरू वर्मन का शिल्पी था।[69] संयोग की बात है कि हिमाचल प्रदेश में "मणि महेष" यात्रा की छड़ी का जुलूस भी 'गूगा नवमी' के समीप ही चलता है।

समूचे उत्तर भारत में प्रसिद्ध इस वीर पुरुष 'गूगा' के "गुग्गा नौम्मी" नामक वार्षिक मेलों के विषय में हरियाणा में यह लोक विश्वास है कि वह हर साल अपनी पत्नी सिरियल को दर्शन देने के वचन की पूर्ति हेतु भाद्रपद बदी नवमी को प्रकट होता है, यथा:

तू मत जिखै गोरी मेरी मैं आऊँगा तेरा लनिहार।
साढ़ न आऊँ, सांमण न आऊँ, आऊँ भादुड़ै मास।
सात्तम न आऊँ, आठम ना आऊँ, आऊँगा नौम्मी की रात।।[70]

उत्तर भारत के मैदानी भाग में शायद ही कोई ऐसा गाँव हो, जहाँ एक दो पीरों के स्मृति न हों। किसी-किसी नगर में तो दस-बीस चौराहों पर भी ऐसे पवित्र स्थान मिल जाएँगे, जिनके नाम औलिया, वली, शेख, सैयद, दरवेश, शाह आदि धार्मिक उपमाओं से जुड़े रहते हैं। उनसे केवल रूढ़िवादी श्रद्धालु ही मन्नतें नहीं माँगते, बल्कि कई बार तो बालकगण भी वर्षा की याचना करते हुए कह उठते हैं:

औलीआ! मौलिआ!! मींह वरसा,
साडी कोट्ठी दाणे पा।
चिड़ीआँ दे मुँह पाणी पा।[71]

## अजमेर शरीफ़ का सालाना उर्स

ख्वाजा मुइन उद्दीन हसन चिश्ती का जन्म 14 रजब, सन् 537 हिजरी (सन् 1117 ईस्वी) में संजरिस्तान में हुआ था। वे सूफ़ी मत के चिश्ती संप्रदाय के प्रमुख


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
धर्म-प्रचारकों में गिने जाते हैं। चिश्ती साहिब बग़दाद तथा इस्लाम के प्रसिद्ध धर्मिक स्थलों, मक्का शरीफ़ एवं मदीना शरीफ़, में सूफ़ी मत का प्रचार करते हुए लगभग 50 वर्ष की अवस्था में भारत में प्रविष्ट हुए। कुछ ही समय बाद वे राजस्थान के अजमेर नगर में बस गए और वहीं पर 6 रजब, सन् 632 हिजरी (सन् 1212 ई.) को उनका देहावसान हुआ। इसी लिए ख्वाजा साहिब का वार्षिक उर्स (उत्सव) रजब के महीने की पहली तारीख से छठी तारीख तक उन की मजार (समाधि) पर बनी दरगाह (पवित्र स्थान) में हर साल मनाया जाता है।

इस्लामी महीनों का निर्धारण शुक्लपक्ष में नवचन्द्र दर्शन से होता है। रजब का आरंभ चंद्रोदय से होता है। अत: उर्स की तारीखें उसी काल-गणना पर निर्धारित की जाती हैं। प्राय: अजमेर शरीफ़ का यह लोकोत्सव नवम्बर अथवा दिसंबर मास में मनाया जाता है। सन् 1995 में यह वार्षिक उर्स 24 नवम्बर से 30 नवंबर तक संपन्न हुआ और इसे 783 वाँ उर्स कहा गया है।

उर्स के आरंभ की सूचना नक्कारों तथा शहनाइयों के मधुर स्वर द्वारा दी जाती है। इस अवसर पर ख्वाजा साहिब की दरगाह में पधारे जायरीन (श्रद्धालु यात्री) गले मिलकर एक दूसरे को उर्स की मुकारबाद देते हैं। दरगाह के समीप 'बड़े पीर की पहाड़ी' नामक स्थल से तोप दाग़कर उर्स शुरू होने की औपचारिक घोषणा भी की जाती है। दरगाह के दीवान की अध्यक्षता में महफ़िल (सभा) के साथ मज़ार शरीफ़ (पवित्र समाधि) को गुसल (स्नान, स्वच्छ) किया जाता है। आस्ताने में फातेहा पढ़ा जाता है और सज्जादा नशीन दरगाह दीवान की दस्तारबंदी (पगड़ी पहनाने) की रस्में पूरी की जाती हैं तथा कुरान-ख्वानी (निरंतर पाठ) भी चलता है।

इस उर्स में भाग लेने के लिए हज़ारों की संख्या में आने वाले हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख तथा अन्य धर्मों के श्रद्धालुजन ख्वाजा साहिब की मज़ार पर चादर चढ़ाते हैं। यह चादर कम-से-कम 25 रुपए की और अधिक-से-अधिक श्रद्धालु की सामर्थ्य परे निर्भर होती है। एक विद्वान के अनुसार चादरों के ओढ़ाने एवं उपयोग का विवरण प्रस्तुत है:

"कहते हैं गत वर्षों में पाकिस्तान के एक व्यापारी ने सोने चाँदी के तारों से निर्मित एक लाख रुपए की चादर ख्वाजा साहिब की मज़ार पर चढ़ाने के लिए



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भेजी थी, जो ख़ादिम पुरानी चादर को दरगाह में चढ़ाई गई। ये चादरें हरी, लाल अथवा सफ़ेद रंग की होती हैं और ख़ादिम की मार्फ़त ही चढ़ती हैं। इनमें से क़ीमती तथा लम्बी-चौड़ी चादरें मज़ार पर बदलने के काम आती हैं तथा चादर पुरानी हो जाने पर ताबीज़ के रूप में या प्रसाद के तौर पर दे दी जाती है। मजार पर जायरीनों द्वारा चादर चढ़ाने की यह प्रथा सिर्फ़ इसी दरगाह पर है। अरब, ईरान, इराक आदि किसी भी बाहरी देश में जायरीनों द्वारा मजार पर चादर नहीं चढ़ाई जाती।"[72]

ख्वाजा साहिब की दरगाह के मुख्य द्वार (बुलंद दरवाज़े) से कुछ दूर दो देगें रखी हुई हैं। इन बड़े-बड़े कड़ाहों को ही 'देग' कहा जाता है। आकार के कारण 'बड़ी देग' कहलाने वाले लोहे के बर्तन में सौ मन चावल एक-साथ पकाया जा सकता है। यह देग सन् 976 हिजरी (सन् 1556 ई.) में मुग़ल बादशाह अकबर ने दरगाह शरीफ़ में भेंट की थी। छोटी देग़ उसके बेटे जहाँगीर ने सन् 1022 हिजरी (सन् 1602 ई.) में भेंट की थी और उसमें एक ही समय में अस्सी मन चावल पकता है।

पंरपरा कें अनुसार उर्स के मौक़े पर छोटी देग ही चढ़ती है। इस संबंध में एक समाचार पत्र में छपा विवरण प्रस्तुत है:

"उर्स के उपलक्ष्य में दरगाह स्थित छोटी देग पकनी प्रांरभ हो गई है। देग पकने का सिलसिला दस दिसंबर (सन् 1995 ई.) तक प्रतिदिन चलेगा। दरगाह कमेटी से प्राप्त जानकारी के अनुसार उर्स के मौक़े पर बड़ी देग नहीं पकती है। इस अवसर पर छोटी देग ही पकती है। मन्नत पूरी होने पर श्रद्धालु ये देगें पकवाते हैं। छोटी देग में पकने वाली सारी सामग्री ग़रीबों में बाँट दी जाती है। 'तबरुक' को बंटवाने का ज़िम्मा खादिमों (सेवकों) की संस्था 'अंजुमन' का है। पिछले साल के मुकाबले इस साल देग-पकाई की लागत में डेढ़ गुना बढ़ोतरी हो गई है। पिछले साल तक देग पकाई में पच्चीस हज़ार रुपए का व्यय होता था, जबकि इस वर्ष यह लागत बढ़कर करीब अड़तीस हज़ार हो गई।"[73]

देग में घी, छुवारे, किशमिश, खोपरे और चावल आदि से बनी खाद्य सामग्री को 'तबरुक' कहा जाता है। श्रद्धालुजन यदि अकेले ही देग पकवाने का खर्च वहन नहीं कर सकते तो वे दरगाह के दफ़्तर में अपनी मन्नत की राशि पेशगी जमा


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कर देते हैं। बाज़ार से ख़रीदी हुई चादरें भी प्राय: मोड़कर और तह लगा कर नहीं लाई जातीं। उनके कोनों को पकड़कर अन्य दर्शकों के ऊपर से फैला कर ही अत्यंत सम्मान के साथ लाया जाता है।

उर्स के अवसर पर सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाएँ अपने प्रसार साधनों का उपयोग करके लोगों का मनोरंजन करती ही हैं। फिर भी इस मौके पर कव्वालियों का रंगारंग कार्यक्रम अत्यंत आकर्षक होता है। दरगाह शरीफ़ के महफिलखाने में प्रत्येक रात्रि को कव्वालों का अखाड़ा जमता है। सब से पहले दरगाह के शाही कव्वालों द्वारा 'शाही चौकी की कव्वाली' पेश की जाती है। तदनंतर आमंत्रित कव्वाल अपना कलाम प्रस्तुत करते हैं। श्रोतागण झूमते हुए "आँखों में लरजते हैं आँसू हर ज़ख्म छुपाए बैठे हैं"; "मोहम्मद या मोहम्मद मेरी झोली भरो" जैसी कव्वालियों के तथा ब्रज बोली की कव्वाली 'मोरो भाग सखी री जागे, ख्वाजा से मोरे नेहा लागे रे" की माँग भी ज़ोर-शोर के साथ करते हैं।

उर्स के छठे दिन 'कुल' की रस्म के साथ समारोह का समापन होता है। इस अवसर पर जायरीन सारी दरगाह की गुलाब जल और केवड़े से धुलाई करते हैं। मज़ार के मुख्य प्रवेश द्वार 'जन्नती दरवाज़ा' (स्वर्ग-द्वार) और झरोखों को साफ़ करना अत्यंत पुण्य का कार्य माना जाता है। अत: इस स्वच्छता अभियान में श्रद्धालुओं में लगी होड़ को देखकर प्रबंधक 'कुल' की रस्म तथा देग पकने के समय में तीन-चार दिन की वृद्धि भी कर देते हैं।

ख्वाजा मुइन उद्दीन हसन चिश्ती को "शहंशाहों के शहंशाह" तथा 'ग़रीब नवाज़' की उपमाएँ भी प्रदान की गई हैं। इसी एक उपमा के आधार पर दिल्ली से अजमेर तक की एक एक्सप्रैस रेल गाड़ी का नाम भी 'ग़रीब नवाज़ एक्सप्रैस' भी रखा गया है। ख्वाजा साहिब की ख्याति और श्रद्धालुओं द्वारा मान्यता का लेख-जोखा एक विद्वान के शब्दों में प्रस्तुत है:

"अजमेर वाले ख्वाजा की तो बात ही कुछ निराली है। एक ओर जहाँ ये दीन-दुखियों पर रहम (दया) करने के कारण "ग़रीब निवाज़" के नाम से जाने जाते हैं, वहाँ बड़े-बड़े हाकिम-हुक्मरानों द्वारा यहाँ आकर शीश झुकाने के कारण "शहंशाहों के शहंशाह" भी कहलाते हैं। मुगल सम्राट अकबर तो आगरा से पैदल चलकर अजमेर आया और ख्वाजा साहिब के दरबार में सिजदा किया। इतना



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं अकबर ने तो अपनी मुराद पूरी होने की खुशी में दरगाह के निकट एक मस्जिद का भी निर्माण करवाया जो 'अकबरी मस्जिद' के नाम से जानी जाती है। अकबर के अलावा सुलतान मोहम्मद गौरी, कुतुबुद्दीन ऐबक, शम्शुद्दीन अल्तमश, जहाँगीर, शाहजहाँ तथा औरंगज़ेब भी ख़्वाजा साहिब के दरबार में सिजदा करने आए थे। शहजादी जहाँ आरा बेगम तो अपने सिर के बालों से ख़्वाजा साहिब की चौखट बुहारा करती थी। आज भी देश-विदेश के अनेक नेता ख़्वाजा साहिब के दरबार में हाज़िर होते हैं और उनकी मजार पर पुष्प एवं चादर चढ़ाते हैं।"[74]

# पाद टिप्पणियाँ

1 मन्मथ राय : हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव, पृष्ठ 25-26।

2 प्रभु दयाल मीतल : ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ट 264।

3 सधवा स्त्रियों के लिए परमावश्यक है कि वे पोत वाले धागे को करवा चौथ का पोंजा मनसने तक धारण किए रहें। मानो अर्थ-निर्णय के आधार पर 'पोत' सधवा के लिए 'जहाज़' के रूप में सदा बढ़ने फूलने की शुभ कामानाओं का प्रतीक हो। 'पोत' का पंजाबी-भाषा में बहुवचन रूप 'पोताँ' है। करवा चौथ तक पोत बिंधे धागे धारण करने में सधवा के सौभाग्य की निरंतरता एवं चार दिन बाद 'झकरी' (अहोई आठैं) के दिन बुढ़िया की पोतों (पौत्रों) संबंधी वृद्धि-कामना एवं दीर्घायु का भाव मिश्रित रहता है।

-श्री मती सरोज बाला कपूर एवं डॉ. नवरत्न कपूर: लोकपर्वीय बाल-किशोर गीत, पृष्ठ 134 (पाद टिप्पणी)।

4 उपर्युक्त, पृष्ठ 135।

5(क) प्रभु दयाल मीतल : ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 262।

(ख) 'टेसू राय' के गीत बालक गाते हैं। इसी अवसर पर बालिकाएँ झाँझी (झैंझी) के गीत गाती हैं। - डॉ. सत्येन्द्र : ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ 297।

6 डॉ. साधु राम शारदा : हरियाणा—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 141।

7 मन्मथ राय : हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव, पृष्ठ 28।

8 डॉ. साधु राम शारदा : हरियाणा के लोकगीत, पृष्ठ 141।

9 देवी शंकर प्रभाकर : हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 115।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10 डॉ. जय नारायण कौशिक : हरियाणवी—हिन्दी कोश पृष्ठ 505।

11 देवी शंकर प्रभाकर : हरियाणा—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 115।

12 डॉ. जय नारायण कौशिक : हरियाणवी—हिन्दी कोश पृष्ठ 505।

13 डॉ. साधु राम शारदा : हरियाणा-एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 75।

14 Kaumudi : Kashmir- Its Cultural Heritage, Page 129.

15 'पीर' के अर्थ हैं: वृद्ध, जरत्, वयोवृद्ध, बूढ़ा; धर्म गुरु, मुर्शिद; सोमवार, दोशंबः। —मुहम्मद मुस्तफ़ा खाँ मद्दाह : उर्दू-हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ 380।

16 Som Nath Dhar : Jammu & Kashmir, — The Land of the People, Page 23.

17 G.M. Rabbani : Ancient Kashmir — A Historical Perspective, Page 53.

18 Som Nath Dhar : Jammu & Kashmir — The Land of the People, Page 23.

19 डॉ जगमल सिंह : राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 167।

20 पूर्णिमा गहलोत : राजस्थान गाता है, पृष्ठ 9।

21 डॉ जगमल सिंह : राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 167।

22 पूर्णिमा गहलोत : राजस्थान गाता है, पृष्ठ 7।

23(क) डॉ. जगमल सिंह : राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 173।

(ख) कई लोग अपने घरों में संगमरमर अथवा जैसलमेर के पीले पत्थर से बने रामदेव जी के चरण, जिसे रामदेव जी के पगलिये भी कहते हैं, स्थापित करते हैं और उन चरणों पर मंदिर के आकार का एक छोटा-सा आला बना कर उनकी पूजा करते हैं। सफ़ेद कपड़े की ध्वजा बना कर उसमें लाल कपड़े से बने चरण लगा दिए जाते हैं। यह रामदेव जी का थान कहलाता है। इसके मंदिरों को 'देवल' तथा 'देवरा' कहा जाता है, जिन पर भी सफ़ेद रंग की ध्वजा फहराई जाती है या पाँच रंगों की ध्वजा फहराई जाती है, जिसे नेजा कहते हैं।

– डॉ. देवदत्त शर्मा : राजस्थान के प्रमुख लोक-देवता, पृष्ठ 10।

24 डॉ. देवदत्त शर्मा : राजस्थान के प्रमुख मेले, पृष्ठ 10।

25 डॉ जगमल सिंह : राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 172।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

26(क) डॉ. देवदत्त शर्मा : राजस्थान के प्रमुख लोक-देवता, पृष्ठ 13।

(ख) G.N. Sharma : Social Life in Medieval Rajasthan (1500-1800 A.D ). Page 227.

27 Dr. Dasrath Sharma : Early Chauhan Dynasties, Page 327-328.

28 मौलू राम ठाकुर : हिमाचल में पूजित देवी-देवता. पृष्ठ 161।

29-30 डॉ. देवदत्त शर्मा : राजस्थान के प्रमुख लोक-देवता, पृष्ठ 13।

31-32 डॉ. सत्येन्द्र : जाहर पीर गुरु गुग्गा, पृष्ठ 3।

33 डॉ. देवदत्त शर्मा : राजस्थान के प्रमुख लोक-देवता, पृष्ठ 15-16।

34 डॉ जगमल सिंह : राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 168।

35 मौलू राम ठाकुर : हिमाचल में पूजित देवी-देवता, पृष्ठ 161।

36 राजा राम शास्त्री : हरियाणा के लोक गीत, पृष्ठ 43-44।

37 डॉ. देवदत्त शर्मा : राजस्थान के लोक-देवता, पृष्ठ 16।

38 G.N. Sharma : Social Life in Medieval Rajasthan (1500-1800 A.D.), Page 227.

39 मौलू राम ठाकुर : हिमाचल में पूजित देवी-देवता, पृष्ठ 158।

40 डॉ. साधु राम शारदा (स.) : हरियाणा-एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 285।

41 मौलू राम ठाकुर : हिमाचल में पूजित देवी-देवता, पृष्ठ 162-163।

42 डॉ. देवदत्त शर्मा : राजस्थान के लोक-देवता, पृष्ठ 12-13।

43 दिनेशचन्द्र शुक्ल : राजस्थान के प्रमुख संत, पृष्ठ 3-4।

44 डॉ जगमल सिंह : राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 169।

45 राजस्थान पत्रिका, 2 दिसंबर, 1996 (विजय लक्ष्मी पुरोहित: कितने मोहक होते हैं ये देव-प्रतीक), पृष्ठ एक (थावर अंक)।

46 डॉ. देवदत्त शर्मा : राजस्थान के लोक-देवता, पृष्ठ 12-14।

47 डॉ. देवीदत्त शर्मा : राजस्थान के प्रमुख मेले, पृष्ठ 33।

48 डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल : राजस्थानी लोकगीत, पृष्ठ 88।

49 डॉ. साधु राम शारदा : हरियाणा—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 285।

50 मक्की के भुट्टे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

51 मेरा गुग्गा (गोगा जी) आंगन में कूदता है।

52 कटोरा।

53 आंगन में दंड-बैठक (कसरत) करना।

54(क) गोगा (गुग्गा) जी आपके बलिहारी हैं।

(ख) Dr. Sher Singh "Sher" : Sikligars of The Panjab, Page 377.

55 डॉ. साधु राम शारदा (सं.) : हरियाणा के लोकगीत, पृष्ठ 327।

56 डॉ. साधु राम शारदा (सं.) : हरियाणा—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 139।

57 जन साहित्त (मेला विशेषांक), वर्ष 30, अंक 5; अप्रैल-मई 1989 (गिआनी गुरदित्त सिंघ : मेले ते तिउहार), पृष्ठ 17।

58 यदि अगले वर्ष तक जीवित रहे तो सौ बार हमारी आपस में भेंट-मुलाक़ात होगी। मृत्यु को प्राप्त हो गए तो ईश्वरेच्छा।

59 एन.डी.पुराहित : हिमाचली लोकरंग, पृष्ठ 126।

60 डॉ. साधु राम शारदा (सं.) : हरियाणा—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 285।

61 बारात।

62 किन मुल्क़ों (देशों) से।

63 एन.डी.पुरोहित : हिमाचली लोकरंग, पृष्ठ 126-127।

64 शरण : हिमाचल की धार्मिक परंपरा, पृष्ठ 48।

65 Som Nath Dhar : Jammu & Kashmir : The Land of the People, Page 104.

66 Dr. Sher Singh 'Sher' : Sikligars of the Panjab, Page 327

67 मौलू राम ठाकुर : हिमाचल में पूजित देवी-देवता, पृष्ठ 161।

68(क) वह ऊँची कंकरीली भूमि, जहाँ कभी कोई गाँव बसा हुआ था।

(ख) उजड़े हुए गाँव के ढेर पर बसा हुआ गाँव;

(ग) छोटा गाँव, किसी मुख्य गाँव के साथ बसा छोटा गाँव।

-डॉ. जय नारायण कौशिक : हरियाणवी-हिंदी कोश, पृष्ठ 150।

69 डॉ. बी.एल. कपूर : हिमाचल—इतिहास और परम्परा, पृष्ठ 93।

70 राजा राम शास्त्री : हरियाणा के लोकगीत, पृष्ठ 44।

71 हे मस्त स्वभाव के साधु पुरुष! वर्षा कर दो ताकि हमारे भंडार अन्न के दानों से भर जाएँ और चिड़ियों जैसे पक्षियों को भी पीने के लिए पानी मिल जाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

72 डॉ. देवदत्त शर्मा : राजस्थान के प्रमुख मेले, पृष्ठ 35-36।

73 राजस्थान पत्रिका, 25 नवंबर, 1995।

74 डॉ. देवदत्त शर्मा : राजस्थान के प्रमुख मेले पृष्ठ 35।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# देशव्यापी पर्वोत्सव और उत्तर भारतीय लोकाचार

## भूमिका

भारत के चार पर्व ऐसे हैं, जिनका शुभारंभ वर्ण-व्यवस्था से जोड़ने की प्रथा रही है; फिर भी इनके राष्ट्रीय महत्त्व को आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। पारंपरिक रूप में "रक्षा बंधन" का संबंध ब्राह्मणों से जोड़ा जाता है, क्योंकि उस दिन उपाकर्म के साथ ही वेदों के अध्ययन का सिलसिला शुरू होता था। इसी प्रकार अश्व-पूजा एवं शस्त्र-पूजन की महिमा के आधार पर "विजयादशमी" को क्षत्रियों का त्योहार कहा जाता है। लक्ष्मी-पूजन की प्रधानता होने के कारण 'दीपावली' को 'वैश्यों' का पर्व कहने की प्रथा है। गुलाल और रंगों के उन्मुक्त वातावरण वाले त्योहार "होली" को शुद्र-वर्ण के बट्टे-खाते डाल कर इन चारों को वर्ण-गत त्योहार बताने की प्राचीन परंपरा रही है। किन्तु ये सीमाएँ धीरे-धीरे लुप्त होती आ रही हैं। किसी भी व्यक्ति को वर्ण या जाति के आधार पर केवल एक ही त्योहार से बंधे रहने का कोई भारी अंकुश शायद कदापि नहीं रहा है। प्रत्येक त्योहार के प्रति भारत के सभी लोगों के मन में समान आदर रहा है और इस विशाल देश का मानव हृदय संघटित समाज के किसी भी अंग-विशेष के कार्य को सदैव सामुदायिक गरिमा प्रदान करता रहा है। एतदर्थ यह मधुर श्लोक दृष्टव्य है।

"ब्राह्मणै: क्षत्रियैर्वैश्यै: शूद्रैरन्यैश्च मानवै:
कर्तव्य रक्षिताचारो द्विजान संपूज्य शक्तित:।। {निर्णय सिंधु}

मूलत: ब्राह्मणों का त्योहार कहलाने वाले "रक्षा बंधन" के विषय में कही गई यह सूक्ति चारों वर्णों को भीड़ के समय एक दूसरे के रक्षा हेतु तत्पर करके समूचे देश को एकसूत्र में जोड़ने का आप्त वाक्य है।

## रक्षा बंधन :

यह पर्व श्रावण मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। कहते हैं कि बारह वर्ष तक युद्ध करके दैत्यों के राजा ने सभी देवताओं को जीत लिया था। दैत्यराज की आज्ञा से सभी यज्ञ क्रियाएँ बंद हो गईं तथा इन्द्र देव को भी अपने राज्य की रक्षा की चिंता हो गई। तब सावन मास की पूनो के दिन गुरु वृहस्पति ने


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रात:काल में यह मंत्र पढ़कर रक्षा का विधान किया था :

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबल:।
तेन मन्त्रेण बध्नामि रक्षे मा चल मा चल।।

इसके बाद इंद्राणी ने मंगलाचार करके अपने पतिदेव राजा इन्द्र के हाथ पर रक्षा की पोटली बाँधी। यही मंत्र पढ़कर ब्राह्मण लोग अपने यजमान की कलाई पर मौली का धागा अथवा राखी बाँधते हैं। जिस प्रकार इन्द्राणी के रक्षा-सूत्र से देवराज इन्द्र ने शक्ति प्राप्त करके दैत्यों के राजा को वश में कर लिया था और समस्त सृष्टि की रक्षा की थी, वही भाव कुल पुरोहित के स्नेह-सूत्र में निहित है। किन्तु समय के साथ राखी बाँधने का कार्य केवल बहन या ब्राह्मण तक ही सीमित रखा गया है। अब पत्नी को ऐसा अधिकार नहीं रहा है। एक विद्वान ने इसके कारण का विश्लेषण करते हुए लिखा है :

"आजकल बहनों द्वारा भी रक्षा बंधन होता है.....रक्षा बंधन की कथा में इन्द्र को वृहस्पति और इन्द्राणी दोनों ने रक्षा बाँधी, ऐसा उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा भी रक्षा बंधन होना चाहिए। बाद में शायद लोगों ने यह सोचा कि अपनी स्त्री को दक्षिणा तो दी नहीं जा सकती, इसलिए दया की मूर्ति और दानपात्र सौभाग्यवती बहन द्वारा राखी बँधवाई जाए और दक्षिणा आदि से संतुष्ट करके शुभाशीर्वाद लिया जाए। लौकिक दृष्टि से यह उचित भी प्रतीत होता है।"[1]

मध्यकाल में चित्तौड़ की रानी कर्मवती ने अपने राज्य पर उमड़ने वाले संकट के बादलों को देखकर मुग़ल बादशाह हुमायूँ को राखी भेजकर अपना भाई बना लिया था। सम्राट् हुमायूँ ने उसके स्नेह सूत्र का सम्मान करते हुए चित्तौड़ राज्य की रक्षा की। तभी से रक्षा सूत्र बाँधकर अपरिचित व्यक्ति से भी सगे भाई की तरह भाई-बहन का परस्पर संबंध जोड़ने की घटनाएँ चल रही हैं।

## लोकपर्वीय रूप

आज उत्तर भारत में "रक्षा-बंधन" और उसके अपभ्रंश रूप "राखी" के अतिरिक्त 'श्रावणी' नाम भी प्रचलित है। 'श्रावणी' शब्द संभवत: श्रावण मास की समाप्ति का सूचक है। आम बोलचाल में 'सलूनों' शब्द भी खूब चलता है, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि 'सलोना' (स+लावण्य = लावण्ययुक्त = सुंदर) का ही परिवर्तित रूप है। भगवान कृष्ण के लिए 'श्याम-सलोना' का प्रयोग कई कवियों ने किया है। इस लोकपर्व के लिए हरियाणा में कहीं-कहीं 'सलोमण' शब्द का प्रयोग भी होता है।

वस्तुत: नए-नए रंग-बिरंगे वस्त्रों से सजे भाई की कलाई पर बँधी बहन की राखी उस पुरुष अथवा बालक को 'सलोना' कहलाने में कोई कसर बाक़ी नहीं छोड़ती।

आजीविका के नए साधनों की लालसा के कारण बहुत-से ब्राह्मण भी अब पुराने कर्म-काण्ड की वृत्ति को छोड़ते जा रहे हैं। नव जागरण के कारण लोग भी प्राचीन विधि-विधान को तिलांजलि देने पर तुल जाते हैं। अत: पुराने रीति-रिवाज के स्थान पर त्योहार मनाने के सरल और घरेलू साधन निकल आते हैं। यही प्रवृत्तियाँ किसी भी पर्व में नित्य नए लोक तत्त्व-संग्रह के लिए जन-मन को प्रेरित करती है।

## मांगलिक भित्ति चित्र : निर्माण एवं पूजन।

पंजाब और हरियाणा में रक्षा बंधन के दिन गृह-स्वामिनी प्रात: ही स्नान करने के बाद घर के मुख्य द्वार पर शकुन सूचक चिह्न अंकित करती है। हरियाणा में ऐसे भित्ति चित्र को 'सोण' कहा जाता है। मुख्य द्वार के बीच में चार-छह इंच वर्गाकार या आयताकार स्थान और बाईं दीवार के लगभग मध्य भाग को गाय के गोबर से पोत लिया जाता है। गोबर वाली जगह के सूख जाने पर हलदी, सफ़ेदी या गेरु से नागरी अथवा महाजनी लिपि में राम-राम अक्षर लिखे जाते हैं। कुछ लोग एक ही पंक्ति में पाँच-सात बार राम-राम अंकित करके ऊपर नीचे पाँच या सात पंक्तियाँ एक ही आकार की सजा लेते हैं। कुछ महिलाएँ अर्द्ध चंद्राकार में पाँच जगह राम-राम शब्द लिख देती हैं। तदनंतर मौली का एक छोटा-सा टुकड़ा उस पर लटका दिया जाता है, जो कि रक्षा-सूत्र का द्योतक होता है। हरियाणवी भाषा में ऐसे भित्ति चित्र को ही 'सोण' कहा जाता है।[2]

पंजाब में इस दिन सवैइयाँ बना कर भित्ति चित्र की पूजा की जाती है। दूध में उबली मीठा मिली सवैइयों का कुछ अंश भी पूजा-स्थल पर लगा दिया जाता है। वर्षा ऋतु में नाग-पूजा का माहात्म्य है और लंबी सफ़ेद सवैइयाँ उसी

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को द्योतित करती हैं। हरियाणा में भी इसी तरह कोई न कोई मिष्टान्न तैयार करके भित्ति (प्राचीर) चित्र का पूजन होता है, जिसे हरियाणवी लोग 'सोण मणाणा' अथवा 'सिलोणी पूजणा' कहते हैं। इस पूजन के बाद ही बहन अपने भाई के मस्तक पर टीका काढ़कर उसकी झोली में मिठाई और फल भेंट करती है तथा राखी बाँधती है। बहन के आशीर्वाद के उपलक्ष्य में भाई भी बहन को श्रद्धानुसार धन-राशि अर्पित करता है।

सिक्ख समाज में बहन से कलाई पर राखी बँधवाने का रिवाज तो है, अन्य कोई विधि-विधान नहीं अपनाया जाता। पंजाब के गुरदासपुर ज़िले के 'बाबा बकाला' नामक कस्बे के प्रसिद्ध सिक्ख गुरुद्वारे में हर वर्ष रक्षा बंधन के दिन एक मेला लगता है। यह 'रक्खड़ पुन्निआँ मेले' के नाम से प्रसिद्ध है। अपनी कलाइयों पर राखियाँ सजाए श्रद्धालु हिन्दू और सिक्ख गुरुद्वारा साहिब के दर्शन करते हैं और मेले की चहल-पहल भी देखते हैं। कई निहंग सिंघ (सिक्ख) तो अपने घोड़े की लगाम या गले में तथा अपनी तलवार के मुट्ठे में एक 'राखी सजा कर वहाँ पधारते हैं।

## जम्मू-काश्मीर में रक्षा बंधन : अमरनाथ यात्रा

भारत के अन्य भागों की तरह जम्मू-काश्मीर में भी इस पर्व के 'रक्षा बंधन' और 'राखी' दोनों नाम प्रचलित हैं। बहुत से लोग इस दिन बहन से राखी का स्नेह-सूत्र बँधवाते हैं। किन्तु इस सारे क्षेत्र में शिव मंदिरों में पहुँचकर भोले बाबा की पूजा का विशेष विधान है। श्रीनगर के लोग डल झील के ऊपर शंकराचार्य मंदिर में पूजा-अर्चना के लिए पहुँचते हैं। श्रावण पूर्णिमा के दिन अमरनाथ गुफ़ा में शिवलिंग के दर्शनार्थ तो संपूर्ण भारत के श्रद्धालु जन उमड़ पड़ते हैं।

अमरनाथ मंदिर हिमालय पर्वत श्रृंखला में 12, 729 फुट ऊँची गुफ़ा में स्थित है। इसके नीचे अमरावती नदी बहती है। गुफ़ा का व्यास लगभग 150 फुट है। जुलाई-अगस्त के अतिरिक्त इस गुफ़ा तक पहुँचना एकदम असंभव होता है। अतः अमरनाथ यात्रा का सुअवसर शिव-भक्तों को केवल ढाई-तीन सप्ताह के लिए जुलाई-अगस्त में ही मिलता है। उन दिनों एक बड़ी चामत्कारिक घटना होती है। गुफ़ा की चोटी से बड़ी मद्धम ध्वनि में कुछ रुक-रुक कर पानी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-एक बूँद नीचे टपकती है और वह जमकर बर्फ़ बन जाती है। धीरे-धीरे बर्फ़ का एक ठोस आधार बन जाने पर उसी बर्फ़ से पानी की बूँदों के टपकने के साथ-साथ लिंग आकार की एक मूर्ति स्वत: उभरने लगती है, जो कि श्रावणी पूर्णिमा के दिन संपूर्ण हो जाती है। चंद्रमा की कलाओं के बढ़ने के साथ-साथ शिव-लिंग के उद्‌भव और विकास का यह दृश्य वस्तुत: बड़ा विचित्र होता है।

ऐसा लोक विश्वास है कि श्रावणी पूर्णिमा के शुभ पर्व पर ही भगवान शिव ने अपनी सुयोग्य धर्मपत्नी पार्वती जी को 'जीवों के रहस्यों' से परिचित करवाया था। जिस समय भगवान शिव और माता पार्वती का वार्तालाप हो रहा था, उस समय कबूतरों का एक जोड़ा वहाँ आया और चुपके से उनका दार्शनिक संवाद सुनता रहा। प्रत्यक्षदर्शियों का कथन है कि आज भी दो कबूतर अमरनाथ यात्रा के दिनों में गुफ़ा में आते हैं, जिन्हें वे शिव एवं पार्वती का अवतार मानते हैं।

श्रावण शुक्ला द्वादशी के दिन शुभ मुहूर्त में श्रीनगर के दशनामी अखाड़ा के मंदिर से एक शोभायात्रा आरंभ होती है। इस मंदिर में विधिवत् पूजा-अर्चना के पश्चात् अखाड़े का महंत चाँदी का बना और रंग-बिरंगे झंडों से सजा एक त्रिशूल कंधे पर उठाकर यात्रियों का नेतृत्व करता है, जिसे 'छड़ी मुबारक' कहा जाता है। भक्तजन यात्री भी मंदिर के आस-पास सजे बाज़ार से एक-एक मज़बूत छड़ी ले लेते हैं, जिसके महत्त्व के विषय में एक विद्वान ने लिखा है :

"पूजा के बाद यात्री चलाने के लिए एक छड़ी (Walking stick) प्राप्त कर लेता है। इसका शारीरिक महत्त्व भी है और धार्मिक भी। शारीरिक तौर पर (Physically) यह यात्री को फिसलाने वाले बर्फ़ीले रास्ते पर चलने में सहायता देती है और आध्यात्मिक दृष्टि से (Spiritually) यह कठिन एवं लंबी यात्रा के दौरान उसके डगमगाते साहस को हर पग पर उभारती हुई उसके मंदिर तक पहुँचने के उस दृढ़ निश्चय का स्मरण करवाती है। (जिसे वह अपने घर से लेकर चला था)।"[3]

यात्रियों का पहला पड़ाव पहलगाम में होता है। वहाँ से लोग लगभग 45 किलोमीटर दूर तक की यात्रा करके पवित्र गुफ़ा में पहुँचते हैं। वहाँ से वे चंदनवाड़ी में कुछ समय टिकते हैं और तदनंतर पिशुघाट होकर शेषनाग के किनारे एक रात विश्राम करते हैं। अगली सुबह वे शेषनाग झील में स्नान करते


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, जिसका नाम सात सिरों वाले साँप पर पड़ा हुआ माना जाता है। इसका भव्य दृश्य एक विद्वान ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

"झील को घेरे हुए जो पहाड़ है, उसका यह नाम उन सात चोटियों (Peaks) के कारण पड़ा है, जो कि मिथकीय सर्प (Mythical Snake) के सिरों से साम्य रखती हैं। प्रेम और प्रतिशोध संबंधी अनेक गाथाएँ इस झील से जुड़ी हुई हैं। शिव भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि उन्हें झील के मध्य में पवित्र नाग के दर्शन होते हैं। गहरे नीले पानी में इर्द-गिर्द के पहाड़ों की पड़ती परछाईं बड़े विचित्र रूप धारण करती है। अत: आश्चर्य नहीं कि झील में प्रागैतिहासिक साँप की विद्यमानता के विषय में अनेक घटनाएँ प्रचलित हो गई हों।"... शेषनाग झील पहलगाम से 27 किलोमीटर दूर उत्तर दिशा में है....यह झील साल में लगभग 9 महीने जमी रहती है और गर्मी में बर्फ़ पिघलने पर इसके जल का तापमान प्राय: 12 डिग्री सेल्सियस से अधिक नहीं बढ़ता।"[4]

शेषनाग झील से चलकर "छड़ी मुबारक" के पीछे-पीछे चलने वाले यात्री अगला पड़ाव 'पंचतरणी' नामक स्थान पर करते हैं। पाँच पवित्र नदियों के संगम के कारण इस स्थान का यह नाम पड़ा है। अगली सुबह यह शोभा यात्रा प्रात: ही अमरनाथ गुफ़ा में पहुँच जाती है और रक्षा-बंधन के दिन शिव भक्त स्वयंभू शिवलिंग के दर्शन कर सारी थकान भूल जाते हैं तथा अपने आप को कृतार्थ समझते हैं। साधु एवं भक्तजन भजन और आरती के बाद "जय शिव शंभु...जय जय महादेव" के नारों से आकाश तक को गुंजायमान कर देते हैं। भगवान शिव की हिम-लिंग प्रतिमा की पूजा-आराधना का विधि-विधान भी आध-पौन घंटे में संपन्न हो जाता है।

इस प्रकार श्रावणी पूर्णिमा का उत्सव सुरम्य पहाड़ियों में व्यतीत करके, भोले बाबा को अपनी भेंट अर्पित करके तथा प्रसाद प्राप्त करके लगभग 50-52 घंटों में पैदल यात्री श्रद्धालु श्रीनगर पहुँचते हैं। इस काफ़िले के निर्माण, यात्रा के कष्टों और सुख-सुविधाओं का उल्लेख एक विदुषी ने इस प्रकार किया है :

"यात्रा की कठिनाइयाँ - ढलवान चट्टानों एवं तंग रास्तों की चढ़ाई, ठठुराने वाली ठंडी हवाएँ, अचानक आने वाले बर्फ़ानी तूफ़ान और भू-स्खलन तथा मार्ग में निरंतर पड़ने वाले ग्लेसियरों के समूह लोगों को प्रेरित करते हैं कि वे एक


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफ़िले (Caravan) के रूप में यात्रा करें। युवा और प्रौढ़ स्त्री-पुरुष ढलवान चढ़ाई पर धीरे-धीरे पैदल चढ़ते हैं, जबकि यात्रा के अंतिम छोर पर बच्चों और अपंग लोगों के लिए टट्टू और घोड़े चढ़ाई हेतु भाड़े पर ले लिए जाते हैं। यात्रियों की सभी प्रकार की सुख-सुविधा के प्रबंध राज्य सरकार की ओर से होते हैं। थोड़ी-थोड़ी दूर पर यात्रियों की सुविधा के लिए अस्थायी तौर पर छते हुए विश्राम स्थल एवं दुकानें तथा तंबू लगा दिए जाते हैं ताकि वे मौसमी आपदाओं से बच सकें।"[5]

अमरनाथ यात्रा के महत्त्व का गुणगान कल्हण रचित "राजतरंगिनी", काश्मीर के इतिहास एवं परंपराओं विषयक एक प्राचीन ग्रंथ "नीलमत पुराण" में भी हुआ है। जनश्रुति है कि वेदों का कुछ भाग तथा बौद्धों के त्रिपिटक यहीं पर रचे और संकलित हुए थे। नौवीं शताब्दी ईस्वी में श्री शंकराचार्य ने अमरनाथ की यात्रा की थी। मुस्लिम शासक जेन-उल-अबदीन ने भी इस पवित्र गुफ़ा की यात्रा करके हिन्दुओं का दिल जीत लिया था। आधुनिक युग के महान धर्म प्रचारक स्वामी विवेकानंद भी यहाँ पर दर्शनार्थ पधारे थे।[6]

काश्मीरवासियों का विश्वास है कि यदि कोई व्यक्ति किसी कारणवश अमरनाथ मंदिर की यात्रा न कर पाए तो उसे उतना ही पुण्य "थजिवर गुफ़ा" की यात्रा करने से प्राप्त हो सकता है। ऐसे लोगों को यह यात्रा जीवन में तीन बार अवश्य करनी चाहिए। "थजिवर गुफ़ा" बिजीबरारा क़स्बे से तीन किलोमीटर दूर है और वहाँ पर शिवलिंग से युक्त शिवालय है।

पूरे उत्तर भारत में रक्षा-बंधन के अवसर पर 'संस्कृत दिवस' भी मनाया जाता है। यह संस्कृत के श्लोकोच्चारण, संस्कृत साहित्य विषयक संगाष्ठियों, नाटक एवं भाषण प्रतियोगिताओं पर आधारित होता है।

## राजस्थान की "राखी" एवं "ऋषिपंचमी"

### (क) राखी

चित्तौड़ की रानी कर्मवती ने मुग़ल बादशाह हुमायूँ को राखी भेजकर भाई बना लिया था और इस प्रकार अपने राज्य की रक्षा की थी। यह कथा लोक-प्रसिद्ध है। आज से छह सौ वर्ष पूर्व (संवत् 1444) राजस्थान के सुवाप


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक गाँव में करणी जो नामक कन्या का जन्म हुआ था। उनके चमत्कार-दर्शन के लिए पूगल का राजा राव शेखा सुवाप पहुँचा और करणी जी के आशीर्वाद से शत्रु पर विजय प्राप्त की। इस करामात से प्रभावित होकर राव शेखा ने करणी जी से राखी बँधवा कर उन्हें अपनी बहन बना लिया था।

झुंझुनूँ ज़िले का "चिड़ासण" गाँव सन् 1293-94 में बसाया गया था। कहते हैं कि इसके दक्षिण में बसे लायल गाँव के काजला गोत्र के जाट ने अपनी बेटी चिड़िया को विवाह के बाद इस गाँव में बसा दिया था। शाादी के बाद जब पहला रक्षाबंधन पर्व आया तो चिड़िया ने अपने भाइयों की कलाई पर राखी बाँधी। इन रक्षा सूत्रों की भेंट के उपलक्ष्य में भाइयों ने लायल गाँव की एक तिहाई ज़मीन बहन को अर्पण कर दी। पुरानी माप के हिसाब से भूमि तीन हज़ार कच्चा बीघा होती थी। तभी से गाँव का नाम 'चिड़ासण' पड़ गया।

राजस्थान के जाट, राजपूत, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जाति के लोगों में से अधिकांश 'श्रावणी पूर्णिमा' को ही रक्षा बंधन का पर्व मनाते हैं। बहनें भाई-भाभी की आरती उतारती हैं और भाई के तिलक लगाकर राखी बाँधती हैं। भाई भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार बहन को धन-राशि अथवा अन्य उपहार भेंट करता है।

## (ख) ऋषि पंचमी :

राजस्थान के माहेश्वरी वैश्य और कायस्थ परिवार "राखी" का उत्सव भादों के शुक्ल पक्ष की पंचमी को मनाते हैं। राजस्थान में इसे "भादव पंचमी" या "ऋषि पंचमी" और "राखी" भी कहा जाता है। यह उत्सव श्रावण मास की पूर्णिमा से बीस दिन बाद मनाया जाता है। इस दिन परिवार की सब से बड़ी महिला दीवार पर चूने से "राम-राम" अथवा भगवान के पाँच-सात नाम लिख कर उसकी पूजा करती है, जिसे लोक भाषा में "सरवण पूजना" कहा जाता है। संभवत: इस पूजा से बहन ऐसे भाई की कामना करती है जो कि श्रवण कुमार की भाँति माता-पिता का आज्ञाकारी पुत्र हो। सभी बहनें उस दिन केवल एक समय भोजन करती हैं। भोजन शाकाहारी ही होता है अथवा केवल चावलों का ही सेवन किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाहिता बहन के घर पर भाई और भाभी के पहुँच जाने पर बहन भाभी को रोली का टीका तथा भाभी को बिंदी लगाती है। थाली में सजाए दीपकों से उन पाहुनों का "आरता उतारा" जाता है। फिर भाई को नारियल भेंट किया जाता है तथा भाभी को मिठाई खिलाई जाती है। मिठाई का टुकड़ा आगन्तुकों के मुँह में डालना आवश्यक होता है। अत: इसे "मुँह उठाई" (मुँह जुठाई) कहा जाता है। इसके बदले में भाई की ओर से बहन को धन-राशि, वस्त्राभूषण एवं मिष्टान्न भेंट किए जाते हैं। शादी के बाद जब पहला रक्षा बंधन आता है तो यदि बहन मायके न जा सके अथवा भाई भी बहन के ससुराल पहुँचने में असमर्थ हो तो बहन अपने सामर्थ्यानुसार सोने या चाँदी की पतली-सी तार की राखी भेज देती है। फिर भाई से भेंट होने पर अथवा डाक से उसे धन-राशि प्राप्त हो जाती है।

कुछ परिवारों में "सरवण-पूजना" के पश्चात् गृह-स्वामिनी एक लोक कथा भी सुनाती है, जो इस प्रकार है :

एक बहन थी बहुत पैसे वाली। भाई बहुत ग़रीब था। वह बहन से राखी बँधवाने उसके ससुराल जाता है। थोड़ी दूर जाने पर उसे शेर मिलता है और उसे खाने को दौड़ता है। ग़रीब भाई राखी बँधवा कर लौटने का वचन देता है। आगे चलकर गंगा नदी, फिर डूँगर (पहाड़) और साँप उसे क्रमश: डुबोने, रोकने तथा काटने की कोशिश करते हैं। किन्तु भाई सभी को वचन देता है कि बहन राखी के दिन प्रतीक्षा कर रही होगी, न पहुँचने पर उसका दिल टूट जाएगा। राखी बंधवा कर लौटने पर आप अपनी मनसा पूरी कर लेना।

इस प्रकार सभी से पिंड छुड़वा कर भाई अपनी प्यारी बहन के दरवाज़े पर पहुँचा। बहन चर्खा कात रही थी कि अचानक उसकी पूणी का तार टूट गया। भाई बार-बार द्वार पर दस्तक देता है, किन्तु बहन तार जोड़ने में मस्त रहती है। वह उठकर दरवाज़ा नहीं खोलती। भाई ने मन में सोचा कि माँ ने ठीक ही कहा था कि अब तो "तेरी बहन पैसे वाली है !" यह विचार मन में आते ही वह उलटे पैरों लौट पड़ा।

बहन ने उठकर किवाड़ खोले तो देखा भाई वापस मायके की ओर सरपट भाग रहा है। वह दौड़कर भाई को ये शब्द कहकर लौटा लाई कि "तार टूटने के समय स्त्री को नहीं उठना चाहिए, उसे तो तार जोड़कर ही उठना चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई बहन की बेबसी और बुद्धिमत्ता पर मन-ही-मन मुस्कराकर उसके ससुराल में लौट आया। बहन भोली भाली थी, वह अतिथि-सत्कार से अपरिचित थी। अत: उसने पड़ोसिन से पूछा "मेरा पिआरा पावना (पाहुना=मेहमान) आवै" तो क्या करते हैं ? उसने हँसी में कहा — "घी में चावल राँध (पका) ले और तेल का चौका दे दे।"

भोली बहन ने वैसा ही किया। घी डालने से चावल पके नहीं और भाई के स्वागत में तेल से लीपा हुआ आंगन का चित्रांकन सूख नहीं पाया। उसने फिर पड़ोसिन से कहा कि घी में चावल सीजे (गले) नहीं और तेल का "चौका" अनेक प्रयास करने पर भी सूख नहीं पाया। तब पड़ोसिन ने सही बात बताई कि पाणी (पानी) में चावल राँध और उसी से चौका दे। चावल पक जाने पर चौके के पास बैठा कर भाई को घी और बूरे वाले चावल 'जमा' (खिला) दे। इस प्रकार बहन ने भाई का स्वागत-सत्कार किया।

अगले दिन छठ (भादव सुदि पष्ठी) थी। भाई ने चलते समय बहन को उन सभी बाधाओं के बारे में बताया, जो कि उसने रास्ते में झेली थीं। बहन गट्टी (चक्की) पीसने में व्यस्त थी। उसने आटा पीसकर लड्डू बनाए और भाई को साथ ले जाने के लिए चार लड्डू दे दिए। भाई विदा हो गया तो बहन के बच्चे उठ खड़े और "लाडू" (लड्डू) खाने की जिद्द करने लगे। बच्चों ने एक लड्डू तोड़ा तो उसमें मरे हुए साँप के टुकड़े दिखाई पड़े। यह सुनते ही बहन बेतहाशा बावलियों की तरह भाई के पीछे दौड़ पड़ी।

थोड़ी दूर जाने पर उसने देखा कि भाई एक नीम के पेड़ के नीचे लेटा है। वह समझी कि भाई ज़हरीले लड्डू खा कर परलोक सिधार गया है। फिर भी उसने दिल मज़बूत करके भाई को हिलाया। वह "सूता था" (सो रहा था), तुरंत जग गया। बहन ने लड्डुओं के बारे में पूछा तो उसने कहा - "सामने वाले पेड़ पर टँगे हैं।" बहन की जान में जान आई और उसने ज़मीन खोदकर लड्डू उसमें गाड़ दिए। डरी हुई ने अब भाई के साथ मायके चलने का आग्रह किया। भाई ने फिर वही शेर, गंगा, डूँगर और साँप को 'वाचा' देने वाली "राम कहानी" सुना दी। अत: बहन ने भाई की रक्षा का मन बनाकर सभी से निपटने का निश्चय जताया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रास्ते में एक बाज़ार पड़ा तो बहन ने साँप के लिए दूध से भरा कटोरा, गंगा जी के लिए 'वेश' (वस्त्र), डूँगर (पहाड़) के लिए पाँच पचेटे (पाँच फल) और शेर के लिए पूला खरीद लिया। जब जो भी मिला, उसे मनचाही वस्तु भेंट करके बहन ने भाई को बचा लिया। कुछ दूर जाने पर बहन को प्यास लगी। भाई दूर-दूर तक भटका पर पानी न मिला। आखिर बहन पानी की तलाश में डूँगर पर चढ़ गई तो क्या देखती है कि "बे-माता" (विधि माता) ढकनी गढ़ (घड़) रही है। बहन ने कहा - "माँ जी ! राम-राम ! ! यह ढकनी किसके लिए गढ़ रही हो।"

बे-माता ने कहा "रोलू राम के लड़के के लिए।"

बहन रोलू का नाम सुनते ही भयभीत हो गई, क्योंकि वे उसके पिता थे। भाई पर आने वाली मुसीबत की कल्पना से वह पानी पीना तो भूल ही गई और मानो उसके प्राण सूख गए। फिर उसने साहस बटोर कर भाई की प्राण-रक्षा का उपाय विधि-माता से पूछ ही लिया। उत्तर में बे-माता ने कहा — "तू मायके में पहुँचने तक भाई को गालियाँ बकना, धोबिन को सहेली बनाकर उसके घर का सारा काम करना, तभी तुम्हारे भाई की उम्र लंबी होगी।"

बहन ने बे-माता का आदेश मानकर वहीं से भाई को गालियाँ देना शुरू कर दिया। माँ ने अपने बेटे को गालियाँ देते हुए आती देखकर बेटी से कहा — "अरी बावली ! क्या पैसे के कारण तेरा सिर फिर गया है, जो कि तू इकलौते भाई को भी गालियाँ बकते हुए ससुराल से आ रही है ?"

बेटी भाई की संभावित मृत्यु का रहस्य छिपाना चाहती थी। अत: वह मौन रही। किन्तु बेटे ने आकर माँ से कहा — "अम्माँ ! इसे न कोस। यही मेरी प्यारी बहन है, जिसने अनेक संकटों से मुझे अब तक छुटकारा दिलवाया है।" माँ ने बेटे की बात पर विश्वास कर लिया और बेटी को खूब आदर-सम्मान दिया। बेटी ने अगले दिन मुँह-अंधेरे उठकर मुहल्ले की धोबिन के घर जा कर झाड़ू-पोंछा करना आरंभ किया। दो-चार दिन घर में कोई कूड़ा-कचरा न निकले देखकर धोबिन की बहुओं को हैरानी हुई। उन्होंने सास से पूछा — "माँ जी ! क्या आपको यह भरोसा नहीं कि हम घर की सफ़ाई करने में पीछे रहती हैं, जो कि आप सुबह उठकर झाड़ू-पोंछा कर देती हो।" बुढ़िया ने भी इस बात पर आश्चर्य प्रकट


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
किया। किन्तु अगली सुबह वह बहन जल्दी उठ गई। नियम के अनुसार बहन आई। उसने झाड़ू उठाया ही था कि बुढ़िया धोबिन ने उसे पहचान कर कहा — "अरी ! तू ही है, जो हमारे घर की सफ़ाई कर जाती है ? क्या अमीरज़ादे पति ने तुम्हे छोड़ दिया है ?"

बहन ने धोबिन से चुप रहने और समय पर रहस्योद्घाटन का वचन दिया।

कुछ दिनों बाद भाई की सगाई हो गई। शादी का मुहूर्त भी आ गया। बहन ने कहा भाई को टूटी चौकी पर बैठा कर टीका करो। संयोग वश नई चौकी टूट जाती है। उसी पर भाई का तिलक किया जाता है। दरवाज़े पर बारात पहुँचने पर सासू नेग करती है। किन्तु बहन उसे मना करते हुए कहती है कि नेग टूटे दरवाज़े पर ही होना चाहिए। बहन की इच्छा के अनुसार रस्म पूरी होते ही 'गेट' (दरवाज़ा) धम्म से गिर पड़ा। सभी लोग बाल-बाल बचे।

बहन ने धोबिन को सहेली बना लिया था और उसे भी भाई की बारात में ले गई थी। रात का खाना खाकर धोबिन सो गई। भाई 'फेरों' (भाँवर) के समय खत्म हो गया। यह ख़बर सुनते हुए ही अध-निंदी बहन चमक कर उठी और धोबिन को जगाया। बाजे-गाजे और गीतों की जगह विवाह-मंडप में रोना-धोना मचा था। बहन ने धोबिन से गुहार की — "बहना ! तुमने इतने दिन" (इस अवस्था तक) "भाई पाँचें" (ऋषि पंचमी-पूजन एवं रक्षा बंधन) करी है, मेरे भाई को इसका फल दे।"

धोबिन ने "चिटुड़ी" (कनिष्ठा) से छींटा देकर कहा मेरी सारी भाई पाँचे का फल इसे मिल जाए और आगे का मुझे मिलता रहे। यह बात मुख से निकलते ही 'झट देगी (एकदम) भाई जीवित हो गया। ज़िंदा भाई के साथ बारात लेकर बहन घर लौटी। भाभी भारी दान-दहेज़ लाई थी। अगले दिन बहन ने कहा कि घर में मेरा पति और बाल-बच्चे अकेले हैं। भाभी ने ननद को खूब धन और कपड़े-गहने देकर विदा किया।

इस कहानी में भाई के प्रति बहन का अटूट प्रेम और धोबिन वाले कथा-सूत्र से श्रम-गौरव की महिमा को बड़े रहस्यमय ढंग से दर्शाया गया है। भाग्य पर विश्वास करते हुए भी बहन का साहस न खोना और अनेक प्रकार के


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण-संकटों के सामने अपना क़ौल (वचन) निभाने के लिए भाई का राखी बंधवा कर लौट आना उसके महान चरित्र का निदर्शन करते हैं।

## विशेष थापे :

राजस्थान में कुछ पुरुष एवं महिलाएँ "ऋषि-पंचमी" का व्रत भी रखते हैं। भले ही उनके परिवार में उस दिन 'राखी' बाँधने की प्रथा न हो, फिर भी स्त्रियाँ इस पर्व के उपलक्ष्य में 'थापा' लगाती हैं। इस प्रकार के एक लोक-चित्रांकन का विवरण निम्नलिखित है :

"भाद्रपद शुक्ल पक्ष की पंचमी" 'ऋषि पंचमी' के नाम से जानी गई है। पुरुष इसी दिन नदी या किसी जलाशय में स्नान कर विधिवत् सप्त ऋषियों का पूजन करते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों इस दिन व्रत रखते हैं। महिलाएँ घर के एक तरफ़ दीवार पर रोली से चित्र बनाती हैं।"

इस चित्र में एक चौकोर घर का नीचे का भाग कुछ खुला रखा जाता है, जो कि गृह-द्वार की ओर इंगित करता है। चौकोर के ऊपरी सिरे के नीचे छः मानव-आकृतियाँ चित्ती गई हैं, जिनमें पाँच पुरुष और एक स्त्री के रूप में है। चौकोर के दाएँ बाजू में चाँद और, बाएँ में सूरज का चित्रण किया गया है। दाहिने बाजू की मानवाकृति के नीचे तीन साँप और थाली से बिखरी सामग्री दिखाई गई है। बाईं ओर एक फूल बनाया गया है, जो आकर-प्रकार से कमल की तरह प्रतीत होता है।

इसी चित्र का पूजन व्रतधारिणी महिलाएँ करती हैं

## विजयादशमी

यह त्योहार आश्विन शुक्ला दशमी को मनाया जाता है। श्री मन्मथ राय ने इस त्योहार के नामकरण के विषय में पौराणिक प्रमाणों के आधार पर लिखा है :

"कालिका पुराण का कथन है कि महा-नवमी को रावण-वध हुआ। कृतज्ञता प्रकट करने के लिए देवताओं ने इस दिन देवी जी की सेवा में विशेष पूजा चढ़ाई थी। तदनंतर दशमी के दिन उन्होंने देवी को प्रस्थित किया। साधारणतः जिस समय देवी की प्रतिमा पानी में बहाई जाती है, उसी के नियमानुसार उस


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दिन का नाम 'विजया दशमी' पड़ा। नारद पुराण' का वचन उद्धृत करते हुए 'निर्णय सिन्धु' कहता है — संध्या काल थोड़ा अवतीर्ण हो जाने पर जब तारकाएँ थोड़ी-बहुत दीखने लगती हैं, उसी समय का नाम 'विजया' है; इस समय जो काम हाथ में लिया जाए, उसमें सफलता मिलती है।"

## लोकपर्वीय अंश

लोक जीवन में इस पर्व का नाम 'दुशहरा', 'दशहरा' या 'दसहरा' भी प्रचलित हैं। पंजाब में इसे 'दसहरा' ही बोलते हैं। इस त्योहार की लोक प्रसिद्ध पौराणिक गाथा एवं रीति-रिवाजों को ध्यान में रखकर इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार ढूँढी जा सकती है :

(i) 'दुष्टहरा' = 'दुष्टों' (राक्षसों) को 'हरा' कर मनाया जाने वाला त्योहार= दुष्हरा > दुशहरा।

(ii) दसहरा = 'दस' (सिरों वाले =दशानन अर्थात् रावण) को 'हरा' कर मनाया जाने वाला त्योहार = दसहरा।

(iii) दसहरा = 'दस' (नवरात्र के बाद का दिन अर्थात् आश्विन शुक्ला 'दशम' तिथि) के 'हरा' (पंजाबी में 'हरा' होना क्रिया का अर्थ है 'बाज़ी जीतना'; खोई हुई वस्तु की उपलाब्धि; आशा पूर्ति) होने पर मनाया जाने वाला त्योहार 'दसहरा'।

(iv) दसहरा = आश्विन शुक्ला प्रतिपदा को जो जौ बाए जाते हैं; वे 'दस' दिन में 'हरे-भरे' हो जाते हैं; इसी उपलक्ष्य में मनाया जाने वाला त्योहार है 'दसहरा।'

(v) दसहरा = गोबर के दस उपले रखकर इस त्योहार का पंजाबी घरों में पूजन होता है। 'साँझी' (नवरात्र में "गौरी-पूजन" विषयक कन्याओं का त्योहार) के लोक गीतों में गोबर का रंग 'हरा' बताया गया है, यथा :

मेरी सांझी ताँ मंग़दी हरा हरा गोबर।
मैं कहाँ से ल्याऊँ साँझी हरा हरा गोबर।[7]

हरियावणी एवं पंजाबी परिवार की बड़ी-बूढ़ी स्त्री नवरात्र की अंतिम वेला (अर्थात् आश्विन शुक्ला नवमी की शाम) में किसी बर्तन में दही का थोड़ा-सा अंश


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
डालकर दही जमाने के लिए दूध भर कर रख देती है। अगले दिन पौ फटने से पहले ही 'चक्के वर्गा' (खूब गदगदा) दही जम कर तैयार हो जाता है। यही वयोवृद्धा प्रातः चार-पाँच बजे परिवार के सदस्यों को जगाकर यह दही और चाँदी का एक रुपया बारी-बारी से दिखाती है।

यह रुपया अधिकतर साम्राज्ञी विक्टोरिया के चित्र से अंकित होता है। विशेषता केवल शुद्ध चाँदी की है, भले ही रुपया एडवर्ड सप्तम के चित्र वाला हो अथवा उसके परवर्ती जॉर्ज पंचम या छठे जॉर्ज के शासनकाल में ढाला गया और उनमें से किसी एक के चित्र वाला हो। रुपए के स्थान पर दो अठन्नियाँ अथवा चार चवन्नियाँ या सौ पैसे पूरे करने के लिए अन्य छोटे सिक्कों का प्रयोग नहीं होता।

यदि शुद्ध चाँदी का उपर्युक्त अंग्रेज़ शासकों के समय का कोई पुराना रुपया किसी के घर में नहीं मिलता तो गृहस्वामिनी गिलट-मिले अशोक-स्तंभ वाले रुपए से ही काम चला लेती है। यही सिक्का पूजा-स्थल पर रखा जाता है। किन्तु उसी मूल्य का एक रुपए का 'काग़ज़ का नोट' इन कामों के लिए वर्जित है। श्वेत वस्तुओं का दर्शन स्वतः ही शुभ माना जाता है, दही भी सफ़ेद और चाँदी भी सफ़ेद। 'रजत-दर्शन' द्वारा 'लक्ष्मी-दर्शन' अभिप्रेत है जो कि भगवान् विष्णु की अर्द्धांगिणी हैं। भगवान् राम भी तो विष्णु जी के इक्कीसवें अवतार माने जाते हैं।

प्रातः होने पर घर के सभी सदस्य नहा-धोकर नए या (अधिकतर) धुले हुए कपड़े पहन लेते हैं। इस बीच गृहिणी चावल उबाल कर, साबत मूँग और फुल्के तैयार कर लेती है। ग्यारह-बारह बजे के लगभग अर्थात् भोजन के दैनिक समय के आस-पास बच्चों के द्वारा सुबह ही बटोर कर लाए गए गोबर से गृहिणी उस स्थान को पोतती है जहाँ पर या तो आराध्य देव की मूर्ति या चित्र विद्यमान रहता है; अथवा जिस जगह हर वर्ष सभी त्योहार मनाए जाते हैं।

गोबर से लिपा-पुता यह फ़र्श ही पूजा-स्थल बन जाता है। गृहिणी प्रायः गोलाई में बराबर-बराबर दूरी पर समान आकार वाले दस उपले गाय के गोबर से बनाकर सजा देती है। वह धागे के गोले या रील से इन दसों उपलों पर सफ़ेद धागे की सात तारें लपेट देती है। इसे 'दसहरे' का 'जनेऊ' (यज्ञोपवीत) कहा जाता है, जिसमें दस के दस उपले एक ही सूत्र में बँधे दिखाई पड़ते हैं।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चे बाग़ों से मौसमी फूल तोड़ लाते हैं। प्रत्येक उपले में एक-एक फूल सजा दिया जाता था। यदि कई रंगों के फूल अधिक मात्रा में मिल जाते हैं तो हरेक उपले में खोंसे गए पुष्पों की संख्या और शोभा बढ़ जाती है। परिवार के पुरुष आबाल-वृद्ध उगे हुए जौ की वह हरी घास भी तोड़ लाते हैं, जिन्हें नवरात्र (आश्विन) - प्रतिपदा को मिट्टी के बर्तनों अथवा घर की दीवारों में बने आलों में बोया गया था।

जौ की इस घास (जवों) को "गौरजा" कहा जाता है; संभवत: "गौर" (गौर माता = दुर्गा का गोरा रूप) के आशीर्वाद से उगने के कारण। अंधेरे स्थान पर रख देने के कारण इन जवों (गौरजाओं) का रंग पीला रहता है। किन्तु आलों में उगे जौ हरे रंग के ही होते हैं। इन पीले-हरे जवों के ढेर में से दो-दो चार दूर्बाएँ उठाकर गृहस्वामी प्रत्येक उपले पर धर देता है। वही गृहस्वामी थाली में पड़े उबले हुए चावलों में चीनी और सुबह परिवारजनों को दिखाया गया दही मिला लेता है। यही मिश्रित पदार्थ अल्पांश में प्रत्येक उपले पर रख दिया जाता है। परिवार का सब से बड़ा व्यक्ति घर में रखी हुइ कृपाण या तलवार और शुद्ध चाँदी का रुपया पूजा-स्थल रख देता है। जिन घरों में कोई अस्त्र न हो तो वे चौके में सब्ज़ी काटने वाला चाकू या कर्द ही उपलों के बिल्कुल बीच में सजा देते हैं।

तदनंतर यही महानुभाव वर्षों से निश्चित 'दसहरा' लिखने का रजिस्टर, बही या मोटी कॉपी लेकर बैठ जाते हैं। इस में परिवार द्वारा बीते वर्षों में 'दसहरा' मनाने का अभिलेख (Record) रहता है, जिस से आंशिक रूप से त्योहार मनाने की तिथि एवं पूजा-स्थल पर जुटे लोगों के नामों की सूचना मिल जाती है। सामान्य प्रयोग में आने वाली लेखनी से पिछले सालों की तरह नया विवरण भी इस प्रकार अंकित कर दिया जाता है :

ॐ

श्री गणेशाय नम:
श्री रामचंद्र जी आपका दसहरा पूजा जाता है।
सारे परिवार पर कृपा करना। सब की मनोकामना पूरी करना।
"उत्तर का घोड़ा, पच्छम का तीर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आए रामचंद्र जी लंका को जीत।।"

ॐ शांति शांति।

दिनांक — आपके दास

(जातिवाचक नाम) परिवार के सदस्य

(नगर या ग्राम का नाम)

तदुपरांत इसी पृष्ठ पर रोली से एक कोने में स्वस्तिका का चिह्न बनाकर काग़ज़ को तब तक खोले रखते हैं, जब तक स्याही और रोली का गीलापन सूख न जाए। कुछ परिवारों में 'आपके दास' के बोधक त्योहार मनाने के लिए उपस्थित हुए सभी स्त्री-पुरुषों के नाम लिखने की प्रथा भी है।

अब सभी उपस्थित जनों के हाथ में कच्चे चावल के दाने थमा कर गृह स्वामी महोदय उस लिखित संदेश को दोहराते हैं — "राम चंद्र जी महाराज ! आपका दसहरा पूजा जाता है। सारे परिवार पर कृपा करना। सब की मनोकामना पूरी करना।" तदनंतर "बोल साचे दरबार की जय" के तुमुल घोष के साथ ही मुट्ठी के चावल सभी लोग 'दसहरे' (के उपलों) पर बरसा देते हैं और अनामिका उँगली से गणेश जी के प्रतीक 'सुपारी' पर रोली 'चर्चते' (छिड़कते) हैं। फिर लक्ष्मी स्वरूपा चाँदी के रुपए और अस्त्र पर उसी तरह "रोली चर्चना" होती है।

गृहस्वामी सभी की टोपियों या पगड़ियों में जवे खोंस देते हैं। नंगे सिर वालों के लंबे वालों में जवे बाँध दिए जाते हैं, अथवा उनके कान पर लटका दिए जाते हैं। लड़कियों और स्त्रियों को जो जवे गृहस्वामी से प्राप्त होते हैं, वे उन्हें अपनी चोटी में बाँध लेती हैं। घर का वयोवृद्ध पुरुषों के माथे पर अंगूठे से रोली का तिलक और स्त्रियों एवं जिन बच्चों का मुंडन संस्कार न हुआ हो — उनके माथे पर अनामिका से गोल बिंदी लगा देता है। इसके पश्चात् दही-चीनी (बूरा) मिश्रित उबले हुए चावलों का नैवेद्य (प्रसाद) गृहस्वामी ही सभी उपस्थित प्राणियों को वितरित कर देता है।

अब बारी आती है बहनों की। वे भी गृहस्वामी की तरह अपने बड़े तथा छोटे भाइयों को जवे भेंट करती हैं और तिलक-टीका लगाती हैं। वे अपने भाइयों को मिठाई और फल भेंट करती हैं और उसके उपलक्ष्य में रुपए पाती हैं। यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहन नगर से बाहर हो तो आश्विन शुक्ला नवमी (विजयादशमी से एक दिन पहले) को डाक द्वारा जवे और रोली-चावल भाइयों-भतीजों के टीके के रूप में भेज देती है। ऐसी दशा में माँ को ही बेटी की ओर से यह तिलक-टीके का कार्य संपन्न करना पड़ता है; चाहे यह सामग्री दशहरे के बाद ही पहुँचे। श्रद्धानुसार धनराशि मनी ऑर्डर द्वारा बहन को अवश्य भेज दी जाती है।

परिवार सहित भोजनादि से निवृत्त होकर गृहस्वामिनी 'दसहरे' के पूजा-स्थल की सारी सामग्री शाम को बटोर कर सूखने के लिए छत पर रख देती है। इस प्रक्रिया को 'दसहरा बढ़ाना' कहते हैं। दसहरे के इन उपलों से पानी गर्म करके परिवार के सभी लोग 'भैया दूज' की सुबह स्नान करते हैं। इस प्रकार शुभेच्छाओं का क्रम जोड़ने का प्रयास करने के अतिरिक्त दूसरी ओर त्योहार की मूल भावना को सचेत रखने का लक्ष्य रहता है। कर्मकांड के प्रति आस्था घट जाने के कारण पूजा-पाठ में पुरोहित-ब्राह्मण की भूमिका भले ही अधिकांश परिवारों में लुप्त हो रही हो, फिर भी कृषि-प्रधान पंजाब एवं हरियाणा की लोक संस्कृति में 'गोबर' की महिमा अद्यतन जीवित है। गो+बर (वर = वरेण्य) 'गोबर' के माध्यम से आज भी 'गाय' हमें 'वरेण्य' है, रूढ़ियों के प्रति हमारी आस्था भले ही क्रमशः लुप्त होती जा रही हो।[8]

दशहरे के दिन नीलकंठ पक्षी का दर्शन अत्यन्त शुभ माना जाता है। अतः हरियाणा में अनेक लोग दिन के पिछले पहर में गाँव के बाहर नीलकंठ की खोज करने जाते हैं। जिन्हें नीलकंठ के दर्शन हो जाते हैं, वे अपने को पुण्य का भागी समझते हैं। वहाँ पर कुछ यजमान आज भी ब्राह्मणों से जौ टँगवाते हैं और उन्हें दान-दक्षिणा देने की प्राचीन प्रथा का निर्वाह भी करते देखे गए हैं।[9]

## हिमाचली रूप : नामावलि एवं कुल्लू का दशहरा

'विजयादशमी' के लिए हिमाचल प्रदेश की पहाड़ी भाषा में 'दसैहरा' शब्द का आम प्रचलन है। किन्तु सोलन ज़िले के कुछ लोग इसका उच्चारण 'दशैरा' करते हैं और सिरमौर ज़िले के 'दशोयरा'।[10] कुल्लू का 'दशहरा' अपनी विचित्रताओं के कारण देश भर में प्रसिद्ध है। इसे स्थानीय भाषा में 'विदा दसमी' कहा जाता है। संभवतः यह संस्कृत के 'विजया दशमी' का अपभ्रंश रूप है। कुल्लू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादी में घोर सर्दी पड़ने के कारण यह वर्ष का अंतिम सामूहिक लोकपर्व होता है, संभवत: इसीलिए इसे 'विदा दसमी' अभिहित किया जाने लगा हो।

इस उत्सव पर कुल्लू में न तो मैदानी क्षेत्रों की भाँति रामलीला का अभिनय होता है और न ही रामायण-पाठ। रावण, कुंभकर्ण और मेघनाथ के पुतले जलाने की बजाय त्योहार के अंतिम दिन एक मुर्गे, एक मछली, एक केकड़े, एक बकरी के बच्चे और एक भैंसे की बलि दी जाती है। इतना ही नहीं यह पाँच दिन चलने वाला मेला मैदानी क्षेत्र के दशहरे से अगले दिन आश्विन शुक्ला एकादश से आरंभ होकर पूर्णिमा तक चलता है।

कुल्लू में दशहरे की परंपरा के बीज कुछ लोक कथाओं में निहित हैं। कहते हैं कि कुल्लू के राजा जगत सिंह (शासनकाल सन् 1637-1672) को पार्वती वादी (Valley) के ब्राह्मण की मोतियों की एक माला बहुत पसंद आई। राजा ने उससे वह माला ज़बर्दस्ती ले ली तो ब्राह्मण देवता ने आत्म हत्या कर ली। इसके बाद जब भी राजा भोजन करने बैठता तो उसे प्रत्येक खाद्य-पदार्थ में कीड़े ही कीड़े नज़र आते। यहाँ तक कि पानी के गिलास में भी खून ही दिखाई पड़ता। तब राजा को परामर्श दिया गया कि वह अयोध्या से भगवान राम की मूर्ति लाकर उसे प्रायश्चित स्वरूप राज-पाट सौंप दे और उन्हीं के नाम पर शासन करे।

सैंकड़ों पुजारियों से घिरे श्री राम के अयोध्या-मंदिर से मूर्ति उठाना अत्यंत दुष्कर कार्य था। किन्तु राजा जगत् सिंह के गुरु फुवारी बाबा ने यह काम अपने शिष्य दामोदर दास को सौंप दिया। दामोदर को 'गुटिका सिद्धि' प्राप्त थी और उसी के बल पर वह मूर्ति चुराकर अयोध्या से कुल्लू पहुँच गया। राजा ने बड़े सम्मान के साथ मूर्ति के स्वागत में पूजा-अर्चना की। संयोगवश उस दिन आश्विन शुक्ला दशमी थी। कुल्लू वादी के सभी देवी-देवता ढालपुर के मैदान में एकत्र थे। राजा जगत सिंह ने सभी की उपस्थिति में 'रघुनाथ जी' की मूर्ति को राजगद्दी प्रदान की और स्वयं उनके 'छड़ी बरदार' के रूप में शासन-कार्य करना स्वीकार किया। फलत: रघुनाथ जी ने राजा को ब्रह्म-हत्या के महा पातक से मुक्त कर दिया और उसके सभी कष्ट दूर हो गए। राजा जगत सिंह ने दामोदर दास को भूइन-जिया में पूरा गाँव सौंप दिया और वहाँ पर एक मंदिर का निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करवा दिया।[11]

दशहरे का यह लोकोत्सव कुल्लू के ढालपुर मैदान में आयोजित होता है। मनाली से लगभग 3 किलोमीटर दूर देवदार के घने जंगलों में देवी हिडिम्बा का पैगोडा श्रेणी का चार मंज़िला मंदिर है। देवी हिडिम्बा पाण्डव वंश के भीम की पत्नी और घटोत्कच की माती थीं। यह देवी कुल्लू के राजाओं तथा सभी देवी देवताओं की दादी कहलाती है। यद्यपि कुल्लू का प्रसिद्ध दशहरा श्री रघुनाथ जी की अध्यक्षता में आयोजित होता है, किन्तु देवी हिडिम्बा के आगमन से पूर्व इसका शुभारंभ नहीं होता। अत: देवी जी समारोह से प्राय: एक दिन पहले ढालपुर मैदान में पहुँच जाती हैं और महोत्सव के समापन के बाद, प्राय: आश्विन कृष्णा प्रतिपदा को कुल्लू से 45 किलोमीटर दूर अपने स्थायी मंदिर में लौट जाती हैं।

रघुनाथ जी के कुल्लू में पधारने पर जो महायज्ञ आरंभ हुआ था, उसमें बिजली महादेव, बीणी महादेव, श्रृंग ऋषि, सकीरिनी महादेव, जणेश्वर महादेव, शमशरी महादेव, त्रिपुड़ा वाली दुर्गा, भागा-सिद्ध, खोखण के आदि ब्रह्म, दुआड़ा के विष्णु नारायण, धुम्बल नाग, बासु नाग. चौमुँही नाग सम्मिलित हुए थे। किन्तु जिन देवताओं के रथ न थे अथवा जिनके रथ सिर पर उठाए जाते थे, वे इस महायज्ञ में सम्मिलित न हो पाए। अत: उन्होंने फूल और 'शेष' (चावल के सूखे दाने और धूप) भेजकर रघुनाथ जी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की थी।

मेले के शुभारंभ के समय रघुनाथ जी की मूर्ति को रंग-बिरंगे फूलों और अनेक रंगों के परिधानों से सुसज्जित कर छ: पहियों के रथ पर आसीन करके मंदिर से बाहर लाया जाता है। वहाँ पर कुल्लू के पुराने राजकुल का वरिष्ठतम अधिकारी (राजा) संगतरी रंग की ज़री वाली अचकन और सोने की तारों वाली पगड़ी पहने विराजमान रहता है। राजकुल के इस व्यक्ति को लोक भाषा में 'रघुनाथ जी का वायसराय' पुकारा जाता है। जब 'वायसराय' राज्य के सब से बड़े कुल पुराहित के साथ रथ की तीन बार परिक्रमा कर लेते हैं तब श्रद्धालु जन लताओं से लिपटे रस्सों से बँधे रथ को खींच कर ढालपुर मैदान की ओर बढ़ते हैं।

देव-मूर्ति को 'ठाकुर' कहते हैं। अत: रघुनाथ जी की मूर्ति की इस शोभा यात्रा को कुल्लुई भाषा में 'ठाकर निकलना' कहा जाता है। रथ के पीछे मख़मली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काठी वाले घोड़े पर नरसिंह जी रहते हैं और उनके बाद अन्य देव-मूर्तियाँ अपने-अपने वाहनों में चलती हैं। बारहसिंगे, तुरहियाँ और अन्य पहाड़ी वाद्यंत्रों की मधुर धुनों के साथ-साथ भक्तजनों के 'बोलो रामचंद्र जी की जय', 'सियावर रामचन्द्र जी की जय', 'हनुमान जी की जय' जैसे उद्घोषों से आकाश भी गूँज उठता है।[12]

रथ दशहरे के अंतिम दिन तक ढालपुर मैदान के मध्य में स्थित रहता है। रघुनाथ जी की मूर्ति को उसके समीप हो अस्थायी रूप में निर्मित एक मंदिर में प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। आश्विन शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक रघुनाथ जी तथा अन्य देवी देवताओं के पुजारी प्रातः और सायं दोनों समय निजी विधि-विधान के अनुसार पूजा-आराधना करते हैं। आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को कुल्लुई बोली में 'मुहल्ला' कहा जाता है।[13] वास्तव में यह दशहरे के पर्वोत्सव का मुख्य दिन है। यह तिथि इसलिए निश्चित की गई है ताकि दूरस्थ स्थानों से आने वाले देवताओं को यदि पहाड़ के दुर्गम स्थलों से पहुँचने में किसी कारण विलंब भी हो जाए तो वे देव-महा सम्मेलन से वंचित न रह जाएँ। देवताओं की रघुनाथ जी के समक्ष उपस्थिति की इस पावन वेला में भक्तजन सारा दिन और सारी रात नाच-गान में व्यस्त रहते हैं। इस अवसर पर होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों को अब पटियाला स्थित उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र ने व्यापक बना दिया है। अब हिमाचली रंगा-रंग कार्यक्रमों के साथ-साथ पंजाब, हरियाणा और काश्मीर के लोक-गान और लोक-नृत्य उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र के सहयोग के कारण और अधिक समाँ बाँध देते हैं।

आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को भक्तजन रघुनाथ जी की मूर्ति से युक्त रथ को खींच कर ढालपुर मैदान के दूसरी ओर व्यास नदी के निकट ला कर खड़ा कर देते हैं। वहाँ संध्या में नदी के तट पर एकत्र की गई झाड़ियों, घास और लकड़ियों के ढेर को आग लगाने से पहले भैसें, बकरी के बच्चे, केकड़े, मुर्गे और मछली की बलि दी जाती है। अपने-अपने वर्ग का यह जीव एक-एक ही होता है। सूर्य ढलने के समय एक ओर आकाश की लालिमा और दूसरी ओर लंका-दहन का स्मरण करवाने वाले लाल जिह्वाओं वाले अग्निदेव और जीव-बलि के कारण प्रवाहित होने वाली लाल रक्त की धारा शौर्य एवं महान विजय को प्रतीकात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में दृश्यमान करते हैं।

तदंतर रथ को पुन: खींच कर रघुनाथ जी के स्थायी मंदिर की ओर ले जाया जाता है और ठाकुर जी की प्रतिमा को यथा स्थान प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। ठाकुर जी की विदायगी के साथ ही लोग मेले से खरीदे हुए सामान तथा प्राप्त हुए प्रसाद सहित अपने-अपने घरों की ओर प्रस्थान कर देते हैं। कुल्लू दशहरे की महिमा एवं उसे मानने की तिथियों में अंतर होने के कारणों पर एक सज्जन ने इस प्रकार प्रकाश डाला है :

"आज विजय दशमी का उत्सव और कुल्लू एक दूसरे का पर्याप्त प्रतीत होते हैं। विजय दशमी एक ऐसा लोकोत्सव है, जिसमें देव भूमि की अस्मिता विद्यमान् है।..... कुल्लू का दशहरा श्री रामचंद्र जी द्वारा लंका की विजय के स्मरणोत्सव के रूप में मनाया जाता है और इसके साथ रघुनाथ जी की मूर्ति के आगमन की स्थानीय घटना का समावेश है। कुल्लू के दशहरे को सप्ताह भर देर से मनाए जाने के कारण व्यापारिक भी हो सकता है। अक्तूबर के मध्य तक कुल्लू में कृषि का काम प्राय: समाप्त हो जाता है तथा देहात के लोग अपने-अपने फसली कार्यों से निवृत्त होकर दशहरा मनाने तथा अपनी निर्मित वस्तुएँ शॉल, दोशाले, पट्ट-पट्टियाँ, पुले-रस्से आदि बेचने के लिए काम से निश्चित होकर कुल्लू पहुँचते हैं। इन्हीं दिनों कुल्लू के उत्तर में स्थित रोहतांग, बारालावा, कुंजम के ऊँचे पर्वत, जो वर्ष के अधिक समय में प्राय: बर्फ़ से ढके रहते हैं, आवागमन के लिए खुले होते हैं। प्राचीनकाल से ही यारकंद, कंधार, चीन, तिब्बत, लद्दाख, लाहौल और स्फीति के काफिले अपनी भीड़ के साथ गर्मियों की लम्बी यात्रा के बाद अपनी व्यापारिक वस्तुओं को बेचने के लिए कुल्लू पहुँचते हैं। इस तरह कुल्लू का दशहरा एक महान् वाणिज्य-केन्द्र बनता है।"[14]

## काश्मीरी रूप

काश्मीरी भाषा में 'दशहरा' का उच्चारण 'दशह् हार' है।[15] काश्मीरी विद्वान इसे स्थानीय पर्व नहीं मानते। इस संबंध में एक लेखक के विचार उद्धरणीय हैं :

"पंजाबी हिन्दुओं के बस जाने के कारण श्रीनगर में दशहरे का आयोजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी धूमधाम से होने लगा है। डोगरा शासन काल में श्रीनगर के चाँदमारी मैदान (जिस आजकल बाटामल्लू का 'टोटो मैदान' कहा जाता है) तथा हजूरी बाग़ दशहरे के अवसर पर जनता के लिए अत्यंत आकर्षण के केन्द्र बन गए। इस दिन सूर्यास्त के समय रावण, कुंभकर्ण और मेघनाथ के पुतले जलाए जाते हैं।"[16]

दशहरे से एक दिन पूर्व आश्विन शुक्ला नवमी को, जिसे 'राम नवमी' भी कहा जाता है, कहीं-कहीं लोकगीत भी गए जाते हैं। ऐसे लोकगीत संख्या में बहुत कम मिलते हैं। उपलब्ध लोकगीतों में राम और कृष्ण को एक मानकर उनका एक-साथ गुणगान करना काश्मीरियों की समन्वय भावना का सूचक है। इस प्रकार का एक लोकगीत उद्धृत है :

लालअ लगयो बाल-बावस, राम नावस पअर्य लगय।
बक्त बावय नाद लायय अर्दरातन स्वन्दरो।
चानि दर्शनकुय छुम में हावस, राम नावस पअर्य लगय।
ही मुरारी बोज़ ज़अरी, यान्य बीज़ख न कनव।
छुक च़अटोठान बक्त-बावस, राम नावस पअर्य लगय।।[17]

## चंडीगढ़ का दशहरा

चंडीगढ़ नगर केन्द्र शासित प्रदेश होने के अतिरिक्त पंजाब और हरियाणा प्रदेशों की राजधानी भी है। यहाँ अधिकतर नौकरी पेशा लोग बसे हुए हैं। बहुत-से लोगों ने दीर्घकालीन सेवा से मुक्त होकर अपने मकान इस शहर में बना लिए हैं और वे चंडीगढ़ के पक्के निवासी कहलाने लगे हैं। भारी संख्या ऐसे व्यक्तियों की भी है, जो सरकारी कार्यालयों अथवा प्राइवेट कंपनियों में कार्यरत हैं। इनमें भी कम से कम सत्तर प्रतिशत परिवार ऐसे हैं, जिसमें पति तथा पत्नी दोनों ही सेवारत हैं। ऐसे लोग पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश के ही नहीं, बल्कि सुदूर दक्षिण भारत एवं बंगाल के भी मूल निवासी हैं।

चंडीगढ़ की रिहायशी बस्तियों में पशु-पालन की मनाही है। अत: पंजाब और हरियाणा की तरह पूजा-स्थल पर रावण के दस सिरों के प्रतीक गोबर के दस उपले नहीं रखे जाते। पूजा-स्थल पर भगवान राम की मूर्ति अथवा चित्र रखकर एक थाली में रोली, कच्चे चावल, फूल, चाँदी का सिक्का तथा गणेश जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का प्रतीक सुपारी रख लिए जाते हैं। सुबह होते ही ठेले पर गन्ने रख कर विक्रेता गली-मुहल्लों में घूमते हैं। सब्ज़ी बेचने वालों से मूलियाँ भी ख़रीद ली जाती हैं। पूजा-स्थल के दोनों ओर गन्ने तथा मूली खड़े कर दिए जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके ऊँच पत्ते भगवान राम के विजय-ध्वज बनकर घर-घर आ पहुँचे हों।

पूजा-स्थल पर विराजमान पारिवारिक सदस्यों को प्रसाद के रूप में उबले हुए चावलों में दही तथा मीठा मिला पदार्थ बाँटा जाता है। परिवार का बड़ा सदस्य सभी प्रियजनों के माथे पर टीका-बिंदी लगा देता है। यही मीठा पदार्थ परिवार के आदि पुरुष और भगवान राम के नाम पर पूजा-स्थल पर रखा जाता है। पूजा के बाद इसे ब्राह्मण को भेंट कर दिया जाता है। पंजाबी और हरियाणावी परिवारों की बहनें भाई को तिलक लगाकर उसके सिर पर बँधी टोपी-पगड़ी में जौ की हरी घास खोंसती हैं। हिमाचली परिवारों में ऐसा प्राय: नहीं होता।

शाम चार बजे से असुर-दहन की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। कई सेक्टरों में लोग अपने-अपने घर के द्वार पर ही इस आयोजन हेतु स्वयं ही काग़ज़ों से एक ही धड़ पर टिके तीन सिरों वाला एक पुतला बना लेते हैं। इसका नीचे का भाग रंग-बिरंगे काग़ज़ से ढका रहता है। 6-7 इंच ऊँचे इस पुतले को टिकाने के लिए इतनी बड़ी बाँस की तीलियों से बनी तिपाई भी घर के बच्चे-बच्चियाँ ही तैयार कर लेते हैं। पुतले को तिपाई पर टिका कर उसके नीचे घास-फूस एकत्र करके आग लगा दी जाती है। आध-पौन मिनट में ही पुतले में भरे पटाखों की आवाज़ से रावण, कुंभकर्ण तथा मेघनाद के शरीर भस्म हो जाते हैं। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद हर सेक्टर के किसी-न-किस घर के आगे ऐसे पुतले जलाने से पटाखों की धड़-धड़ की कर्ण-कटु ध्वनि देर रात तक सुनाई पड़ती रहती है। हर्षोन्माद से भरे बालक शोर मचाते हुए एक-दूसरों के घर का 'असुर-दहन' देखते हुए इधर-उधर घूमते रहते हैं। यह चंडीगढ़ की निजी विशेषता है।

सूर्यास्त के पश्चात् लगभग डेढ़ दर्जन सेक्टरों में दशहरे का मेला भरता है। वहाँ पर तीनों राक्षसों के पुतले जलते देखने के लिए आने वालों का जमघट एकाध घंटा ही रहता है। चंडीगढ़ का मुख्य दशहरा बस अड्डे से सटे 17 सेक्टर के "पैरेड ग्राउँड" में मनाया जाता है। इसका आयोजन 'श्री राम लीला कमेटी' की ओर से होता है तथा चंडीगढ़ के प्रशासक का परामर्शदाता ही इसकी अध


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्षता करता है। वह व्यक्ति भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है। राम और लक्ष्मण के तीर लगने से ही रावण, कुंभकर्ण तथा मेघनाद के पुतले धड़ा-धड़ जलने लगते हैं। उनके अंदर भरे पटाखों और फुलझड़ियों के अनेक रंग अत्यंत सुहावने लगते हैं।

नगर के कई दशहरा उत्सवों में धनाढ्य व्यक्तियों तथा वरिष्ठ राजनीतिज्ञों को अध्यक्षता के लिए आमंत्रित कर लिया जाता है। उनसे दान स्वरूप प्राप्त हुई धन राशि आयोजन के खर्चों की भरपाई में पर्याप्त सहायता करती है।

## दीवाली

**इतिहास** — पुरातन काल में दीवाली यक्ष-पूजा का उत्सव था। पुराणों के अनुसार उस दिन धन के देवता यक्षराज कुबेर की पूजा का विधान था। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में दीवाली का नाम 'यक्ष रात्रि' मिलता है। हेमचन्द्र (ग्यारहवीं शताब्दी) कृत 'देशी नाम माला' में उपलब्ध 'जक्ख रत्ती' शब्द 'यक्ष रात्रि' का ही अपभ्रंश रूप है। पुरुषोत्तम देव विरचित 'त्रकांड शेष' में 'यक्षरात्रि' का अर्थ 'दीवाली' ही किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मातृ-संस्कृति के प्रचार के साथ जैसे 'अग्निदेव' को 'ज्वाला देवी' के नाम से अभिहित किया गया, ठीक उसी प्रकार धन के पुरुष देवता 'कुबेर' के स्थान पर 'दीवाली' का संबंध कालांतर में धन की अधिष्ठात्री देवी 'लक्ष्मी' से जुड़ गया।

कालचक्र 'दीपावली' का संबंध अनेक पौराणिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं के साथ जोड़ता आया है। लंकापति रावण पर विजय प्राप्त करके अयोध्या में लौटने पर भगवान राम का राज्याभिषेक इसी दिन हुआ था। वह त्रेता युग की एक महान घटना थी। द्वापर युग में भी महाराजा युधिष्ठिर ने अपना राजसूय यज्ञ इसी दिन पूरा किया था। उज्जैन के महाराजा विक्रमादित्य का राजतिलक भी दीवाली के पावन पर्व पर हुआ था। छठे सिक्ख गुरु श्री हरिगोविन्द जी ग्वालियर के क़िले में मुग़ल शासन द्वारा बन्दी 52 राजाओं को मुक्त करवा कर दीवाली के दिन ही अमृतसर पहुँचे थे और 'बंदी छोड़' की उपमा से प्रख्यात हुए।

जैन धर्मावलंबी कई शताब्दियों से अपने धर्म के संस्थापक भगवान महावीर का निर्वाण-उत्सव इसी दिन मनाते आ रहे हैं। आधुनिक युग में पंजाब के महान


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
दार्शनिक स्वामी रामतीर्थ और आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद के इसी दिन 'निर्वाण-प्राप्ति' के कारण दीवाली के अवसर पर यज्ञ-होम और प्रवचनों के आयोजन भी होने लगे हैं।[18]

## महान ज्योति पर्व

'दीवाली' तद्भव शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'दीपावली' से हुई है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से मूल संस्कृत शब्द 'दीप+अवली' युग्म पदों के 'दीप' शब्द से 'प' और 'अवली' में से 'अ' अक्षर का लोप हो गया। उधर 'अ' अक्षर स्थानच्युति (जगह बदलने) के कारण 'वा' बन गया। इस प्रकार लोक भाषा में प्रचलित 'दीवाली' शब्द संस्कृत के 'दीपावली' के अपभ्रंश रूप में आज उपलब्ध है।[19]

'दीपावली' शब्द का अर्थ है — 'दीपकों की 'पंक्ति'। दीपक जलाने की प्रथा 'यक्ष रात्रि' से ही चली आ रही है। 'स्कंद पुराण' में कहा गया है कि कार्तिक मास में भगवान विष्णु के सम्मुख दीप-निवेदन करने से तीनों लोकों के पाप नष्ट हो जाते हैं, यथा:

तन्नास्ति पातकं किंचित् त्रिषु लोकषु नारद।
यन्न शोधयते दीपः कार्तिक केशवाग्रतः।।

जैन ग्रंथ 'कल्प सूत्र' में लिखा है कि जैन तीर्थंकर महावीर का महाप्रयाण होने पर जब लिच्छवि और मल्ल आदि अठारह राज प्रमुख उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एकत्र हुए तो उन्होंने अनुभव किया कि ज्ञान का प्रकाश हो गया है। अतः दीपकों के भौतिक प्रकाश से ही भविष्य में इस दिन की स्मृति को सुरक्षित रखा जाए।

हिन्दुओं के एक धर्म ग्रंथ में बताया गया है कि कार्तिक मास में पूजा-स्थल पर ही नहीं बल्कि मंदिरों में तथा चौराहों पर जलते दीपक सजाने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है :

उच्चे प्रदीपमाकाशे यो दद्यात् कार्तिके नरः।
सर्व लोकं समुद्धृत्य विष्णुलोकवाप्नुयात्।।

दीप-शृंखला सजाने की यही प्रथा आगे चलकर इतनी लोकमान्य हुई कि धार्मिक रुचि वाले व्यक्ति केवल कार्तिकी अमावस्या की रात्रि को ही दीये जलाने


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
से संतुष्ट न हुए। फलत: इस ज्योति पर्व की सूचना कुछ दिन पहले से दीप-प्रज्वलित करके दी जाने लगी। हरियाणा के एक विद्वान ने अपने राज्य में विद्यमान इस पुनीत परंपरा का उल्लेख इन शब्दों में किया है :

"धन त्रयोदशी को घरों की मोरियों में प्रकाश किया जाता है। सरसों के तेल का दीपक जलाया जाता है। चतुर्दशी को प्रत्येक घर में कम से कम ग्यारह दीपक जलाए जाते हैं और दीपावली के दिन पंक्ति की पंक्ति दीपकों की जलाई जाती है और घर-बाहर प्रत्येक स्थान पर प्रकाश पहुँचाया जाता है।"[20]

## दीपोत्सव और आरोग्य-चेतना :

पुराने समय में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति लोगों का अटूट विश्वास था। दीवाली पर घरों की लिपाई-पुताई के अतिरिक्त सरसों, तिल, अरंडी अथवा दुएँ के तेल से दीपक भर दिए जाते थे। उनमें रूई की बत्तियाँ जलाई जाती थीं। आधुनिक वैज्ञानिक भी इस भारतीय मान्यता का समर्थन करते हैं कि कडुए तेलों से भरे सैंकड़ों दीपकों से विषैले परमाणुओं और सूक्ष्म कीटाणुओं का नाश हो जाता है। फलत: दीपकों के धुएँ से सारा वातावरण शुद्ध हो जाता है। यही कारण है कि समूचे उत्तर भारत में श्रद्धालु लोग अपने मकान के प्रत्येक भाग, यहाँ तक कि शौचालय, स्नानागार, दहलीज़ और सीढ़ियों पर भी दीपक जलाते हैं। चौराहे, कुएँ और तालाब पर दीपक जलाकर पथिकों को दिशा-निर्देश करना ही लक्षित था। बिजली के बल्बों और ट्यूबों की चकाचौंध के बावजूद धर्मभीरु लोगों ने इस प्रथा का परित्याग नहीं किया है।

## "दीवाली" और नए प्रतिमान

यह पर्व मुख्यत: कार्तिक की अमावस्या को मनाया जाता है। किन्तु इसके आयोजन अमावस्या से तीन दिन पहले शुरू हो जाते हैं। कार्तिक के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को "धन तेरस" कहा जाता है। कहते हैं कि इसी दिन भगवान विष्णु ने धन्वंतरि वैद्य के रूप में अवतार धारण किया था। इसी उपलक्ष्य में आयुर्वेदिक संस्थानों में यह दिन धूमधाम से मनाया जाता है। किन्तु उत्तर भारतीय जन मानस ने इसे धन की देवी 'लक्ष्मी' से स्वत: ही जोड़ दिया है, जिसमें धन्वंतरि शब्द की आद्याक्षरी (ध+न) ने अधिक भूमिका निभाई है। त्रयोदशी की संध्या को


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग बाज़ार से नए बर्तन ख़रीद कर लाते हैं, जो कि कार्तिक की अमावस्या की रात्रि को 'दीवाली' के पूजन के समय पूजा-स्थल पर सजाए जाते हैं।

## भित्ति-चित्र

कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को 'छोटी दीवाली' कहा जाता है। इस रात्रि को पूजा स्थल पर रखी हटरियों पर केवल दीपक जलाकर चावल की खीलों से लक्ष्मी-गणेश का पूजन कुछ सनातन धर्मी परिवारों में होता है। हरियाणा में कार्तिकी अमावस्या के पूजन हेतु 'लक्ष्मी जी का भित्तिचित्र' अंकित किया जाता है। यह चित्र गेरु से दीवार पर चीता जाता है। एक-डेढ़ फुट के आकार के इस चित्र में दो हाथ और दो पैरों वाली एक स्त्री के चित्र का धड़ चौकोर होता है, जिसमें स्वस्तिका, नारियल युक्त कलश (घट-स्थापन) शंख, कमल, फूल आदि के साथ 'शुभ लाभ' एवं 'श्री महालक्ष्मी पूजनम्' शब्द विशेष रूप से लिखे जाते हैं। आजकल कुछ लोग ऐसा चित्र काग़ज़ पर बनाकर दीवार पर भी चिपकाकर काम चला लेते हैं।

पंजाब के जिन घरों में कार्तिक कृष्ण अष्टमी को 'अहोई' का काले रंग का 'थापा' (Folk Painting) लगता है, वहाँ की गृह-लक्ष्मी सफ़ेदी में अपनी उँगलियाँ डुबोकर दीवार पर इस तरह लगाती है कि अहोई का कालिमा पूर्ण डरावना रूप ढक जाए। कुछ घरों में कोई भित्ति चित्र बनाने की बजाय लक्ष्मी-गणेश का बाज़ार से ख़रीद कर लाया गया चित्र लटका कर ही दीवार की शोभा बढ़ाई जाती है।

## दीवाली की हटरियाँ

पूजा स्थल पर "हटरी" को देखकर सामान्य जनता दीवाली का संबंध व्यापारियों से जोड़ देती और इसे वैश्यों का त्योहार भी कहा जाता रहा। किन्तु मध्यकालीन कृष्ण भक्तों ने अपने आराध्य श्याम सुंदर के हटरी में विराजमान होने की कल्पना की है, यथा :

(क) सुरभी काह्न जगाय सरिकहि बल-मोहन बैठे हैं हटरी।
(सूरदास : सूर सागर. दशम स्कंध. पद 810)

(ख) हटरी बैठे श्री ब्रजनाथ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने संग सखा सब लीने, बाँटे मेवा हाथ।
भाँति-भाँति पकवान मिठाई, विधि सो धरे बनाई।
चलो सखी देखन को जैये, सुख सोभा अधिकाई।।

(नंददास ग्रंथावली, पृ० 334)

संभवत: भगवान कृष्ण के इस दुकानदार रूप की कल्पना के आधार पर उनकी दुकान पर सजे पकवानों के समान 'दीपावलि' के अवसर पर पूजा-स्थल पर 'हटरी' धरने और उन्हें पकवान से भरने की प्रथा उत्तर भारत में चल पड़ी। लक्ष्मी जी ठहरीं भगवान् विष्णु की पत्नी। भगवान राम और भगवान कृष्ण दोनों ही विष्णु का अवतार हैं। भगवान राम के राज्याभिषेक का महोत्सव 'दीवाली' और लक्ष्मी-पूजन का पर्व 'दीवाली' भारतीयों की समन्वय भावना की सूचना देते हैं तो राम और कृष्ण की एकरूपता पर मोहित लोक कल्पना में 'हटरी' की महिमा उपजना एक स्वाभाविक तथ्य है।

आज से पचास वर्ष पूर्व नाइन और नाई का विशेष सामाजिक महत्त्व था। वे लोग उच्च कुलीनों के शुभकार्यों और शोक की घड़ियों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। पंजाब में दीवाली के पूजा-स्थल पर रखी जाने वाली 'हटरी' अपने-अपने यजमानों के घर 'छोटी दीवाली' (कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी) की शाम तक नाईन पहुँचा देती थी। साधारणतया 'हटरी' चिकनी मिट्टी से बनाई जाती थी। उसका आगे का द्वार खुला रखा जाता था और दाएँ-बाएँ तथा पीछे सरकंडे की पतली सींखें इस प्रकार मिट्टी में जड़ी जाती थीं कि वे झरोखों का रूप धारण कर लें।

ये हटरियाँ परिवार के प्रत्येक पुत्र के लिए अलग-अलग रखी जाती थीं। यदि परिवार में उस वर्ष नए बालक का जन्म हुआ हो तो हटरी की सींखों के साथ रंग-बिरंगे चमकीले काग़ज़ भी लपेट दिए जाते थे। पूजा-स्थल की चढ़ावे की सामग्री की भागीदार ब्राह्मणी के साथ-साथ नाईन (Baber's Wife) भी होती थी। उन दिनों नाई और नाइन का नाम न यजमान परिवार का आयु में बड़ा व्यक्ति ही लेता था और न ही छोटा। उन्हें क्रमश: 'राजा' और 'रानी' पुकार कर 'श्रम-गौरव की महिमा' (Dignity of labour) का सत्कार किया जाता था। दीवाली के चढ़ावे में पंडिताइन एवं नाइन को बराबर की हकदार मानकर


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँच-नीच का भेद मिटाने का मंजुल प्रयास होता था। नाइन को प्रत्येक परिवार में नया बालक आ जाने पर उसका 'लाग' (दक्षिणा) बढ़ जाती थी। इसीलिए वह भी पंडिताइन की भाँति यजमान स्त्रियों को 'दूधो नहाओ पूतों फलो' के आशीर्वाद से निहाल कर देती थी।

पुत्रहीन महिला या अनेक बेटियों की माता कई बार लक्ष्मी जी से प्रार्थना करती है कि यदि अगले वर्ष उसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति हो जाए तो वह उसका पूजन 'चाँदी की हट्ट(री)' से करेगी। मनौती पूरी होने पर परिवार अपनी हैसियत के अनुसार छोटे, मझोले अथवा बड़े आकार की चाँदी की हटरी सुनार से बनवाकर अपना वचन निभाता है। फिर भी नाइन अपने लाग से वंचित नहीं होती। किन्तु पिछले कुछ वर्षों से नाई अपना जन्मजात पेशा छोड़ते जा रहे हैं और वे अपने को नाई या नाइन (राजा अथवा रानी) कहलाना पसंद नहीं करते। अत: लोग बाज़ारों में सजी कुम्हारों की दुकानों से मिट्टी की पक्की हटरियाँ ख़रीद लेते हैं। नाइन की हटरी टूट जाने पर घूरे पर नहीं फेंकी जाती थी, बल्कि उसकी मिट्टी चूल्हा पोतने के 'पोचे' में काम लाई जाती थी।

अब हर वर्ष कुम्हार से नई हटरी ख़रीदने का रिवाज अधिकतर घटता जा रहा है। कम ख़र्च में कुशल गृहिणी पुरानी हटरी को ही हर बार सफ़ेदी से पोत कर दीवाली के दिन सजा लेती है। नाइन की हटरी की तरह इसमें दीया रखने का स्थान बना होता है। उस पर तेल के भरे दीपक रखे जाते हैं और परिवार के सब से बड़े सदस्य की हटरी पर शिखरनुमा स्थल पर घी का दीपक तथा चारों कोनों में सरसों के तेल के दीए जलाए जाते हैं।

दीवाली से कुछ दिन पहले ही घर में पकवान बनने शुरू हो जाते हैं। जो लोग पुराने ढंग की मठरी, गुझिया और शकर पारे पसंद नहीं करते या सेवा रत स्त्रियाँ घर पर ऐसे पकवान तैयार नहीं कर पातीं, तो बाज़ार से मिठाइयाँ ख़रीद लाते हैं। आम तौर पर प्रत्येक हटरी में सुपारी, पान, मिठाई के एक-दो टुकड़े, और खाँड के खिलौने डाले जाते हैं। अधिकांश परिवारों में लड्डू और जलेबी का 'शगुन' माना जाता है और ये मिठाइयाँ हटरी में अवश्य धरी जाती है।

सुपारी दक्षिण भारत में उगती है, पान पूर्वी भारत की उपज है और मिठाइयों का आस्वादन तो समूचा भारत करता है। अत: पूजा-स्थल पर पूर्व,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण का समन्वय बड़े सुंदर ढंग से किया जाता है। दीवाली की रात के भोजन के लिए कई परिवारों में 'बैंगन' और 'मूली' की रली-मिली सब्ज़ी बनाने का रिवाज है। बड़ी बूढ़ियाँ कहा करती हैं कि बैंगन की तासीर गर्म होती है और मूली की ठण्डी। अब गर्मी विदा हो रही है और सर्दी आ रही है, ऋतुओं के मिलन-स्थल पर ही 'दीवाली' आती है। फिर बैंगन का रंग होता है 'काला' और मूली का 'सफ़ेद'। काला दु:ख एवं शोक का प्रतीक वर्ण है तथा सफ़ेद शीतलता, सुख एवं शांति का। अत: बैंगन एवं मूली मिश्रित व्यंजन हमें सुख-दु:ख में एक-समान स्वस्थचित्त रहने की प्रेरणा देता है।

दीवाली का पूजन प्राय: खीलों से होता है। पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों में भुने अन्न को 'फुल्लियाँ' कहते हैं। भुने चावल ही खीलें कहलाते हैं। अत: लक्ष्मी जी तथा रामचन्द्र जी का नाम लेकर पूजा में भाग लेने वाला प्रत्येक सदस्य हटरियों पर खीलें (फुल्लियाँ) बरसा कर अपने परिवार के फलने-फूलने की प्रार्थना मन-ही-मन करता है। पूजा के बाद बालक, युवक और प्रौढ़ हटरी का सामान अपनी-अपनी झोली में प्राप्त करते हैं।

हटरी खाली रखना अपशकुन माना जाता है। उसमें एक अखरोट, सुपारी या खांड का खिलौना अवश्य छोड़ दिया जाता है। 'हटरियाँ' भाई दूज के बाद कार्तिक शुक्ला द्वितीया को 'बढ़ाई' जाती हैं। 'हटरी हटाना' उक्ति का प्रयोग अपशकुन माना जाता है। अत: उसके स्थान पर शुभ-सूचक 'हटरी बढ़ाना' की उक्ति ही बहुधा प्रचलित है। जिन बहनों के भाई दूरी के कारण 'भैया दूज' का टीका लगवाने पहुँच नहीं पाते, वे "हटरी" को टीका लगाकर अपने भैया की मंगल-कामना कर लेती हैं। मिट्टी की हटरियों की जगह अब लकड़ी या प्लास्टिक की हटरियाँ और बिजले से जलने वाले छोटे बल्बों वाली हटरियाँ चल पड़ी हैं। उन पर सरसों के तेल या घी से भरे दीपक अथवा मोम बत्तियाँ भले ही न जलाई जाएँ फिर भी दीवाली का प्रसाद रखने और भैया दूज का टीका लगाने की प्राचीन परंपरा को माताओं तथा बहनों ने अभी तक सजीव रखा हुआ है।[21]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## राजस्थान की दीवाली

राजस्थान में दीपावली के पूजन हेतु गृह-स्वामिनी द्वारा लोक चित्र-निर्माण की महती परंपरा विद्यमान है। लोक रुचि के अनुरूप इन थापों में अंतर आना एक स्वाभाविक तथ्य है। कुछेक थापों का विवरण प्रस्तुत है :

(i) दीपावली के दिन सुबह के भोजन के बाद गृहणियाँ घर को धो-पोंछ लेती हैं। फिर रसोई, पूजा-स्थान, आंगन तथा मुख्य द्वार पर लक्ष्मी जी के चरण चिह्न (पगला) एवं दीपक बनाती हैं। लक्ष्मी जी के 'पगले' मुख्य द्वार से पूजा-स्थल तक अंकित किए जाते हैं और प्रत्येक चरण चिह्न के साथ दो-एक सिक्के भी चित्रित किए जाते हैं। मानो लक्ष्मी जी रुपयों की वर्षा करते हुए पूजा-स्थल में प्रवेश कर रही हों। पूजा स्थल पर लक्ष्मी जी के पद-चिह्न को एक मान के बीच सजाया जाता है। उसके आस-पास स्वस्तिका, दीपक और चाँद-सूरज भी एक चौकोर में बनाए जाते हैं। चौकोर मानो एक घर हो और इसके नीचे की रेखा बीच से कटी होने के कारण गृह-द्वार की सूचक होती है।

(ii) कुछेक परिवारों में पहले गेरु से चौकोर घर बनाया जाता है और उसमें दीपक, स्वस्तिका, लक्ष्मी जी के 'पगले' (दो चरण चिह्न) आदि कली-चूने से अंकित किए जाते हैं। इसी तरह की आकृति पूजा-स्थल पर बनाकर उस पर लकड़ी का 'पाटा' (पटरा) धर दिया जाता है। पटड़े पर कपड़ा बिछा कर उस पर साबत सूखे चावलों से कमल का फूल बनाया जाता है और उसके ऊपर लच्छमी (लक्ष्मी) जी के साथ बनी गणेश जी एवं सरस्वती जी की (त्रिमूर्ति) सजा दी जाती है। इस त्रिमूर्ति के समीप ही नीचे की ओर एक हटरी सजा दी जाती है।

यदि उस वर्ष में परिवार के किसी पुत्र का विवाह हुआ हो तो 'चाँदी की हटरी'' उसके ससुराल वाले विशेष रूप में भेजते हैं। इसके अगले सालों में विवाहित पुत्रों के ससुराल से मिट्टी की हटरी भेजने की प्रथा है। पुत्रों की शादी से पहले इस प्रकार की हटरी माँ के पीहर से ही आती है। पुत्र-विवाह के बाद उनके ननिहाल से हटरी आना बंद हो जाता है। पूजा-स्थल पर रखी हटरियाँ चार खणी, छह खणी और आठ खणी होती हैं। हटरी के ये चतुर्कोण, षट्कोण


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा अष्टकोण दीपक रखने के लिए बनाए जाते हैं।

हटरी चाहे एक हो अथवा गिनती में अधिक, उसे बताशों और खीलों से भर दिया जाता है और उस पर दीपक प्रज्वलित कर दिए जाते हैं। कुमकुम छिड़क कर "लच्छमी जी के पगलों" के बाद त्रिदेव मूर्ति तथा हटरी-पूजन किया जाता है। फिर आरती के पश्चात् सभी पारिवारिक सदस्यों को तिलक-बिंदी लगाई जाती है और इच्छानुसार पटाखे छोड़े जाते हैं। तदनंतर हटरी से खीलें तथा बताशे निकाल कर पूजा-स्थल पर विराजमान सभी स्त्री-पुरुषों को 'प्रसाद' बाँट दिया जाता है। मिट्टी की हटरी दो-एक दिन बाद बच्चों के खिलौने के रूप में काम आती है।

उस दिन घर में बने पकवानों के अतिरिक्त बाज़ार से लाई गई मिठाइयाँ भी परिवार के सदस्यों को भेंट की जाती है। कई घरों में पूरी-कचौड़ी की जगह चावल, कंढ़ी और मीठी लाप्सी बनाने की प्रथा है, जिसे "कच्ची रसोई पकाना" भी कहा जाता है। जयपुर में "दीपोत्सव" के उपलक्ष्य में व्यापारिक संगठनों द्वारा सामूहिक सजावट भी की जाती है कई जगह जगमगाते बिजली के बल्बों से द्वार सजाते जाते हैं और दुकानों तथा पास के पौधों पर रंग-बिरंगे लट्टुओं (बल्बों) की झालरें भी लगाई जाती हैं। घुमंतु रोशनी वाले बल्ब लगवाने के लिए सजावटी सामान के साथ कुशल कारीगरों को कलकत्ता, इंदौर, ग्वालियर, आगरा तथा दिल्ली से भी आमंत्रित किया जाता है। सजावट की होड़ की भाँति विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ "स्नेह-मिलन" आयोजित करके अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम संपन्न करके एक-दूसरे से बाज़ी मारने पर तुल जाती हैं।

## लोक-गीत एवं लोक-क्रीड़ाएँ :

राजस्थान में दीवाली से लगभग दो सप्ताह पहले लड़के एवं लड़कियाँ अपनी-अपनी टोलियाँ बनाकर गली-मुहल्लों में घूमते हैं। इस अवसर पर लड़के "लोवड़ी" और "हरणी" लोकगीत गाते हैं। लड़कियों द्वारा गाए जाने वाले लोकगीतों को 'घुड़ल्यो' कहा जाता है। दीपावली की रात्रि को कई जगह "रतजगा" का रिवाज भी है। इस रात्रि-जागरण में महामाया तथा श्यामजी के गीत भक्तिमय वातावरण को माधुर्य प्रदान करने में सहायक होते हैं। लक्ष्मी-पूजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पश्चात् पुरुषों द्वारा हिंडोले भी गाए जाते हैं। कुछ परिवारों में दीवाली की रात्रि को वंश की कुलदेवी का पूजन भी होता है, जिसे 'माता पूजन' कहा जाता है।[22] इस मौके पर माता के गीतों और भजनों का गायन बड़े मधुर स्वर में और कई बार वाद्य संगीत के साथ किया जाता है। कई जगह भैंसे की बलि देने की प्रथा भी रही है, जिसका उल्लेख एक लोकगीत में इस प्रकार हुआ है :

"काली तो भैंसो म्हे मारसाँ, अमावस री हीरे रात।"

राजस्थान के कुछ गाँवों में गणेश-लक्ष्मी की आरती की जगह अवसरोपयोगी लोकगीत भी गाए जाते हैं, जिसमें पूजा-स्थल पर विद्यमान वस्तुओं का उल्लेख होता है। ऐसे एक लोकगीत का रसास्वादन कीजिए :

सोने रे म्हे दिवलो घडास्यां,
रेसम वाट वटास्यां जी।
च्यार वाटरो चौमुख दीवो,
घी सूँ म्हें पुरवास्यों जी।
चाँदी री थाल मेल म्हारो दिवलो,
रंग महल ले जास्याँ री।
महीं महीं वाट, सुरंग म्हारो दिवलो,
रंग महल जगवास्याँ जी।

चौकोने वाले चार बत्तियों से जगमगाते, सोने के बने दीपकों से भरी चाँदी की थाली उठाने की युवती की साध भले ही आज की कमर तोड़ मंहगाई के युग में पूरी न हो, फिर भी "जब तक साँस तब तक आस" पर विश्वास रखने वाली राजस्थान की छोहरियाँ ऐसे मनोरंजक लोकगीत गाने से नहीं थकतीं। कई जगह नव विवाहिताएँ अपने अमर सुहाग के लिए घी का दीपक जलाकर "माता जी" की अनुकम्पा की याचना भी करती हैं, यथा :

म्हारी माता रे घी भर दिवलों,
कुण संजोवे अे मायं।
संजोवे अे म्हारी बहु सोवन दे,
अमर चूड़े सुहाग अे माय।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसलमेर में ज्वार-बाजरे के सिट्टे पर कपड़ा बाँध कर उसे तेल में डुबो लिया जाता है और उसे मशाल की तरह जलाकर चलते समय अपने देश पर बलिदान होने वाले 'तेजा जी' जैसे देश भक्तों के नाम लिए जाते हैं। विभिन्न दिशाओं से आते हुए लोग चौक विशेष में एकत्र होकर एक दूसरे को मुकाबले के लिए पुकारते हैं।

कई गाँवों में भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ होती हैं। कहीं ऊँटों की दौड़ और कहीं छकड़ों की। 'कुणेज' पेड़ रावत राजपूतों में से चौहान, परिहार, गहलोत एवं पंवार का कुल-वृक्ष माना जाता है। इसी के नाम पर बसे पाली ज़िले के "कानूजा" गाँव में दीपावली की शाम को और अगले दिन 'बैल भड़काने' की प्राचीन परंपरा है। यह परंपरा देवी की पूजा एवं शक्ति-प्रदर्शन हेतु आरंभ हुई थी। इस उत्सव हेतु बैलों की जोड़ी को सजाकर उनके सींगों पर नारियल, फल और धन-राशि बाँध दी जाती है। विधिपूर्वक पूजा के बाद एक मैदान में ऐसे सैंकड़ों बैलों को ढोल-नगाड़ों के शोर और लोगों के हो-हल्ले के साथ भड़काया जाता है। कई तमाशबीन जान को खतरे में डाल कर बैलों पर बंधी सामग्री लूट कर अपना शौर्य-प्रदर्शन करते हैं।

## अमृतसर की दीवाली

"बंदी छोड़ दाता" गुरु हरिगोविंद जी के उदारता पूर्ण कृत्य के बाद अमृतसर और विशेषत: 'दरबार साहिब' की दीवाली की महत्ता और अधिक बढ़ गई है। दूर-दूर से आए हुए श्रद्धालु सिक्ख तथा हिन्दू दीवाली की सुबह 'हरिमंदर साहिब' के सामने वाले सरोवर में स्नान करके 'दरबार साहिब' के दर्शन करते हैं। रात्रि में पवित्र गुरुद्वारा साहिब के परिसर में खूब रोशनी की जाती है, जिसमें दरबार साहिब के भीतर टंगे 'चंदोवे' (Canopy) के हीरे, पन्ने, जवाहर और मोतियों के रंग अत्यंत झिलमिलाते हैं। यह 'चंदोवा' हैदराबाद के निज़ाम ने महाराजा रणजीत सिंह को भेंट किया था। उदार राजा ने इसे श्रद्धावश "दरबार साहिब" को अर्पित कर दिया था। पंजाबी में 'चंदोवा' को 'चाननी' कहते हैं और 'शोभा' को "जलौ"। अत: दरबार साहिब के "जलौ" (जलवा: शोभा) के दर्शन करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
एक मुहावरा ही बन गया है। दीवाली से एक सप्ताह पहले और एक सप्ताह बाद तक चलने वाले एक पशु-मेले का आरंभ भी महाराजा रणजीत सिंह ने किया था। इसमें दूर-दूर के सौदागर दुधारू गायें, भैंसें और सुंदर घोड़ों जैसा अपना माल बेचने के लिए पहुँचते हैं। पंजाबी लोकोक्ति 'पुन्न दा पुन्न, फलीआँ दीआँ फलीआँ" के अनुसार वे श्री हरिमंदर साहिब के सरोवर में स्नान तथा दरबार साहिब के दर्शनों के साथ-साथ एक पखवाड़े में खूब धन कमा लेते हैं। इस प्रकार उनकी आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों ही दृष्टियों से मानसिक तुष्टि हो जाती है।

## कुछ स्थानीय लोकोपचार और राग-रंग

हरियाणा के कुछ गाँवों में 'दीवाली' को 'गिरड़ी' कहा जाता है। इसी उपलक्ष्य में कार्तिक अमावस्या को दीपमाला की जाती है। शाम होते ही युवक-मंडली 'हीड़ो' में बिनौले डालकर अन्य घरों से उसमें तेल मांगने जाते हैं। लड़कियाँ भी 'तूमड़ी' में दीपक जलाकर अपने मुहल्ले के दूसरे घरों से पैसे लेने जाती हैं। 'तूमड़ी' (तूँबड़ी) एक सकोरेनुमा मिट्टी का बर्तन होता है, जिसके अंदर चारों ओर झिरियाँ बनी रहती हैं। इसे पंजाब में 'गढ़बढ़ा' कहते हैं, जिसका उपयोग इसी कार्य के लिए बालक-बालिकाएँ आश्विन पूर्णिमा तथा दीवाली के दिन करते हैं।

रात्रि होते ही काँसे की थाली में दीपक सजा दिए जाते हैं। घर का बड़ा-बूढ़ा उन दीयों के बीच में चाँदी या सोने का कोई सिक्का रखता है, जो कि लक्ष्मी जी का प्रतीक होता है। इस सामग्री पर खीलें बिखेरे जाने के बाद देवी देवताओं के नाम पर एक दीपक पीपल के पास, दूसरा तुलसी के निकट और तीसरा चौराहे पर रख दिया जाता है। तदनंतर पशुओं की नाँद, कुएँ की मुंडेर, घर की नाली, सीढ़ियों और यदि मकान में संडास हो तो वहाँ भी तेल से भरा एक-एक दीपक जलाकर धर दिया जाता है। छोटी दीवाली के दिन पूजा-स्थल पर लाकर रखी गई 'हटरी' की पूजा भी 'गिरड़ी' की रात्रि को की जाती है। पंजाब की तरह 'हटरी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सजाई गई मिठाई, मेवे, पान आदि परिवार के सदस्यों को पूजा के बाद बाँट दिए जाते हैं।

गिरड़ी वाले दिन जो लोग 'दीवाली-पूजन' करते हैं, उनके घरों में सादा भोजन ही बनता है। उन लोगों का मत है कि पकवान तो 'गोवर्द्धन पूजा' के त्योहार पर अगले दिन ही बनने चाहिएँ। किन्तु वे 'गोवर्द्धन पूजा' को दीवाली का दिन ही कहते हैं। फिर भी कई ऐसे गाँव हैं, जहाँ के निवासी 'गिरड़ी' को 'छोटी दीवाली' कहते हैं और 'हीड़ो माँढ' गोवर्द्धन पूजा को।[24] एक हरियाणवी लोकोक्ति भी है :

"हीड़ो-माँढा तू बड़ा।
तत्तै बड़ा न कोय।"

संभवत: मंदिरों और देवालयों में पकवान का बड़ा ढेर लगाने के कारण ही इस कहावत का जन्म हुआ है। 'धन तेरस' के दिन जो नया बर्तन हरियाणावासी खरीद कर लाते हैं, उसकी पूजा भी लक्ष्मी जी के साथ की जाती है। पंजाब में बहुत से लोग दीवाली की रात को ज़मीन पर ही बिस्तर लगाकर सोते हैं। रात्रि भर दीपक जलते रहें ; अत: उन्हें तेल से खूब भर देते हैं। नींद खुलने पर देखते हैं कि दीपक की बत्ती और तेल उचित मात्रा में है कि नहीं। कुछ लोग रात्रि-जागरण भी करते हैं। किन्तु जो ऐसा करने में असमर्थ हों वे पूरे घर के अथवा पूजा वाले कमरे के दरवाज़े रात भर खुले रखते हैं। ऐसा लोक विश्वास है कि जिस घर के दरवाज़े बंद हों और अंधेरा हो, वहाँ से लक्ष्मी रूठ कर लौट जाती है।

पटियाला ज़िले (पंजाब) के तसौली गांव में ब्राह्मण परिवार दीवाली की प्रात: स्नान करके और बिना कुछ खाए-पीए "दोघड़ा-पूजन" करते हैं। ज़मीन को गोबर से लीपकर उस पर हलदी अथावा रोली से "सतिया" (स्वस्तिका) बना लेते हैं। यदि गोबर न मिले तो आंगन को कपड़े से साफ करके "सतिया काढ़ा" जाता है। स्वस्तिका पर दो घड़े पानी से भर कर रख दिए जाते हैं। दोनों घड़ों को "ठूठी" (मिट्टी के ढक्कन) से ढाँप दिया जाता है। एक घड़े के ढक्कन में अखरोट, खांड के खिलौने,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खीलें, जलेबी और लड्डू (या कोई) फल रख दिया जाता है। किन्तु सभी पदार्थों की कुल गिनती पाँच होना अनिवार्य है। यह सामग्री परिवार के पुरोहित (विशेषत: ब्राह्मणी) को दी जाती है।

दूसरे घड़े की ठूठी पर काँच की दो या चार चूड़ियाँ, महंदी, पाँच मिठाइयाँ और रुपया-सवा रुपया रखे जाते हैं। यह सामग्री भी दूसरे घड़े पर रखी गई सामग्री के साथ गृह-स्वामी "परिवार की सतियों" के नाम पर मनसता है। ठूठी का यह सारा सामान घर की बेटी को दे दिया जाता है, मानो उसके जीवन भर सती-साधवी बने रहने की शुभ कामनाएँ पिता की ओर से भेंट की जा रही हों। पानी से भरा यह घड़ा एक-दो मिठाइयों और कुछ रुपयों के साथ मंदिर में भेज दिया जाता है। उस दिन परिवार द्वारा दोपहर के भोजन में छिलके वाली उड़द की दाल की खिचड़ी का सेवन अत्यावश्यक होता है।

श्रीनगर और उसके आस-पास के कुछ क्षेत्र के काश्मीरी पंडित दीवाली-पूजन एक थाली में फूल, धूप-बत्ती और कुछ मिष्टान्न सजा कर करते हैं। पूजन से पूर्व परिवार के सदस्यों की दाईं कलाई पर मौली का धागा बाँधा जाता है। नौकरी-चाकरी के कारण उत्तर भारत के मैदानी इलाकों के लोग भी पूजा-अर्चना के लिए "हटरी" की जगह थाली का उपयोग करके "जैसा देश, वैसा वेश" की उक्ति को चरितार्थ करते हैं।

## होली

चांद्र वर्ष के फाल्गुन मास की शुक्लपक्षीय पूर्णिमा को मनाए जाने वाले त्योहार को 'होली' अथवा 'होलिकोत्सव' के नाम से अभिहित किया जाता है। चैत्र की प्रतिपदा से नव वर्ष का आरंभ दान-दक्षिणा से किया जाता है तो वर्ष का अन्त भी हास्य-विनोद से ही होना चाहिए। इस लिए सारे वैर-विरोध और ऊँच-नीच के भेदभाव की होली जलाकर 'होली है, होली है' की पुकार से यही सद्भावना चिह्नित की जाती है। संस्कृत साहित्य में नाटक-रचना दु:खान्त नहीं होती, प्रत्युत् सभी नाटकों का सृजन सुखांत हुआ है। भारतीयों की इसी "सर्वेभवन्तु सुखीना" की मनोभावना द्वारा इस होली पर्व के साथ हमारे जीवन के एक वार्षिक नाटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सुखांत-पूर्ति की ओर भी बड़ा रहस्यमयी संकेत मिलता है।

## पौराणिक गाथाएँ और विधि-विधान

ईश्वर भक्त प्रह्लाद भगवान विष्णु को परम आराध्य मानते रहे। उनके पिता हिरण्यकश्यपु को यह बात पसंद न आई तो पिता ने पुत्र को जलाने का निश्चय कर लिया। इस कार्य में भाई को सहयोग देने के लिए हिरण्यकश्यपु की बहन होलिका आगे बढ़ी। उसने अपने भतीजे को गोद में बैठा लिया। किन्तु जो अग्नि बालक प्रह्लाद को जलाने के लिए प्रज्वलित की गई थी, उसमें उसकी बूआ होलिका जल गई और ईश्वर भक्ति के कारण प्रह्लाद जी का बाल भी बाँका न हुआ।

अधिकांश लोग इसी परिप्रेक्ष्य में होलिकादहन करते हैं। किन्तु उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के कुछ भागों में इसकी तैयारी और अग्नि-प्रज्वलन तथा विसर्जन संबंधी कार्य जिस प्रकार होते हैं, उसका विवरण और महत्त्व एक विद्वान् ने इन शब्दों में प्रकट किया है :

(क) होली के उत्सव पर पंचमी से लेकर दस दिन तक ईन्धन की चोरी का विधान है। पूर्णिमा के दिन चाण्डाल या सूतिका (जच्चा) के घर से बच्चों के द्वारा आग मंगवा कर होली जलानी चाहिए। गाँव के बाहर या गाँव बड़ा हो तो मोहल्ले-मोहल्ले में खूब बाजे बजाकर और खूब दान देकर होली जलाई जाती है।

(ख) देशकाल बोलकर 'सकुटुम्बस्य मम ढुण्ढाराक्षसी प्रीत्यर्थ तत्पीडापरिहारार्थं होलिकापूजनमहं करिष्य – इस प्रकार संकल्प करके सूखी लकड़ी, कण्डे (उपले) आदि के ढेर के अंदर किसी पेड़ की डाल रोपकर –

अस्माभिर्भयसंत्रस्तैः कृता त्वं होलिके यतः।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते ! भूतिप्रदा भव ।।

यह मंत्र बोलकर "श्री होलिकायै नमः" इस मंत्र से षोडशोपचार पूजन करना चाहिए। प्रार्थना का मंत्र यह है :

वन्दिताऽसि सुरेन्द्रेण, ब्रह्मणा शंकरेण च।
अतस्त्वं पाहि नो देवि, भूते ! भूतिप्रदा भव ।।

फिर उस अग्नि की तीन परिक्रमा करके लोग निःशंक होकर, जिसको जो रुचे, वैसा स्वेच्छानुसार बोलें, गावे, हँसें।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) घी और दूध से होली की अग्नि को बुझाना चाहिए। नारियल और बिजोरे के फल बाँटने चाहिएँ। सारी रात्रि गीत-वादित्र से बितानी चाहिए। दूसरे दिन प्रातः काल यथेष्ट अश्लील बोलते हुए उस राक्षसी का विसर्जन करना चाहिए।[25]

## ढुंढा राक्षसी का प्रसंग :

यह सत्युग में राजा रघु के शासन काल की एक राक्षसी थी। उसके पिता का नाम माली राक्षस था। ढुंढा ने अपनी तपस्या से भगवान शिव को प्रसन्न करके यह वर प्राप्त कर लिया कि किसी भी देवता या दानव के शस्त्रास्त्र का उस पर दिन-रात, बाहर-भीतर तथा शीत, उष्ण एवं वर्षा ऋतु में कोई प्रभाव न हो। इस प्रकार भयमुक्त ढुंढा प्रत्येक ग्राम और नगर के बालकों को पीड़ा पहुँचाने लगी। गृहस्थी लोग जो पकवान अपनी रसोई में तैयार करते, उन्हें भी वह "अडाडा" शब्द करती हुई हड़प जाती। इसलिए लोग उसे 'अडाडा' के नाम से भी पुकारने लगे।

प्रजा ने ढुंढा राक्षसी के अत्याचारों से परेशान होकर राजा रघु से उसकी शिकायत की। राजा ने अपने पुरोहित वशिष्ठ जी से पूछा कि भयभीत जनता को राक्षसी की क्रूरताओं से कैसे बचाया जाए। संयोगवश शीतकाल निकल चुका था और अगले दिन फाल्गुन मास की पूर्णिमा थी। तब आज के विधि-विधान के अनुरूप अग्नि जलाकर बालकों ने लकड़ी की तलवारें खटखटाकर ढुंढा राक्षसी को भगा दिया। इसी उपलक्ष्य में बच्चों को गुड़ में पका अन्न खाने के लिए दिया जाता है, जिसे लोकभाषा में "ढूंढना" कहते हैं। जनश्रुति है कि इसके सेवन से बालकों के सभी रोग (दोष) शांत हो जाते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि यह कथा 'भविष्योत्तर पुराण' में वर्णित है।[26]

## विधि-विधान का हरियाणवी रूप

हरियाणा में होली का संबंध प्रह्लाद और उसकी बूआ होलिका के साथ जोड़ा जाता है। होलिका को वरदान स्वरूप लोमस ऋषि से एक शील वस्त्र प्राप्त हुआ था, जिसमें अग्नि का प्रवेश नहीं हो सकता था। किन्तु होलिका ने प्रह्लाद से दग़ा करके उस वस्त्र का दुरुपयोग किया, जिसका उल्लेख एक हरियाणवी लोकगीत में इस प्रकार हुआ है :-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोदी के अंदर भगत राम राम रहा टेर
जब से चरचा सुणी थी हर की राम नाम की लगी लगन
समझाया था एक ना मानी दरसन की थी लगी लगन
हरिणाकस नै नायं सुहाया क्रोध की अग्नि लगी जलन
निर्भय हो कै भजा भगत ने भै की भूतणी लगी भगन
होलकां ले गोदी में बैठी फूँक जला द्यूँ ढेर
गोदी के अंदर भगत राम राम रह्या टेर
होलकां का एक सील वस्तर था, लोम रिसी से पाया था
जिस में अगनी परवैस हुवै न यो ह्या कथा में गाया था

× ×

चौगरदे कै चिता चिणा के जिस के बीच में दई अगन
जद वा अगन जारी हुई थी चन्दन लकड़ी जलन।

× ×

गोदी के अन्दर भगत राम राम रह्या टेर।
मुलतान सहर के सब सजनां नै अगनी में माला गेर दई।
दीनानाथ बचा लड़के ने या संतों ने टेर दई।

× ×

ऐसी पवन चली जोर की चिता तो पाड़ बगाय दई
सील वस्तर को उथल पुथल के लड़के पे उढाय दई
दगा किसी का सगा नहीं सै समझेगा को सिंहणी का सेर
गोदी के अंदर भगत राम राम रहा टेर।

हरियाणा के कुछ गाँवों में होली से चालीस दिन पहले 'वसंत पंचमी' के शुभ अवसर पर एक निश्चित स्थान पर एक लंबी लकड़ी गाड़ दी जाती है। इसे लोक भाषा में "होली का डाण्ड्डा' कहते हैं, जो कि नारायण-भक्ति में दृढ़ प्रह्लाद भक्त का प्रतीक होता है। जंगल-पानी, या कृषि कार्य के लिए जाने वाले लोग तथा चरवाहे अपने घरों को लौटते समय कोई झाड़ी या पेड़ की कुछ शाखाएँ रोज़ ला-ला कर इस डंडे के इर्द गिर्द डालते रहते हैं। फाल्गुण की पूर्णिमा तक होली-दहन की यह सामग्री एक छोटी-सी पहाड़ी की तरह दिखाई पड़ने लगती है। प्रभु-भक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में अडिग प्रह्लाद जी का प्रतीक 'होली का डाण्ड्डा' इस ऊँचे ढेर में भी अपना सिर ऊँचा किए साफ़ नज़र आत है।

परिवार के बच्चों के लिए दर्ज़ी नए कपड़े तैयार करने लगते हैं और स्त्रियाँ अपनी नई 'चूँदड़ी' को ग़ोट लगाने और गहनों को 'रेत्ती' से माँजकर चमकाती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। लड़कियाँ गोबर से ढाल-बुड़कंले बनाती है और उन्हें धूप में सुखाती जाती हैं। युवक करील तथा जाल की लकड़ी काट कर उनसे 'खांड्डे' तथा तलवारें बनाते हैं और उन्हें अनेक रंगों में रंग देते हैं।

'होली' के दिन पूर्णिमा के कारण 'सत्य नारायण का व्रत' होता हैं। अधिकांश स्त्रियाँ उस दिन उपवास करती हैं और घर के काम-काज से समय निकाल कर बाल-बच्चों समेत सूर्य ढ़लने से पहले कभी भी होलिका-पूजन करने जाती हैं। चलने से पहले कन्याएँ 'ढाल-बुड़कलों' को रस्सी में पिरो लेती हैं। इस माला को 'जेल' या 'जेली' कहा जाता है। औरतें बढ़िया से बढ़िया 'तील' पहन कर कच्चा सूत और दाल-चावल संभाल लेती हैं और कन्याओं के हाथों में होती है ढ़ाल-बुड़कलों की जेली।'

गली-मुहल्लों से बीसों टोलियाँ अपना-अपना सामान उठाए यह लोकगीत गाते हुए 'होलिका' की ओर जाती हुई दिखाई पड़ती हैं :

के रै करण नै जौ बोए, के रै करण ने बाँस
हंसा बोलिए मेरे राम।
धर्मकरण नै जौ बोए, लाठी टेकन नै बाँस
हंसा बोलिए मेरे राम।
के रै करण नै धीय जन्मी, के रै करण नै पूत
हंसा बोलिए मेरे राम।
धीय जमाई ले गए, गए पूत पड़ोंसी होय
हंसा बोलिए मेरे राम।।

इन्हीं पंक्तियों को एक स्वर में दोहराती-तिहराती स्त्रियाँ गंतव्य स्थल पर पहुँचकर होलिका के ईंधन के ढेर पर कूकड़ी (लच्छी) से खींचकर कच्चा सूत लपेट देती हैं। तदनंतर कन्याएँ भी ढाल-बुड़कलों की सेल' (जेली/माला) होलिका की भेंट कर देती हैं और सभी मिलकर उसकी सात बार परिक्रमा करते हुए ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द बोलती हैं :

नवीन कुमार काट्टै जौ की बाली
ईश्वर पूरै होली रे
पूर पूर मेरी माँ के जाए
सब दिन खेल्लैंह होली रे।

इस प्रकार बहनें 'नवीन कुमार' अथवा उसके स्थान पर अपने अपने भाई का नाम जोड़कर प्रत्येक फेरे में यही शब्द दोहराती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक विवाहिता और कुमारी बहन होलिका जैसी कठोर दिल फूफी के पौराणिक प्रसंग के संदर्भ में ईश्वर से अपने भाई रूपी 'प्रह्लाद' (नवीन कुमार अथवा अन्य कोई नाम) की शुभ कामना की याचना करती हों। गोबर के बने 'ढाल-बुड़कलों की जेली' उन्हीं मंगल कामनाओं का भौतिक प्रतीक आभासित होती है। पूजन-परिक्रमा के उपरांत थाली में लाया गया दाल-चावल का सीधा ब्राह्मणी को भेंट कर दिया जाता है।

प्राय: सभी महिलाएं घर के काम-काज से निपट कर दिन के तीसरे पहर तक होली पूजन सम्पन्न कर लेती हैं। व्रत होने के कारण वे जलपान करके 'व्रत उपारण' करती हैं और मठरी, गुझिया, शकर पारे आदि पकवानों की तैयारी में जुट जाती हैं।

अब बारी आती है पुरुषों की। शुभ मुहूर्त के अनुसार रात्रि में किसी समय ग्राम-पंचायत का मुखिया होलिका-पूजन करने के पश्चात् लकड़ियों और जेलियों के ढेर को तीली दिखाता है। बाल-मंडलियाँ मानो साक्षात् 'प्रह्लाद' बनकर अवतरित हो गई हों। उनके हाथों में करील और जाल के बने "खांड्डे तलवारें पकड़ी हुई होती हैं, जैसे कि राक्षसी रूपा "होलिका" से वे दो-दो हाथ करने के लिए उमड़ पड़े हों। जैसे ही होली प्रज्वलित हुई और आतिशबाज़ी छूटने लगी तो बालकगण अपने खांड्डों-तलवारों की थोड़ी देर घुमा कर अग्नि को और भड़काने के लिए अपने शस्त्रास्त्र उसमें फेंक कर तमाशा देखने लगते हैं। लोक भाषा में 'होलिका दहन' को "होली मंगलाना" भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है "होली को मंगलमय रूप देना।"

होलिका की लपट जिस दिशा में जाती है, उसी के आधार पर आगामी वर्ष


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के शुभाशुभ का निश्चय किया जाता है। जब अग्नि खूब धधक उठती है तो उससे 'प्रह्लाद' रूपी डण्डे को निकालने का प्रयास युवक और बालक करते हैं। कई बार शरारती बच्चे बहुत गहरा गड्ढा खोदकर और उसमे ईंट-पत्थर डालकर डण्डे को इतना कसकर गाड़ देते हैं कि आग की लपटों से उसे खींचकर निकालना अत्यन्त कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में दूर से गीले रस्से फेंक कर 'प्रह्लाद' को उसमें फँसा लिया जाता है। ज़ोरदार झटके के कारण 'होलिका' की लकड़ियाँ इधर-उधर बिखर जाती हैं और नारायण-भक्ति में दृढ़ 'प्रह्लाद' को बचा लिया जाता है। देहात का एक वर्ग आग की लपटों के सेंक की चिंता किए बिना 'प्रह्लाद' की रक्षा के लिए तत्पर रहता है और शरारती बालक हुड़दंग मचाते हुए तमाशा देखते रहते हैं।

कुछ जगहों पर 'ढाल-बुड़कलों' के सूखे गोबर की आँच पर जौ और गेहूँ की बालें भूनते हैं और कुछ उन्हें जलते हुए ही लोहे के गज़ों में पिरोकर अपने-अपने घर ले जाते हैं। इनकी महिमा और अगले दिन रंगों के खेल 'फाग' या 'धुलैंहडी' के विषय में एक विद्वान ने लिखा है :

"कुछ जले हुए "ढाल बुड़कलों" को लोहे के गज़ों में पिरोकर घर ले चले। इस पवित्र भस्म को अनाज की बुखारियों तथा ठेक्कों में डालने का रिवाज है। उनका विश्वास है कि यह राख अनाज में 'बरकत' करेगी। भुनी हुई बालों के दानों को भी अन्न-भंडारों में डाला जाएगा – पावनता और समृद्धि के प्रतीक के रूप में। ढाल-बुड़कले की राख तो कई बीमारियों के उपचार में भी काम आती है।

नए वर्ष का सूर्योदय होता है 'फाग' या 'धूलैंहाडी' की गहमागहमी से। धूलैंहडी भी होली के त्योहार का ही एक अंग है। पहले दिन जहाँ कार्य-कलाप में धार्मिक गांभीर्य की पुट रहती है, वहाँ "धूलैंहडी" का स्वरूप बिल्कुल ही न्यारा रहता है प्रातः काल से ही धमा-चौकड़ी। .....बीर बानियों को आज ही तो गिन-गिनकर बदला लेने का अवसर मिला है। मुहल्ले के किसी घर में जुड़ बैठती हैं। नए-नए हथकंडे अपनाने पर मंत्रणा होती है। 'कोलड़े' बनाए जाते हैं ; कुछ तो कपड़े को बल देकर कोलड़ा बनाती हैं, पर अधिकांश स्त्रियाँ बैलों के रस्सों या दूध बिलोने वाले 'नेत्तों' से तैयार करती हैं – इसलिए कि मार जरा दोहरी


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़े।[29]"

प्राय: युवक देवर और युवती भाभी एक दूसरे के साथ रंग खेलते हैं। भाभी रंगों से बचने के लिए 'कोलहड़े' का प्रयोग भी करती है। पैंतरेबाज़ी में सफल बहू की खूब वाह-वाह होती है और पराजित युवक की थुक्का-फजीहत। दोपहर बीतने तक वातावरण और रंगीन हो जाता है। तब बारी आती है 'ताऊ' और 'काका' (चाचा) की। उन पर उनकी भाभियाँ रंग बरसाती हैं और कई बार कोड़ों (कोलड़ों) की बौछार भी करती हैं। फँस जाने पर उन्हें 'गुड़ की भेली' देकर अपनी जान छुड़ानी पड़ती है।

हरियाणा के बड़े नगरों और क़स्बों में लोग अपने-अपने मुहल्लों की 'होली' का निर्माण घर-घर से प्राप्त चंदे के पैसों से करते हैं। एक लंबी लकड़ी पर लटकते लाल झण्डे को लकड़ियों तथा उपलों के ढेर में खड़ा कर दिया जाता है, जिससे 'प्रह्लाद' की कल्पना करके 'होलिका' से बचाने का आयोजन देहातों की तरह ही होता है। रंगों का खेल अगले दिन होता है। उस समय गुलाल और अबीर बिखरने से ऐसा लगता है मानो मानव मात्र प्रकृति की होड़ में रंग-बिरंगा होने और दूसरों को रंगों में डुबाने के लिए कमर कस कर खड़ा हो गया हो। हरियाणा में 'होली' के दिनों में 'फाग' नृत्य होता है। महिलाओं और पुरुषों के 'फाग' नृत्य अलग-अलग होते हैं। स्त्रियाँ गाँव के किसी चौंक में एकत्र हो जाती हैं, जहाँ बिल्कुल एकांत होता है। वे लोकगीतों की स्वर लहरियों के साथ नृत्य करती हैं। इसी दौरान अनेक प्रकार के स्वांग भी किए जाते हैं। पुरुष इस नृत्य को नहीं देख सकते।

'धमाल राग' में गाए जाने वाले लोकगीतों और ढप या ताल के साथ किए जाने वाले नृत्य के कारण पुरुषों के 'फाग' नृत्य को 'ढप' या 'धमाल' नृत्य भी कहते हैं। महिलाएँ पुरुषों के नृत्य में भाग नहीं ले सकतीं, वे केवल उसे दूर से ही देखती रहती हैं। इन धमालों में इतिहास, पुराण, श्रृंगार एवं घरेलु वातावरण को दर्शाया जाता है। रामायण के प्रसंग से युक्त एक लोकगीत देखिए :

लिछमण करै बाणा लगा रे सकती लिछमन कै।
ऐसा रे होय कोई वीरा नै जिवाले।
आधा राज सवाई धरती। लिछमन कै .....
कै तो जिवाले सीता रै सतवंती,


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कै तो जिवाले हनुमान जती। लिछमन के .....
सत तै जिवाले सीता रै सतवंती
बूटी तै जिवाले हनुमान जती। लिछमन कै.....
बाण लगां रै सकती। लिछमण कै .....

सीता जी ने अपने सतीत्व की परीक्षा अग्नि में कूद कर दी थी, यह प्रसंग 'होलिका' के झूठ और सीता माता के सच्चेपन को और अधिक गहराता है। मुग़ल शासन के पश्चात् हरियाणा में मराठों का राज्य रहा और तदनंतर अंग्रेज़ों का। हरियाणवी 'फाग' में इस ऐतिहासिक प्रसंग को लोक गायकों ने बड़े सुंदर ढंग से श्रृंखलाबद्ध किया है, यथा :

होली बी खेलें ढपली बजा कै गलियाँ में उडए गुलाल।
कहियो मुरैटण सै होली खेलण आवे नवाब।
हंसलो घड़ावै फिरंगी को लड़को कठली घड़ावै नवाब।
क़हियो मुरैटण तै होली खेलण आवै नवाब।
ऐसी होली खेलो मिरगानैणी म्हारा साफा की रखियो ल्हाज।
कहियो मुरैटण तै होली खेलण आवै नवाब।
लहंगो सिंवावै फिरंगी को लड़को स्यालू सिंवावै नवाब।
कहियो मुरैटण तै होली खेलण आवै नवाब।
बाजू घड़ावै फिरंगी को लड़को लूमा जड़ावै नवाब।
ऐसी होली खेलो मिरगानैणी।
म्हारा साफा की रखियो ल्हाज।

स्त्रियों के लोकगीतों में कहीं मायके से ससुराल के लिए विदायगी और कहीं गोपियों के रूप में काह्न की शिकायत और कहीं होली के रंगों का उल्लेख भी हुआ है।

## पंजाब की होली तथा मोरंडे

पंजाब में रंगों की होली फाल्गुन की पूर्णिमा को दिन भर खेली जाती है। होली का हुडदंग मचाती टोलियाँ मित्रों एवं संबंधियों के घर-घर जाकर उन्हें रंग-बिरंगे गुलालों और रंगीन पानी की पिचकारियों से पूरी तरह रंग देती हैं। पंजाब में मुहूर्त निकलवा कर सामूहिक होली जलाने का रिवाज नहीं है। भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य भागों के विपरीत पंजाब में 'होलिका दहन' रंग खेलने के बाद होता है। फाल्गुन की पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रोदय होते ही लोग अपने-अपने घर में होली जला लेते हैं। पुराने समय में सरकंडे जलाकर होलिका-दहन किया जाता था। अब अधिकतर पुराने अख्बार और गत्ते जलाकर ही यह औपचारिकता निभा ली जाती है।

घर के आंगन में जलाई गई इस अग्नि की परिक्रमा सारा परिवार मिलकर चार बार करता है। हर चक्कर में प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने हाथ में थामे गुलाल का थोड़ा-थोड़ा अंश होली को भेंट करता जाता है। चार परिक्रमाओं के बाद परिवार का वयोवृद्ध पुरुषों के गाल पर थोड़ा सा गुलाल पोत देता है और उसकी पत्नी घर की अन्य स्त्रियों के माथे पर। फिर यही वयोवृद्धा सभी को होली के प्रसाद के रूप में 'मोरंडे' भेंट करती है।

पंजाब में 'होली' के मोरंडों का विशेष महत्व माना जाता है। यह मिष्टान्न तैयार करने के लिए त्योहार की शाम को भटियारे से गेहूँ भुनवा ली जाती है। फिर गुड़ की चासनी में यह गेहूँ डाल दी जाती है। चासनी ठंडी होने पर गेहूँ के दानों को मुटठी में भींच-भींच कर लड्डू बना लिए जाते हैं। इन्हीं लड्डुओं को 'मोरंडे' कहा जाता है। इस कार्य में पंजाबियों का उपयोगितावादी दृष्टिकोण, मनोवैज्ञानिक एवं पक्षी-प्रजनन-ज्ञान लक्षित होता है।

जीव-विज्ञान के अनुसार मोरनी अक्तूबर से अंडे देना आरंभ करती है और यह क्रम जनवरी तक चलता है। फिर एक महीने के अंदर अंडों से बच्चे निकल आते हैं। 'होली' का त्योहार अंग्रेज़ी साल के अनुसार मार्च महीने में आता है और इसके साथ ही चांद्र वर्ष की इतिश्री हो जाती है। नई फ़सल का गेहूँ आने में उस समय लगभग महीना-सवा महीना बाक़ी रह जाता है, क्योंकि 12-13 अप्रैल को आने वाले वैसाखी के त्योहार तक गेहूँ की फ़सल पक कर तैयार हो जाती है। कहीं इस नए अनाज को संगवाने के लिए घर की मालकिन को अपनी कोठड़ी के ढोल खाली करने की हड़बड़ाहट न पड़ जाए, इसी लिए भंडार में बचे हुए गेहूँ का सदुपयोग 'मोरंडों' के रूप में कर लिया जाता है।

मोरंडे गुड़ मिलाकर तैयार किए जाते हैं और मोदक के आकार की तरह गोल होते हैं। पंजाब में प्रत्येक शुभावसर पर अन्य मिष्टान्नों की अपेक्षा लड्डू


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँटने का विशेष महत्व है। अत: मोरनी के माँ बनने के आह्लाद में इंसानी माँ भी अपने मोंदकों को 'मोरंडे' की संज्ञा प्रदान करके अपने हर्ष का सामंजस्यं करती हुई दृष्टिगोचर होती है। इसके पीछे एक मनोवैज्ञानिक कारण भी निहित रहता है। मोर परिवार खेतों में पकी फ़सल को हानि पहुँचाने वाले कीड़े-मकौड़ों का भक्षण करके किसान के अन्न की रक्षा करता है। अत: नि:स्वार्थ भाव से ऐसे अन्न-रक्षक परिवार का स्मरण 'मोरंडों' द्वारा करके उनके प्रति वर्ष के सुखमय अंत के समय पंजाबी माताओं का रहस्यमय ढंग से आभार प्रकट करना अत्यन्त स्वाभाविक बात है।[32]

## आनंदपुर साहिब का "होला महोत्सव"

श्री गुरु गोविन्द सिंह ने सन् 1699 की वैशाखी को 'ख़ालसा पंथ' का सृजन किया था। उससे अगले ही साल सन् 1700 में उन्होंने "होला महल्ला महोत्सव" का शुभारंभ किया। देश के अन्य भागों में जब धूलैंहडी होती है, उसी दिन पंजाब के रोपड़ ज़िले के पवित्र स्थान आनंदपुर साहिब में रंगों की होली के स्थान पर शस्त्रास्त्रों के वीरता पूर्ण प्रदर्शन का पर्व (महल्ला) 'होला' मनाया जाता है। फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी को 'होला महल्ला' के आयोजन "कीरतपुर साहिब गुरुद्वारे" के सरोवर में स्नान के साथ शुरू हो जाते हैं।

चैत्र बदी प्रथमा को होले का समागम-स्थल आनंदपुर साहिब का कस्बा होता है। वहाँ पर तख्त केशगढ़ साहिब से एक जुलूस चलता है, जिसमें श्री गुरु ग्रंथ साहिब को एक पालकी में रखकर जुलूस के रूप में लाया जाता है। "पंज पिआरे" (पांच प्यारों) और बाजों-गाजों के साथ नीले चोगों में सुसज्जित, तलवार, भाले तथा ढालें धारण किए हुए निहंग सिंघ (सिक्ख) हज़ारों की संख्या में इस शोभा यात्रा में भाग लेते हैं।

निहंग सिक्ख शहीदी बाग़ स्थित 'निहंगों के डेरे' से गतके, भाले और तलवारों के करतब दिखाते हुए इस लोकपर्व को 'वीरों की होली' का रंग देकर 'होला' बना देते हैं। घुड़ सवार निहंग अपने प्रदर्शन दिखाते हुए जुलूस में सम्मिलित श्रद्धालुओं तथा आस-पास एकत्र हुए दर्शकों पर गुलाल भी फेंकते जाते हैं।

निहंगों की छावनी, गुरुद्वारा आनंदगढ़ साहिब के सामने ही है। वहाँ से होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जुलूस आनंदपुर साहिब कस्बे के बड़े बाज़ारों से लाँघता हुआ 'आगमपुर' ग्राम में पहुँचता है। यहीं पर गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने सूरमा सिक्खों के साथ पहली बार 'होला' खेला था, जिसकी स्मृति में यहाँ पर बने 'गुरुद्वारा होलगढ़ साहिब' की ओर जुलूस अग्रसर होता है। उसके पवित्र सरोवर के निकटस्थ मैदान में घुड़सवारी, अस्त्र-शस्त्र संचालन तथा तंबू गाड़ने की प्रतियोगिताएँ होती हैं।

रास्ते में पड़ने वाले माता जीतो जी, फतेहगढ़ साहिब तथा शीश गंज गुरुद्वारों के सामने भी जुलूस रुकता है और उसमें सम्मिलित होने वाले लोग इन पवित्र स्थानों पर मत्था टेकते हैं। अन्ततः यह जुलूस पुनः तख्त श्री केशगढ़ साहिब पहुँच जाता है और लोग गुरुद्वारों में "लंगर (दोपहर का प्रीतिभोज) छक" कर तथा मेला-बाजार से मालाएँ, कड़े, कंघे, पंचवाणियाँ (निराकार ईश्वर की स्तुति परक रचनाएँ) आदि खरीद कर अपने-अपने घरों को विदा होते हैं। ये धार्मिक वस्तुएँ वे अपने बंधु बाँधवों को भेंट करने हेतु ले जाते हैं।

उत्तर भारत के अन्य बहुत से गुरुद्वारों में भी इस दिन "दीवान" सजते हैं और लोग बड़े उत्साह से उनमें भाग लेते हैं।

## हिमाचल प्रदेश की होली

हिमाचल प्रदेश के गद्दी जन-जातीय क्षेत्र में 'होली' का त्योहार फाल्गुन की पूर्णिमा को मनाया जाता है। लकड़ियों के ढेर को पहाड़ी बोली में 'घियाणा' कहते हैं। उस समय हरणात्र नामक स्वांग भी होता है। इसलिए 'होली' को 'घियाणे' तथा 'हरण' का त्योहार भी कहा जाता है। होली जलाने के लिए लकड़ियाँ पूरे गाँव के एक-एक घर से एकत्र की जाती हैं। इससे इस त्योहार में एकता, मिलन एवं परस्पर प्रेम की पवित्र भावना झलकने लगती है।

सायंकाल होते ही 'होली' जलाने के बाद सभी लोग वहाँ आ कर पवित्र अग्नि की पूजा जल एवं धूप-दीप से करते हैं। होली की परिक्रमा करते समय उसे मक्की, सिपूलों तथा दूसरे भुने हुए अन्नों की आहुति दी जाती है। भुने हुए इन अन्नों को 'खड्डे' कहा जाता है। पूजा-आराधना के उपरांत 'खड्डों' का प्रसाद बंधु-बांधवों और होली के समीप उपस्थित लोगों में बाँट दिया जाता है। मानो पुराना अन्न समाप्त करके नए अनाज के लिए आशीर्वाद प्राप्त करने का उपक्रम हो।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गद्दी लोग चूल्हे के ऊपर जमी कालिख को 'करा' कहते हैं। होली की संध्या को गद्दी जाति की महिलाएँ चूल्हे की इस 'करा' को साफ़ करके किसी थाली में इकट्ठा कर लेती हैं और उसे होली को अर्पण कर देती हैं। एक गाँव अथवा बस्ती के लोग दूसरी जगह यह देखने जाते हैं कि किसकी होली का 'घियाणा' सब से बड़ा है। बड़े घियाणे से संबंधित होली वालों की उदारता की प्रशंसा भी की जाती है।

पूजा-स्थल पर एकत्र व्यक्ति किसी विशेष गाँव, घर अथवा मनुष्य पर "हो हो ! जोगिए (कोई भी नाम) के ढालुए के वराड़ तो" (जोगी! तुम ऐसे व्यक्ति हो जिसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं तथा ऐसी धातु के बने औज़ार हो, जो बहुत जल्दी पिघल जाती है अर्थात् अस्थिर स्वभाव के पुरुष हो) जैसे व्यंग्यात्मक शब्दों द्वारा फब्तियां कसते जाते हैं। व्यंगवाणों की वर्षा दूसरे पक्ष की ओर से कहीं अधिक ज़ोरदार होती हैं। इस प्रकार काफी देर तक हास्य-विनोद का वातावरण बना रहता है।

होली की अग्नि जब शांत हो जाती है तो उस क्षेत्र के युवक ग्राम देवता के देवालय में पहुँच कर 'हरण बांधना' करते हैं। ये 'हरनात्र स्वांग' के लिए स्थानीय प्रयोग है। 'खप्पर' स्वांग भरने वाले चेहरे पर 'खप्पर' (मुखौटा) के साथ सिर पर पग्गड़ (बड़ी पगड़ी), कमर में डोरा और चोला मज़ाकिए ढंग से बाँधते हैं। वे हाथ में डंडा ले कर इधर-उधर नाचते हुए "हो-हो" करते रहते हैं। विचित्र ढंग से धारण किए हुए इन लोगों के वस्त्रों को देख कर अन्य लोग हँस पड़ते हैं।

प्रत्येक 'खप्पर' के साथ एक 'चन्द्रौली' रहती है। स्त्री की चोली, मोटा दुपट्टा और सलवार, कटि में डोरा तथा स्त्रियों के आभूषणों से सुसज्जित पुरुष 'चन्द्रौली' बन कर खप्पर के साथ नृत्य एवं अभिनय करता है। कुछ लोग सलवार की बजाय सफ़ेद रंग का चूड़ीदार पाजामा पहने रहते हैं। 'गद्दी' का स्वांग रचने वाला सिर पर नोकदार टोपी, शरीर पर चोला तथा कमर पर डोरा पहनता है। वह चेहरे पर सफ़ेद बनावटी दाढ़ी-मूँछ भी लगाता है और हाथ में त्रिशूल धारण करके शिवजी के चेले का अभिनय करता है।

'गद्दन' का स्वांग करने वाला पुरुष गद्दी जाति की महिला का वेश भूषा पहने रहता है। गद्दी और गद्दन आपस में हास-परिहास द्वारा दर्शकों का मनोरंजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। जब गद्दी "खप्पर" (मृतक व्यक्ति) का अभिनय करता है तो "चन्द्रौली" उसकी मृतक देह को बार-बार हिलाती-डुलाती रोने-चीखने का अभिनय करती है। 'हरण' का स्वांग रचने वाला व्यक्ति अधिकतर निम्न जाति का पुरुष होता है। वह किसी पशु का चर्म ओढ़कर सिर पर सींग लगा लेता है। उसका सारा शरीर डोरे से कसकर बँधा रहता है ताकि पशु-चर्म ढुलक न जाए। इस पर लोग बैठ कर कुछ दूर सवारी करते हैं और पैसे दे कर 'भाड़ा' चुकाते हैं। स्वांगों द्वारा ही मानवीय प्रवृत्तियों को बड़े सुंदर ढंग से उघाड़ कर दूरस्थ पहाड़ी क्षेत्र में बसी यह जन-जाति अपनी मानवीय-अमानवीय सूझ-बूझ का परिचय देती है।

इन सभी स्वांग भरने वालों के मुखिया को 'साहब' कहते हैं। 'साहब' का स्वांग रचने वाला पुरुष मुँह पर आटा पोत कर टोप पहने रहता है। यह वास्तव में 'अंग्रेज़' जाति पर व्यंग्य का सूचक होता है। 'साहब' के आगे ढोल और शहनाई बजाने वाले लोग 'हरण' की तरह पशु-चर्म ओढ़े रहते हैं। इसके पश्चात् "खप्पर-चंद्रौली", "गद्दी-गद्दन" और "हरण" का स्वांग भरे हुए लोग चलते हैं। इसे "हरणात्र" का जुलूस कहा जाता है। जुलूस में सम्मिलित स्वांग के अभिनेता अपने ग्राम-देव अथवा देवता के जयकारों वाला इस प्रकार का लोकगीत गाते हैं :-

हरण आया हरणोटा, राजे रामे री प्रौली।
हरना दे सिंगडु सहोणे, जिहां मोती रे दाणे।
डक वजंदे डकडोरूँ, राजे रामा री प्रौली।
हरन आया हरनोटा, मंगदा बकरोटा।
तुरत करे मंजिहाणिए, असाँ जाण दूराड़े।
हरन आया हरनोटा, राजे रामा री प्रौली।[33]

अपने सींगों को मोती के दानों से उपमा देने वाले 'हरणात्र' के ये स्वांगी देव मंदिर के मुख्य द्वार (प्रौली) के शुभागमन की सूचना डंके की चोट (डक वजांदे) से देते हैं। अपनी-अपनी खाटों पर बैठे-लेटे ग्रामीण (मंजिहाणिए) इनको मुँह माँगा दान 'बकरोटा' देने के लिए खुशी-खुशी उठ कर उनका स्वागत करते हैं।

हरणात्र के अभिनेता जहाँ दान दाताओं को इस प्रकार के लोकगीतों द्वारा प्रेरित करते हैं, वहाँ बीच-बीच में स्वाद बदलने के लिए इस तरह के शब्द भी दोहराते रहते हैं :-


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हियूँद गो बसंद आ
सत फटा जुहेरी खांदा गे।

ठिठुरती सर्दी से मुक्ति दिलाने वाले वसंत के मौसम के आगमन पर परिश्रमी पहाड़ियों की अपार प्रसन्नता एक स्वाभाविक बात है। रात भर इसी प्रकार के हास-परिहास, मंगलगान तथा नृत्याभिनय का प्रदर्शन ग्रामीण घरों के सामने करके यह स्वांग-मंडली पर्याप्त 'बरू' एकत्र कर लेती है। दानों और पैसों के रूप में प्राप्त सभी लोगों का वरदान ही पहाड़ी बोली में 'बरू' कहलाने लगा है। यह 'बरू' खाद्य सामग्री का बोधक तो है ही।

प्रात: होने पर समय आता है 'हरण' के 'विसर्जन का। सभी अभिनेता अपने 'साहब' के नेतृत्व में उसी देवालय में लौटते हैं, जहाँ से उनकी शोभा यात्रा का श्री गणेश हुआ था। अपने-अपने निवास स्थान की ओर विदा होने से पूर्व 'कगोल' की तारीख निश्चित कर ली जाती है। गद्दी जन-जातीय बोली में 'कगोल ' का अर्थ है 'प्रीतिभेज'। 'कगोल' हेतु 'बरू' में प्राप्त धन-राशि एवं अन्न का उपयोग होता है। 'कगोल' में शामिल होने के लिए स्वांगियों के अतिरिक्त अन्य लोगों को भी आमंत्रित किया जाता है। भोज्य पदार्थों से संतुष्ट क्षेत्रीय जनों के मनोरंजन हेतु फिर स्वांग एवं नृत्य होते हैं।

## राजस्थान की होली

राजस्थान में होली जलाने के लिए करील के पेड़ का 'डांडा' (शाखा) काट कर गाड़ी जाती है। यह प्राय: फाल्गुन शुद्धि एकादशी को होता है और इसे राजस्थानी भाषा में 'डांडिया ग्यारस' कहा जाता है। इसी दिन से राजस्थान मे रंगों का खेल आरम्भ हो जाता है। पूर्णिमा को सम्पन्न होने वाले इस त्योहार को इसी कारण राजस्थान की महान् कवियत्री मीरा ने चार दिन का लोकोत्सव कहा था :

फागण का दिन चार रे, होली खेल मना रे।
उड़त गुलाल लाल भया बादल, बरसत रंग अपार रे।।

होली को अन्य कई लोकगोतों में 'अतिथि' (पांवणो, पावणी) तथा 'चार दिन का मेहमान' भी कहा गया है यथा :

(क) काट्यो तो बाट्यो डांड केर को जी,
काट्यो है होली ताणी थांम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औक बरसे वसर वोदण होली पांवणो जे।[35]

(ख) होली आड़ा है दिन च्यार, होली पावणी रे लाल।

होली के अवसर पर पुरुष 'चंग' और 'ढोल' बजाकर 'गेर' नृत्य करते हैं। इस का उल्लेख एक लोकगीत में इस प्रकार हुआ है :

अण गेरियां में हंगला ही नाचे
चंद्रं बीरो छोगा राले
ए होली थारे कारणे।

राजस्थानी लोकगीत में होली के अवसर पर घर न लौटने वाले पति के कारण रमणी के मन की टीस, ब्रजमंडल के फाग के अतिरिक्त वीर पुरुषों की जीवनीयां और प्राकृतिक-सुषुमा का वर्णन भी होता है। 'घूँसा' नामक वीर-गीत इस अवसर पर विशेष रूप से गाया जाता है, जिसकी एक छटा प्रस्तुत है :

घूँसो बाजै ओ महाराज थांरी मारवाड़ में,
जैमल हुवो मुलक में चावो, अमरो हिंदवा लाज रखवाल।
मुकन जै देव गौराँ जसधारी, धन दुरगो राखियो अजपाल।।

इस प्रकार मारवाड़ के देश रक्षक जयमल, अमर सिंह और दुर्ग रक्षक अजपाल का स्तुति गान होता है। होली के अवसर पर चंग के साथ भाई के (साथी द्वारा) धमाल गाने का उल्लेख भी नारी-गीतों में होता है :

म्हांरो वीरोजी बजावै चंग बाजणूं
वांरा साथीडा मिल गावै धमाल
रंगीली चंग बाजणू
वाजत वाजत बो गयो
कोअी, गयो - गयो होलोड़ी रे थान अे।
रंगीलो चंग बाजणूं।

होली संबंधी कुछ अश्लील गीत भी राजस्थानी भाषा में मिलते हैं, जिनमें स्त्री-पुरुषों के अवैध संबंधों का उल्लेख होता है। किन्तु शिष्ट समाज में इनका विशेष आदर नहीं होता।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पाद-टिप्पणियाँ

1. आ. पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी : भारतीय व्रतोत्सव, पृष्ठ 94-95.
2. हरिगंधा (हरियाणा कला विशेषांक : नवम्बर-दिसम्बर, 1989 (डॉ. जय नारायण कौशिक : मांगलिक भित्ति चित्र) पृष्ठ 591.
3. The Tribune, Chandigarh, August 11,1995 (Jagmohan : Significance of Amarnath Yatra).
4. Ibid, 21st August, 1995 (D.P. Zutshi : The Seven-headed Snake)
5. Kaumudi : Kashmir – Its Cultural Heritage, Page 123.
6. Ibid., Page 121.
7. डॉ नवरत्न कपूर एवं श्रीमती सरोज बाला कपूर : पंजाबी लोक-चिंतन और पर्वोत्सव, पृष्ठ 83.
8. उपर्युक्त, पृष्ठ 86.
9. डॉ. साधुराम शारदा (सं.) : हरियाणा – एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 141.
10. डॉ० बंशी राम शर्मा (सं0) : पहाड़ी हिंदी–शब्द कोश, पृष्ठ 276.
11. मौलू राम ठाकुर : हिमाचल में पूजित देवी-देवता, पृष्ठ 63.
12. उपर्युक्त, पृष्ठ 71.
13-14. पंजाब केसरी, 24 अक्तूबर, 1993 (राजेन्द्र राजन का लेख 'दशहरा कुल्लू का'।)
15. डॉ. जवाहर लाल हंडू : कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत – एक तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 203.


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16. (a) G.M. Rabbani : Ancient Kashmir – A Historical Perspective, Page 55.

(b) Deshhara festival ..... is not observed by Kashmiri Hindus, nor is the holy fast kept by them. – The Valley of Kashmir, Page 266.

17. डॉ. जवाहर लाल हंडू : कश्मीरी और हिन्दीं के लोकगीत – एक तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 203.

18-19. जागृति, वर्ष 39, अंक 10, अक्तूबर, 1979 (डॉ. नवरत्न कपूर : दीवाली – पारंपरिक आस्थाएँ, पृष्ठ 11.

20. डॉ. साधुराम शारदा (संपा.) हरियाणा – एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 141

21. जागृति, नवंबर 1991 (डॉ. नवरत्न कपूर : दीवाली की हटरियाँ – बदलते रूप) पृष्ठ 23.

22. डॉ. जगमल सिंह : राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 148.

23. डॉ. मदन लाल शर्मा : राजस्थानी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 65.

24. देवी शंकर प्रभाकर : हरियाणा – एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 120.

25. आचार्य परशु राम चतुर्वेदी : भारतीय पर्वोत्सव, पृष्ठ 259-260.

26. उपर्युक्त, पृष्ठ 270.

27. डॉ. साधुराम शारदा (संपा.) हरियाणा के लोकगीत, पृष्ठ 36

28. डॉ. साधुराम शारदा (संपा.) हरियाणा – एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 144

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

29. देवी शंकर प्रभाकर : हरियाणा – एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 137.

30. हरिगंधा (हरियाण कला विशेषांक) : नवंबर-दिसंबर, 1989 (डॉ. के. सी. यादव : हरियाणा में नृत्य परंपरा), पृष्ठ 54.

31. डॉ. साधुराम शारदा (संपा.) : हरियाणा के लोकगीत, पृष्ठ 29.

32. जन साहित्त, मार्च 1993 (डॉ. नवरतन कपूर :-होली दे मोरंडे), पृष्ठ 4.

33-34. शरण : हिमाचल की धार्मिक परंपरा, पृष्ठ 46-47.

35. डॉ. जगमल सिंह : राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 130 (पाद-टिप्पणी)।

36. उपर्युक्त, पृष्ठ 125.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# संदर्भ ग्रंथ

## (Reference Books)

## हिन्दी


एन.डी.पुराहित — हिमाचली लोकरंग (दिल्ली, 1986-87)

एस.पी. उपाध्याय — भारतीय पर्व और त्योहार (दिल्ली, 1978)

एस. भीष्म पाल एवं सरोज — राजस्थान के देवालय (नई दिल्ली, 1991)

जगमल सिंह (डॉ.) — राजस्थानी एवं गुजराती लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन (गढ़ मुक्तेश्वर, 1986)

जय नारायण कौशिक (डॉ.) — हरियाणवी - हिन्दी कोश (चंडीगढ़, 1985)

जवाहर लाल हंडू (डॉ.) — कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत : एक तुलनात्मक अध्ययन (कुरुक्षेत्र, 1971)

दिनेश चंद्र शुक्ल — राजस्थान के प्रमुख संत।

देवदत्त शर्मा (डॉ.) — (क) राजस्थान के प्रमुख मेले (दिल्ली, 1989)
(ख) राजस्थान के लोकदेवता (दिल्ली, 1987)

देवी शंकर प्रभाकर — हरियाणा – एक सांस्कृतिक अध्ययन (दिल्ली, 1989)

नरेन्द्र धीर — हिमानी लोक साहित्य (लुधियाना, 1961)

नवरत्न कपूर (डॉ.) — लोहड़ी : समन्वयात्मक लोकपर्व (पटियाला, 1978)

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी : हिन्दी विश्वकोश, सन् 1962

पद्मचंद्र काश्यप (डॉ.) — हिमाचली संस्कृति का इतिहास (दिल्ली, 1986)

पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी — भारतीय व्रतोत्सव (वाराणसी, संवत् 2018)

पुष्पा जैन एवं सत्यपाल गुप्त — हरियाणा – सांस्कृतिक दिगदर्शन (चंडीगढ़)

पूर्णिमा गहलोत — राजस्थान गाता है (जयपुर, 1979)

प्रभुदयाल मीतल — ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास

बंशी राम शर्मा (डॉ.) — पहाड़ी – हिन्दी शब्दकोश (शिमला, 1976)

बी.एल. कपूर — हिमाचल : इतिहास और परंपरा (दिल्ली, 1976)

ब्रजमोहन (डॉ.) — हमारे त्योहार (वाराणसी, 1951)

मदन लाल शर्मा (डॉ.) — राजस्थानी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन (जोधपुर,




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1987)

मन्मथ राय — हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव (इलाहाबाद, 1953)

मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह' — उर्दू-हिन्दी शब्दकोश (लखनऊ, 1959)

मौलू राम ठाकुर — हिमाचल में पूजित देवी-देवता (नई दिल्ली, 1981)

रमेश चन्द्र दत्त — प्राचीन भारत में सभ्यता का इतिहास।

राजा राम शास्त्री — हरियाणा के लोकगीत (चंडीगढ़)

शरण — हिमाचल की धार्मिक परंपरा (दिल्ली, 1989)

सत्येन्द्र (डॉ.) — ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन (आगरा, 1957)

सरोज बाला कपूर (श्रीमती) एवं नवरत्न कपूर (डॉ.) — (क) पंजाबी लोक-चिन्तन और पर्वोत्सव (पटियाला, 1980)

(ख) लोकपर्वीय बाल - किशोर गीत (पटियाला, 1978)

साधुराम शारदा (डॉ) — (क) हरियाणा : एक सांस्कृतिक अध्ययन (चंडीगढ़, 1978)

(ख) हरियाणा के लोकगीत (चंडीगढ़, 1970)

स्वर्णलता अग्रवाल — राजस्थानी लोकगीत (उदयपुर, 1972)

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी (डॉ.) — कल्पलता (बनारस)।

हरिराम जसटा (डॉ.) — हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्य।

## पंजाबी

काहन सिंघ[1] — महान कोश (पटियाला, 1960)

गुरदित्त सिंघ[2] (गिआनी) — तीज ते तिउहार (चंडीगढ़)

देविन्दर सतिआरथी — गिद्धा (दिल्ली, 1980)

नवरतन कपूर (डॉ.) — पंजाब दे लोक तिउहार : इक्क समाज विगिआनिक अधिऐन (पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला ; 1990)

भूपिन्दर सिंघ 'सूदन' — पुणछ दी लोक धारा (अमृतसर, 1986)

वणजारा बेदी (डॉ.) — लोक आखदे हण (लुधियाना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अंग्रेजी (ENGLISH)


| | |
|---|---|
| Bhagat Singh (Dr.) | (a) Maharaja Ranjit Singh & His Times). |
| | (b) Sikh Polity in the Eighteenth and Nineteenth Centuries (Delhi) |
| Bikramjit Hasrat (Dr.) | Life and Times of Ranjit Singh (Hoshiarpur, 1977) |
| C.H. Buck (Major) | Faiths, Fairs and Festivals of India |
| | (New Delhi, 1977) |
| Dasrath Sharma | Early Chauhan Dynasties. |
| Govind Krishna Pillai | Hindu Gods & Hidden Mysteries. |
| | (Allahabad, 1958) |
| G.M. Rabbani | Ancient Kashmir – A Historical Perspective (Srinagar, 1981) |
| G. N. Sharma | Social Life in Medieval Rajasthan [1500-1800 A.D.] [Agra, 1968] |
| H.A. Rose | A Glossary of Castes & Tribes of the Punjab & N.W.F.P., Volume I, (Patiala, 1970) |
| Ishwari Prasad | A New History of India (Allahabad, 1940) |
| | Keys to Kashmir |
| Kaumudi | Kashmir – Its Cultural Heritage (Bombay, 1952) |
| Nihal Singh | Ruling India by Bullets & Bombs (London, 1920) |
| P. N. Bali | The History of the Mohyals (Bombay, 1986) |
| Sher Singh 'Sher' (Dr.) | Sikligars of the Punjab (Delhi, 1968) |
| Som Nath Dhar | Jammu & Kashmir – The Land & the people (New Delhi, 1977) |
| V.N. Datta | Jallianwala Bagh (Ludhiana, 1969) |




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पत्र-पत्रिकाएँ (NEWSPAPERS & JOURNALS)

## हिन्दी

कल्याण (शिवांक) ; संवत 1990 (सन् 1933).

जागृति ; अक्तूबर 1979 एवं नवंबर 1991 [लोक संपर्क विभाग, पंजाब, चंडीगढ़]

पंजाब केसरी ; जालंधर : 24 अक्तूबर, 1993

पंजाब सौरभ ; जनवरी, 1995 [भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला]

राजस्थान पत्रिका, जयपुर (दैनिक 29 दिसंबर, 1995 से 14 जनवरी, 1996

वीर प्रताप ; जालंधर, 9 अगस्त, 1995.

संस्कृति ; सितंबर-अक्तूबर, 1961 तथा 1979 [केन्द्रीय शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली)

सोमसी; सितंबर, 1993 [हिमाचल साहित्य, संस्कृति एवं कला अकादमी, शिमला]

हरिगंधा ; नवंबर-दिसंबर, 1989 [हरियाणा साहित्य, अकादेमी, चंडीगढ़]

हरियाण संवाद ; अप्रैल, 1993 एवं मई, 1994 [लोक संपर्क विभाग, हरियाणा, चंडीगढ़]

हिम भारती ; वर्ष 26 (1993) अंक 97 [हिमाचल साहित्य, कला एवं संस्कृति अकादेमी, शिमला]

---

1-2. पंजाबी उच्चारण के कारण 'सिंह के स्थान पर 'सिंघ'

3. पंजाबी (गुरुमुखी लिपि) में अर्धाक्षर के अभाव के कारण तथा वर्तनी अनुसार (अन्यथा 'नवरत्न')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पंजाबी

अजीत; जालंधर, 14 जनवरी, 1993

जन साहित्त [मेला विशेषांक] अप्रैल-मई, 1989 एवं मार्च, 1993 [भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला]

# अंग्रेज़ी

Pakha Sanjam, Vol. XIX (year, 1986); (Punjabi University Patiala)

The Indian Express, Chandigarh; 9th April, 1988; 13th October, 1990.

The Tribune, Chandigarh; 13th April, 1979; 26th September, 1993; 13th April, 1994; 6th May, 1994; 11th August, 1995; 21st August, 1995.

## Research Papers

Dr. Nav Rattan Kapur: 137 Festivities of the Punjab – A Semiological Study (Presented in the Seminar organized by the Department of Anthropological Linguistics, Punjab University, Patiala.

41.5,KAP-U
127798
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RA पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या... ४१.५ कपूर-3 आगत संख्या... 127798

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| GURUKUL KANGRI LIBRARY | | |
|---|---|---|
| | Signature | Date |
| Access No. | | 13/7/11 |
| Class No. | | 19/7/14 |
| Cat No. | | |
| Tag etc. | | 28/11/11 |
| E.A.R. | | |
| Recomm. | | |
| Data En. | | |
| Checked | | |



RA पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

४१.५

विषय संख्या कपूर-3 आगत नं० 127798

लेखक कपूर, नवरत्न

शीर्षक उत्तर भारत के लोक पर्व

(एक वैज्ञानिक विश्लेषण)

| दिनांक | सदस्य संख्या | दिनांक | सदस्य संख्या |
|---|---|---|---|
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि न लगायें।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

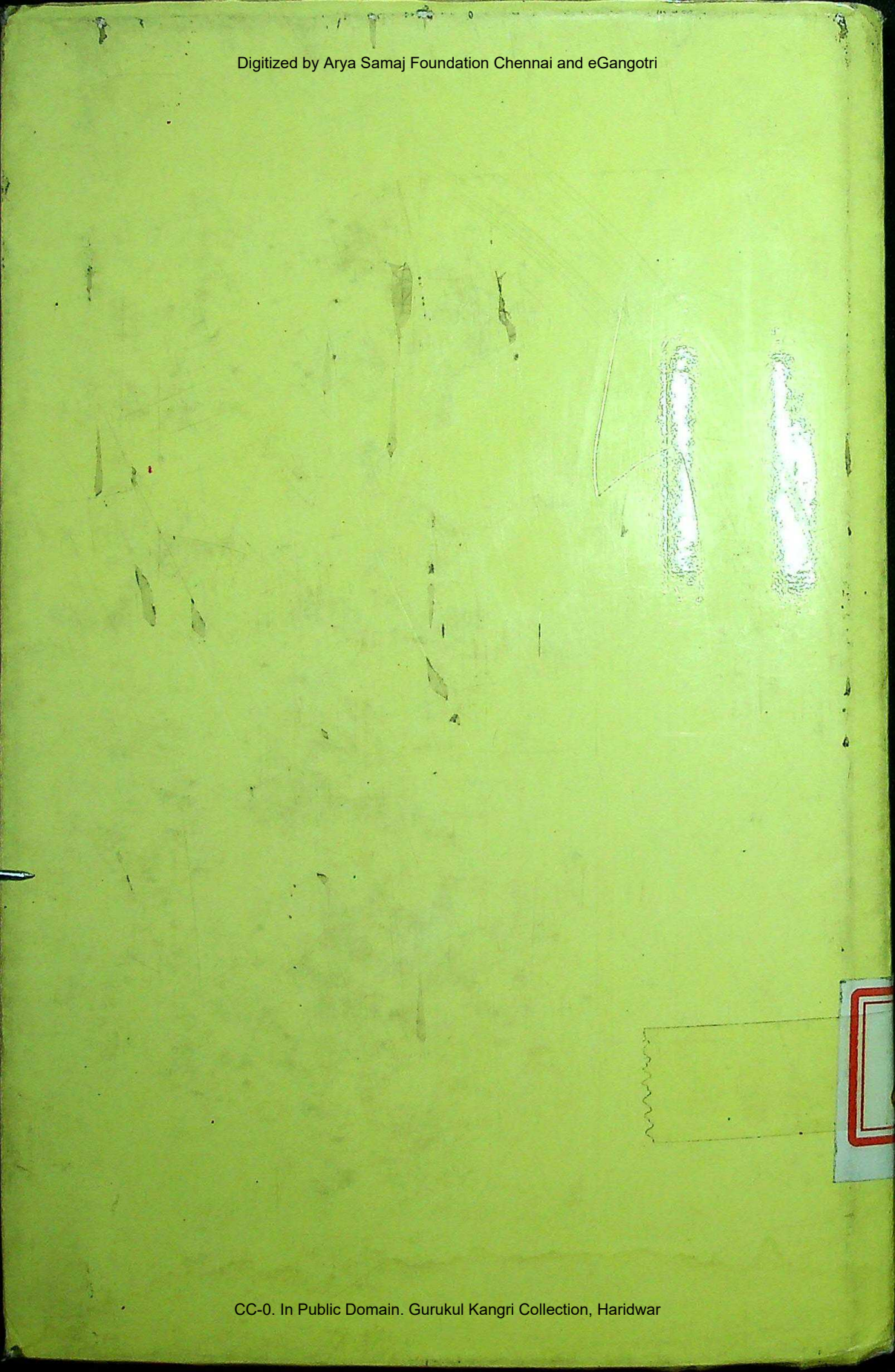

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar